समकालीन विमर्श

सम्पादक-डॉ.भगवान कदम

नवसाहित्यकार प्रकाशन,नांदेड़

संपादकीय....प्रा.डॉ.कदम भगवान

समग्र भारत वर्ष आझादी का अमृत महोत्सव बढे ही धुमधाम से मना रहा हैं। देश की आझादी के लिए स्वतंत्रता सेनानियों के साथ हिंदी भाषा एवं साहित्य ने भी अहम योगदान दिया हैं। स्वतंत्रता आंदोलन की प्रमुख भाषा हिंदी रही, तो हिंदी साहित्य और साहित्यकारों ने स्वतंत्रता सेनानियों को प्रबल प्रेरणा और उत्कट उत्साह देने का पूरजोर कार्य किया। इस समय में हिंदी ने पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधकर स्वतंत्रता आंदोलन को ज्वलंत रखा था। जिसके परिणाम स्वरूप देश आझाद होकर आज हम आझादीं के पंचहत्तर साल में खुली साँस लेते हुये, आझादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं।

हम हिंदी के अभिभावक होने के नाते आझादी के इस अमृत महोत्सव में साहित्य के प्रति अपनी प्रतिब्धता को ध्यान में रखकर एक ई.बुक संपादीत करने की मनिषा हमारे परम मित्र डॉ. संतोष कुमार यशवंतकर (सहयोगी प्राध्यापक) ने व्यक्त की थी। जिसका प्रतिफल प्रस्तुत ई.बुक. है। जो कोव्हिड–19 के अनेक बांधावो को पार कर विलंब से आज प्रकाशित होने जा रहा है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता हैं और यहीं कारण हैं कि समाज की गति, स्थिति एवं प्रगति साहित्य को हमेशा प्रभाविंत करते आयी हैं और करते रहेगी। जो साहित्य समाज से दूर जाता है, उसे समाज भी दुत्कारता हैं और अपने अनुरुप एक नये पटल पर एक नयी भाषा के साथ, नई अभिव्यक्ति की खोज कर साहित्य रचता है। और यही कारण है की आज के समकालीन हिंदी साहित्य में हि नही तो मराठी, अंग्रेजी, उर्दू, कन्नड आदि साहित्य मैं भी दलित, आदिवासी, स्त्री, किन्नर, बाल, वृध्द, किसान आदि विभिन्न विमर्श से युक्त साहित्य रचा और पढा जाता दिखाई दे रहा हैं। जो वस्तुतः आज के समय और समाज की भी माँग हैं।

समकालीन साहित्यिक विमर्श में सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक बंधनों में बंधी नारी के मुक्ति का शंखनाद करनेवाले 'स्त्री विमर्श' ने ही हिंदी साहित्य को समकालीन स्त्री समस्यों से ही नही जोडा, तो दूसरी और अपनी एक नयी भाषा भी गढ लियी है। इस दौर की लेखिकाओं ने पुरुषसत्ताक व्यवस्था ने स्त्री की दबाई आवाज को बुलंद करने का कष्टसाध्य काम बडे इमानदारी और निष्ठा से किया हैं। जिसमें मन्नु भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा,

चित्रा मुदगल, कुसुम अंसल, प्रभा खेतान, सुर्यबाला, शिवानी जैसी अनेक सिद्हस्त लेखिकाओं के नाम लिखे जा सकते हैं। जो स्त्री को शक्ति, अधिकार, अस्मिता, आत्मिनिरर्भता और शोषण के बुनियादी सवाल बेझिझक पुरुषसत्ताक समाज के सामने अपनी कलम से रखकर स्त्री विमर्श को एक नयी जमीन प्रदान करने का कार्य निरंतरता से कर रही हैं।

'दलित विमर्श' ने समकालीन विमर्श में अपना भी एक विशिष्ट स्थान निर्धारित हि नही किया तो संपूर्ण हिंदी साहित्य को प्रभावित किया हैं। फलस्वरुप वर्तमान हिंदी, मराठी, अँग्रेजी साहित्य की प्रमुख धारा के रुप में स्वीकृत हो चुका हैं। डॉ. एन.सिंह के अनुसार "हिंदी साहित्य का बासिपन दलित विमर्श दुर कर रहा हैं"। समाज के शोषित वंचित बेजूबान लोगों की हुंकार दलित साहित्यिक आन्दोलन है, जो उनके अस्तित्व, अस्मिता और जीवन संघर्ष को यर्थाथ शब्दों में व्यक्त करता हैं। डॉ. बाबसाहेब आम्बेडकर के जीवन कार्य और विचारों से प्रभावित दलित साहित्य लेखन का सुत्रापात प्रथम मराठी में हुआ, तो हिंदी में वह अब विकास के प्रथम चरण में हमें दिखाई देंता हैं। मराठी के दलित कथाकारों में बंधु माधव, शंकरराव खरात, अण्णाभाऊ साठे, बाबूराव बागुल, नामदेव ढसाळ, अर्जुन डांगळे, दया पवार, नारायण सुर्वे, केशव मेश्राम, त्र्यंबक सपकाळ, शरण कुमार लिंबाले, प्र. ई. सोनकांबळे, लक्ष्मण माने आदि का समावेश प्रथमः पंक्ति के दलित साहित्यकारों में होता हैं। तो हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मिकी, मोहनदास नैमिशराम, डॉ. धर्मवीर, सुरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, चंद्रकांत बांदिवाडेकर, अरुण बटोही, सुशिला टाकभोरे इन रचनाकारों ने वर्ण व्यवस्था से आहत दलित, शोषित, वंचित समाज की समस्याओं को निर्भिकता से अपने नये तेवर में अभिव्यक्त कर रहें हैं।

आदिवासी अर्थात मूलनिवासियों द्वारा अपने जल, जमीन, जंगल की रक्षा के लिए किये गये आन्दोलन तथा सन सत्तावन के बाद देश के आर्थिक, उदारीकरण की नितियों से आदिवासी शोषण की जो प्रक्रिया चल पडी उसके प्रतिरोध में इस समाज के अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर फुट पडी सृजनात्मक शक्ति ही आदिवासी साहित्य हैं। आदिवासी समाज जिस क्षेत्र मैं हजारो सालों सें रहता आ रहा हैं। वहाँ के जल, जमीन, जंगल उसके उपजीविका के प्रमुख स्त्रोंत रहे हैं। वहाँ से उन्हें ही आर्थिक उदारीकरण की निती एवं विकास के नाम पर खदेडना आरंभ किया हैं। अतः विस्थापन, भूखमारी, कुपोषण, व्यसनाधिनता, अज्ञान, दारिद्रता, जल–जंगल–जमीन के लिए संघर्ष आदि प्रमुख आदिवासी समुदाय की समस्यां रही हैं। जिसे अनेक कथाकारों ने अपनी कलम से

अभिव्यक्त करने का प्रयास किया हैं। जिसमें महाश्वेता देवी, पीटर पॉल एक्का, रविंद्र रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, संजीव, मैत्रयी पुष्पा, हृषिकेश सुलभ, निर्मला पुतूल, रामदयाल मुंडा, कुंजर मोतीलाल, महादेव टोप्पो, विरेंद्र जैन, राकेश वत्स, हिमांशू जोशी, आदि रचनाकारों का समावेश होता हैं।

'किन्नर विमर्श' समान्यता समाज स्त्री और पुरुष इन दो लिंगो से बनता है किन्तु समाज में एक तिसरा लिंग भी होता है, जो न नर होता है, न मादा अर्थात 'अलिंगी' होता है। इसे ही परिष्कृत शब्दावली में 'किन्नर' कहा जाता है। इनको अलग–अलग समाज तथा भाषाओं में अलग–अलग संबोधन से संबोधित किया जाता है। जैसे की शिखण्डी, छक्का, कीव, खोता, मौसी और हिजडा आदि।' हिजडा' शब्द उर्दू का है, जो अरबी की 'हिज्र' शब्द से बना है। जिसका अर्थ होता है ;अपने कबीले को छोडना अर्थात अपने घर–परिवार एवं समाज को छोडकर अलग रहनेवाला व्यक्ति। स्त्री और पुरुषों का चित्रण तो साहित्य में प्रमुखतः से होता आया है किन्तु समाज से अलग रहनेवाले ' किन्नर' अब तक हर भाषा के साहित्य में उपेक्षित ही रहा था। वर्तमान साहित्यकार इस किन्नर की उपेक्षा, विषमता, विसंगतियाँ, विडबंना और विकृतियों से भरे संघर्षपूर्ण जीवन की अपने कहानी, कविता और उपन्यासों के द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास कर समाज का ध्यान इनके दु:ख हुई के ओर खिंच रहे हैं। इन साहित्यकारों में पारस दासोन, पुनम पाठक, दीपिका चाँद, शिवप्रसाद सिंह, विजेंद्र प्रताप सिंह, श्रीकृष्ण सैनी, गरिमा संजय दूबे, डॉ. लवलेश दत, ललिता शर्मा, महेंन्द्र भीष्म, राही मासुम रजा, सलाम बिन रजाक, एस.आर. हरनेट, कुसुम अंसल, किरणसिंह कादंबरी मेहरा, डॉ. पदमा शर्मा, अंजना वर्मा, आदि अनेक नामों को गिनाया जा सकता हैं।

समकालीन वैश्विक अर्थनिती ने हमारे समाज व्यवस्था की नींव ही हिला दियी हैं। औदोगिकरण, भूमंडलिकरण और बाजारवादी सभ्यता, संस्कृति एवं नितियों ने हमारे समाज व्यवस्था की अहम कडी, परिवार व्यवस्था को ही ध्वस्त किया हैं। पैसे को अधिक महत्व देने के कारण संयुक्त परिवार विघटीत होकर एकत्र परिवार बन गये है, जिसके चलने समाज में वृध्द और बालकों के उचित देख– रेख की अनेक समस्याँ उभरकर सामने आ रही हैं। अब तो एकल परिवार में भी पत्नी और पति अलग–अलग रहने लगे हैं। जिस से बुढों के लिए वृध्दाश्रम तो बालकों के लिए अनाथश्रम तथा हॉस्टेल में रहने कि गंभरी समस्या दिन–ब–दिन बढने लगी हैं। समकालीन साहित्य में समाज की इस विचित्र स्थिती को लेकर भी लेखन अब होने लगा हैं। जिसका परिणाम ही वृध्द विमर्श, किसान विमर्श

और बाल विमर्श परख साहित्य आज बढी मात्रा में लिखा जा रहा हैं। तो इसकी ओर मनुष्य औद्योगिकरण विकास, प्रगति के नाम पर प्रकृति एवं पर्यावरण का जिस प्रकार बडी मात्रा में दोहन कर रहा हैं। उससे वे आपने सामने नयी प्राकृतिक आपदाओं को ही आमंत्रण दे रहा हैं। जगत गुरु संत तुकाराम महाराज ने 'वृक्ष वल्ली आम्हा सोयरे', कहकर प्रकृति को अपने जीवन का एक अभिन्न हिस्सा स्विकार करने को कहा था। उसे हम विकास के नाम एवं नितियों से भूल बैठे थें। इसी कारण आज हमें भूकंप, बाढ, अवर्षण और प्रदुषण की समस्याओं ने घेर कर रख दिया। अमेरिका की दस साल की लडकी 'ग्रेटा थेचर' ने पर्यावरण बचाव का नारा देते हुये जब आन्दोलन चलाया तो इस और पूरी दुनिया फिर से जागृत हो गयी। पर्यावण के संरक्षण की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति तथा देश की न होकर संपूर्ण विश्व की हैं। यह बात सामने आयी और इस दिशा में सुधार के प्रयास अब किये जा रहे हैं। दिन–ब–दिन बढते महानगर, कटते जंगल, बढती जनसंख्या से उत्पन्न भूकंप, अवर्षण, जलप्रकोप, बाढ, प्रदुषण जैसी अनेक भीषण समस्यों को जन्म दिया हैं। इस का विस्तृत ब्योरा भी सामाजिकशास्त्रों के साथ–साथ साहित्य में भी 'पर्यावरण विमर्श' के नाम से अभिव्यक्त होने लगा हैं। नये पिढी के रचनाकार मानव समाज के सामाने उपस्थित इस भयानक समस्यों का आलेख आपने साहित्य के द्वारा प्रतिपादित कर के समय पर इस परिस्तिथी में सुधार करने तथा समाज को इस दृष्टी से जागृत करने का प्रयास बढे लगन और इमानदारी से कर रहे हैं।

समकालीन विमर्श इस ई–बुक में हमने आज तक साहित्य में जो उपेक्षित एवं वंचित समाज की एकाई तथा विषय रह गये थे। जैसे दलित, आदिवासी, स्त्री किन्नर, किसान, वृध्द, बाल और पर्यावरण आदि पर समकालीन दौर में साहित्य लेखन हो रहा है। उस पर आधारीत आलेखों को संपादीत कर प्रकाशित करने का साहस किया हैं। इस कार्य में हम कहाँ तक सफल हुये ये हमें हमारे सुधी पाठक ही बता सकते हैं।

संपादक
प्रा.डॉ.कदम भगवान
मो. 9404466055

अनुक्रमणिका

1.स्त्री–विमर्श और चित्तकोबरा

–अंजली जोशी
पीएच.डी. हिन्दी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया

सभ्यता के आरम्भ से ही समाज ने जिस गति से विकास किया, उस गति से स्त्राी का विकास नहीं हुआ। पुरूष ने कभी उसकी पूजा की, तो कभी उसका दमन, तो कभी उसके समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर उसके अस्तित्व के केन्द्र पर पहुँचने की कोशिश की परन्तु स्त्राी से उसका सहज सम्बन्ध् नहीं हो पाया। मनुष्य जब जंगलों या पहाड़ों की गुपफाओं में रहता था, तब परिवार का केन्द्र स्त्राी थी, लेकिन जब मनुष्य के ज्ञान और गतिविध्यिों का विस्तार हुआ, तो एक नये ढंग का समाज बना, जिस पर पुरूष ने कब्जा कर लिया, क्योंकि वह स्त्राी की जैविक सीमाओं से मुक्त था और शारीरिक बल में भी उससे श्रेष्ठ था।

परन्तु अब स्थिति ध्ीरे–ध्ीरे बदल रही है। समाज में महिलाओं की स्थिति समाज की प्रगति की सूचक होती हैं। समाज के लिए महिलाओं के संघर्ष का इतिहास अतीत में महिलाओं की स्थिति का प्रमाण है। उत्तर–आधुनिक परिवेश में स्त्राी की विभिन्न क्षेत्रों में निरन्तर बढ़ती हुई भागीदारी पुरूष–सत्तात्मक व्यवस्था की नींव को हिला रही है, नयी सदी के प्रारम्भ में महिलाओं के विकास तथा उन्हें अध्कार सम्पन्न बनाने के क्षेत्रा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिसमें स्वयं महिलाओं की अग्रणीय भूमिका हैं।

स्त्राी समानता के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीति तथा देहिक बराबरी का संघर्ष ही स्त्राी–विमर्श का संघर्ष हैं। स्त्राी–विमर्श का सरोकर जीवन और साहित्य में स्त्राी–मुक्ति के प्रयासों से है। पुरूष संस्कृति ने पितृसत्ता के माध्यम से पुरूष को अर्थ–सम्पन्नता और स्वामित्व के अध्कार सौंपे और स्त्राी को मिली अध्ीनता, अर्थ पर निर्भरता और दासत्व। इसलिए स्त्राी का संघर्ष पुरूष के साथ द्वन्दात्मक स्थिति रखने में नही, वरन पुरूष–सत्तात्मक व्यवस्था के खिलापफ संघर्ष करने में हैं। आज भी स्त्राी की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप में अस्वीकारे जाने का प्रश्न ही है, क्योंकि व्यवस्था में वह अभी तक दोयम दर्जे की नागरिक मानी जाती रही हैं।

किसी भी समाज में व्यक्ति की पदस्थिति और भूमिका समसामयिक सामाजिक मूल्यों तथा आदर्शों पर निर्भर करती हैं। कोई भी स्थिति चिरन्तन व स्थायी नहीं होती हैं। समय के साथ परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। परम्परागत आदर्शों तथा मूल्यों में

परिवर्तन आने के साथ ही व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन आता हैं। इसी तरह स्त्री की स्थिति जानने के लिए समाज में उसकी स्थिति जानना अति आवश्यक हो जाता हैं।

स्त्री–विमर्श के प्रश्न का चिन्तन और वैचारिक संघर्षों की शुरूआत, दो शताब्दियो से भी अध्कि समय पहले अमेरिकी और यूरोपीय जनवादी व्रफान्तियों को पूर्ववेला में हुई थी। जन आन्दोलनों में सव्रिफय जागरूक स्त्रियों ने मनुष्य के प्राकृतिक अध्किार और स्वतंत्राता–समानता–भातृत्व की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए भी लागू करने की मांग उठाई। प्राचीनकाल में रोमन और सेल्ट में महिलाओं को स्वतंत्राता दी गई थी परन्तु ईसाई मत के प्रभाव में आने के बाद इसे कानूनी रूप से नकार दिया गया। छठी शताब्दी में एक स्त्रीवादी लेखिका बी.सी. ग्रीस ;ठण्ब् ळतममबमद्ध ने स्त्रियों के समर्थन एवं शिक्षा के लिए कई कविताएँ लिखी तथा स्कूल भी खुलवायें 17वीं शताब्दी में अंग्रेजी लेखिका 'अपरा बेन' ;।चतं ठमददद्ध ने पश्चिमी भारत के दास–प्रथा का विरोध् किया । इसी समय में कुछ पुरूष भी स्त्रीवादी समर्थकों के रूप में सामने आए जिनमे न्यूटन ;छमूजवदद्ध, लॉक ;स्वबामद्ध, वोल्टेयर ;टवसजंपतमद्ध, डाइडर्ट ;क्पकमतवजद्ध प्रमुख थें। इनके अनुसार ''स्त्रियों के बारे में विचार उनके प्राकृतिक रूप में करना चाहिए अर्थात जैसा उन्हें ईश्वर ने बनाया है न कि जैसा उन्हें बाद में श्रम के आधर में बांटा गया है।''[1]

1789 की प्रफांस की व्रफान्ति में स्त्रियों ने मुख्य भूमिका निभाई। स्त्रीवादी गतिविध्यिों के अंकुर मूल रूप से इसी व्रफान्ति के बाद उत्पन्न हुए। 1762 में रूसों ने अपने लेख 'एमिली' में कहा कि ''महिला और पुरूष एक–दूसरे के लिए बने है लेकिन उनकी परस्पर निर्भरता समान नहीं थी ....., हम लोग उसके बिना उससे अच्छी तरह जी सकते हैं, जबकि वे हमारे बिना नहीं, इसलिए महिलाओं की शिक्षा की सम्पूर्ण योजना पुरूषों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए।''[2]

1793 में ब्रिटिश लेखिका 'मेरी वोल्स्टनव्रफाफ्रट' की पुस्तक 'स्त्री–अध्किारों का औचित्य साध्न' (Vindication of the Rights of Women) ने स्त्री–विमर्श के संघर्ष को एक नई दिशा दीं। यह पुस्तक स्त्री संघर्ष में मील का पत्थर साबित हुई। इसके कापफी समय बाद 1873 में जॉन स्टुअर्ट मिल की किताब 'महिलाओं का अधीनीकरण (Subjection of Women)] 1884 में प़्रेडरिक एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (The origin of the family Property and the state) प्रकाशित हुई।

ऱ्रंस की बुि(जीवी एवं सिव्रफय राजनैतिक कार्यकर्त्ता, 'सिमाने द बोउवार' की कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' ;1949द्ध ने दर्शनशास्त्रा, इतिहास, मनोविज्ञान और मानवशास्त्रा का सहारा लेते हुए यह स्थापित किया की स्त्रिायों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है, और इसे एक प्राकृतिक नही समझा जा सकता। उनका कहना था कि 'औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है।''[3]

स्त्राी का आत्मसंघर्ष अपनी निरन्तरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा हैं। परम्परागत दृष्टि से स्त्राी के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित, मानदंडो, आदर्शों के नियत व्यवहारों से सचांलित होता रहा है, जिसमें स्त्राी की तय कर दी गई भूमिका में निर्धरित आदर्श आचरण सहिता के अनुसार जीना है, जिसके निर्धरण का अध्किार शताब्दियों से पुरूषों ने अपने पास रखा हैं। ''स्त्राी संघर्ष के अज्ञात लम्बे इतिहास के बावजूद ज्ञात इतिहास में स्त्राी की स्थिति ने बार–बार आन्दोलनों के लिए जमीन तैयार की है एवं इन आन्दोलनों ने स्त्राी की स्थिति के बदलाव में मदद की हैं।

19वीं शताब्दी का युग पुर्नजागरण का युग था। इस शताब्दी में स्त्राी प्रश्न महत्वपूर्ण होकर सामने आए। भारतीय मानस पर यूरोप के स्वतंत्राता, तार्किकता और मानवीयता के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा। 19वीं शताब्दी में लगभग सभी सुधरकों ने समाज में सती–प्रथा का विरोध् विध्वा–पुन र्विवाह का समर्थन किया। इस क्षेत्रा में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, पंडित रमाबाई, ज्योतिबा पफूले इत्यादि ने सराहनीय कार्य किए। बंगाल में ब्रहम समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत में आर्य–समाज की स्थापना हुई। 'उन्नसवीं सदी में अंग्रेज सरकार ने सती–उन्मूलन ;1829द्ध, विध्वा विवाह ;1886द्ध, बालिका हत्या पर पाबन्दी;1870द्ध कानून पास किए। 1934 में ऑल इंडिया वीमेन्स कान्र्प्रेस, 1937 में हिन्दू वीमेन्स राइट टू प्रोपर्टी, 1955 में हिन्दू विवाह कानून, 1956 में हिन्दू उत्तराध्किार कानून, हिन्दू अल्पवयस्क और सरंक्षण कानून तथा हिन्दू गोद लेने तथा पालने का कानून बनाया।''[4]

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्राी–विमर्श नारी मुक्ति आन्दोलन, स्वतंत्राता आन्दोलनों के समानान्तर ही चला। जहाँ पहले स्त्रिायों को शिक्षा, पुनर्विवाह आदि से संबंध्ति अध्किारों से वंचित रखा जाता था, वही विभिन्न आन्दोलनों की सहायता से स्त्राी को भी पुरूषों के समान कई अध्किार प्राप्त हुए। शिक्षा के कारण ही स्त्राी के व्यक्तित्व के अहम पहलू उजागर हुए। तभी आज वह बहुत हद तक शोषित न होने के उपायों को अपनाती नजर आती हैं।

साहित्य स्त्री प्रश्नों को उठाने और उन पर सार्थक बहस करने का एक सशक्त माध्यम हैं। हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन की परम्परा का आरम्भ यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। परन्तु इसके पश्चात इस दिशा में स्त्री–लेखिकाओं का रचनाकर्म अध्किांश, देखने को मिलता हैं। स्त्री–लेखिकाओं में होमवती देवी, महादेवी वर्मा, चन्द्रकिरण से लेकर शशिप्रभा शास्त्री, प्रभाखेतान, कृष्णा सोवती, मन्नू भंडारी, उषा–प्रियवंदा, नासिरा शर्मा, कुसुम अंचल, मैत्रोयी पुष्पा, मृदुला गर्ग आदि अनेक ऐसी लेखिकाएँ है, जिन्होंने स्त्री समर्थन में अनेक रचनाएँ लिखी। मृदुला गर्ग स्त्री–स्वतंत्राता की हिमायत करने वाली एक सशक्त लेखिका है और स्त्री–विमर्श उनके रचनाकर्म में स्पष्ट दिखाई देता हैं। स्त्री को प्रत्येक स्तर पर स्वतंत्राता मिलनी चाहिए, चाहे वह वैयक्तिक ,सामजिक–आर्थिक हो अथवा देहिक। 'चित्तकोबरा' उपन्यास मृदुला गर्ग की इसी स्वतंत्रा सोच का समर्थन करता है। चित्तकोबरा उपन्यास में मृदुला गर्ग ने वैयक्तिक स्वतंत्राता को पूर्ण रूप से दर्शाया है। उपन्यास को नायिका 'मनु' जब अपने पति 'महेश' को बताती है कि वह 'रिचर्ड' से प्यार करती है तो यहाँ यही वैयक्तिक स्वतंत्राता दृष्टिगत होती है, जब महेश उस से कहता है–''दुख मत करना, शायद कोई भी इंसान एक ही समय में एक दूसरे को प्यार नहीं करते ....., जब एक करता है तो दूसरा नहीं और जब दूसरा करता है ......, देरी मुझसे हुई मनु।''[5] 'चित्तकोबरा' उपन्यास में कही–कही विवाह के प्रति अनास्था को भी व्यक्त किया गया है। मनु का पति महेश विवाह के पवित्रा बन्ध्न में विश्वास नही करता। मनु हमेशा से जानती है. ...'जब उससे विवाह किया था, तब भी जानती थी..... महेश के लिए वह एक तयशुदा, सुनिश्चित विवाह से अध्कि कुछ नहीं है। प्यार सिपर्फ मेरी तरपफ से है सिपर्फ मेरी''[6] अन्ततः एक दिन जब वह हिम्मत करके उससे पूछती है तो महेश स्वष्ट स्वर में कहता है – ''विवाह बन्ध्न में मेरा विश्वास नही है मनु। ......, अगर समाज में रहने वाले हर पति को अपनी पत्नी से प्यार होगा और हर पत्नी को पति से, तो समाज की भला कौन परवाह करेगा।''[7]

पति–पत्नी के संबंधें का आधर प्रेम है परन्तु क्या यह प्रेम, यह दायित्व, पति–पत्नी के बीच अपने आदर्श रूप में होता है? पति–पत्नी का संबंध् क्या एक स्त्री पुरूष का शरीर संबंध् मात्रा है? मृदुला मार्ग चित्तकोबरा की भूमिका में लिखती है – ''जहाँ तक प्रेमहीन सेक्स का सवाल है, जिस संबंध् में संयोग के क्षणों में मन नही, शरीर ही प्रमुख रहे, वह संबंध् और जो हो, प्रेम का नही हो सकता।''[8] ऐसे में स्त्री को महसूस होता है कि शरीर ही सब कुछ है। मनु के माध्यम से स्त्री के इसी देहिक आत्मपीड़न को

उपन्यास में दिखाय गया हैं। चित्तकोबरा उपन्यास पर अध्किांशतः अश्लीलता का आरोप लगाया गया है। डॉ. उषा यादव तथा डॉ. गोपाल राम ने चित्तकोबरा में निहित यौन चित्राण ही आलोचना की है। डॉ. उषा यादव लिखती है – काम की अनुभूति का व्यापक और निस्संकोच चित्राण मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' में देखने को मिलता है .....। प्रेम भले ही एक आदिम अनुभूति हो, शरीरी–अशरीरी दोनो कोटिका हो किन्तु उसके नाम पर वासना का नग्न चित्राण किसी साहित्यकार के लिए उचित नही हैं।"[9]

यह सच है कि लेखिका मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा' में सेक्स का खुला और चित्राण किया है परन्तु पिफर भी इसे एकदम से विकृत मनोभावना का प्रतीक कहन। सही नहीं होगा बल्कि जिस परिप्रेक्ष्य में यह यौन–चित्राण आया है उसे देखना चाहिए। 'मनु' एक स्त्राी के रूप में स्वयं को शरीर में बदल जाने की पीड़ा का अनुभव करती हैं। एक पुरूष में वासना की जो अदम्य लालसा है, आव्रफामकता है, लेखिका उसे ही देहिक यौन–व्रफीड़ा के माध्यम स्थापित करती है। मनु पर–पुरूष ;रिचर्डद्ध से संबंध् स्थापित करती है, जिसकी उसे कोई ग्लानि, कोई अपराध्–बोध् महसूस नहीं होता। इतने बेबाक तरीके से स्त्राी को देह पर उसके अध्किार और इस अध्किार का ऐसा उपभोग, वह भी किसी लेखिका द्वारा, अन्यत्रा कम ही नजर आता है अतः इसे मृदुला गर्ग की अन्तर्दृष्टि का कमाल ही कहा जा सकता है कि उसकी रचनाशीलता की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही प्रासंगिक नजर आती है।

संदर्भ

1- Martin, Angela – The beginning of feminism in Europe simply..... A History of feminism, Illustration by New Internationalist Issue, 227, January 1992. p.1

2- Rubinstein, David – Before the Suffragettes : Women's Emancipation in the 1890's The Harvester Press, sussex 1986

3. सिमोन द बोउवार – The second sex, ;स्त्राी–उपेक्षिताद्ध अनूदित डॉ. प्रभा खेतान पृ.–257

4- Aggarwal, Bina – A feiled of One,s Own: Gender and Land Rights in South Asia, -p- 163-170

5. चित्तकोबरा – पृ.– 93

6. चित्तकोबरा – पृ. – 88

7. वहीं पृ. – 94

8. चित्तकोबरा – भूमिका से

9. पुनश्च ;पत्रिका–सुजनात्मक विधओं को समर्पित अनियतकालीन पत्रिका, जून – 2004 स. दिनेश द्विवेदी ;मृदुला गर्ग पर एकाग्रद्ध अंक – 15 पृ. 143

2.प्रभा खेतान के साहित्य में स्त्री विमर्श

–डॉ. अंजू सिंह
शिक्षिका, कॉचरापाड़ा, उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल

प्रभा खेतान की ख्याति हिंदी साहित्य एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न लेखिका के रूप में है। प्रभा जी का जन्म 1 नवम्बर 1942 को एक सम्पन्न व्यापारी मारवाड़ी परिवार में हुआ। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय से दर्शन शास्त्र में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की और 'ज्यां पॉल सार्त्र के अस्तित्ववाद' पर पीएचडी की उपाधि ली। प्रभा जी ने केवल 12 वर्ष की अल्प आयु से ही साहित्य साधना आरम्भ कर दी थी। प्रभा खेतान का सृजन–साहित्य विविध आयामी है। उनके छः काव्य संग्रह, आठ उपन्यास, आलोचनात्मक ग्रंथ, अनुवाद, आत्मकथा इत्यादि प्रकाशित हुए हैं। साहित्य के साथ–साथ उद्योग जगत में भी प्रभा जी ने स्वयं को स्थापित किया। दर्शन, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विश्व–बाजार और उद्योग जगत की वह गहरी जानकर थी। कोलकाता चैंबर ऑफ कॉमर्स की वह पहली महिला अध्यक्ष रहीं। हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श को केन्द्र में लाने के पीछे जिन लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है उनमें प्रभा खेतान का नाम अन्यतम है। साहित्य और समाज में प्रभा जी के योगदान को रेखांकित करते हुए रोहिताश्व ने लिखा है ''उनका मुख्य योगदान मारवाड़ी समाज में रूढ़, ग्रस्त और परम्परा में जकड़े नारी समाज की परिवर्तनशील भूमिका के रेखांकन में है। जहां सुशिक्षित, वर्गचेतस नारी व्यक्तित्व अपनी अस्मिता और स्त्रीत्व के नये रूप ताराशती यात्राओं में है।''[1]

र्प्रभा खेतान की साहित्य सृजन यात्रा काव्य लेखन से आरम्भ होती है। उन्होंने काव्य लेखन को मन की मुक्ति और जीवन दृष्टि माना है। वस्तुतः कविता मानस चेतना का प्रस्फुटन है। प्रभा जी के शब्दों में ''कविता लिखती हूं क्योंकि मन को एक राहत मिलती है। जीने की एक समझ, दृष्टि को एक तरलता मिलती है... कविता मेरे लिए एक अंतः चेतना है–एक भीतर की आवाज, कई बार महज एक ध्वनि... कभी पूरी कविता बन बहती हुई... मैं इसी एक भीतरी बिन्दु के लिए सजग रहना चाहती हूं।''[2] प्रभा खेतान का प्रथम काव्य संग्रह 'अपरिचित उजाले' है। इन कविताओं की मूल संवेदना प्रेम है। वे अपने प्रेम को बेवाक बयान करती हैं जिसमें प्रेम को साहसी बताते हुए एक स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता को उभारा गया है। ''तुम जानते हो/मैंने तुम्हें प्यार किया है/ साहस और निडरता से/ मैं उन सबके सामने खड़ी हूं/ जिनकी आंखे हमारे संबंधों पर प्रश्नवाचक

मक्खियों की तरह मडराती हैं।"[3] 'कृष्णधर्मा मैं' प्रभा खेतान का अन्यतम चर्चित काव्य संग्रह है। जिसका कथ्य कृष्ण कथा एवं महाभारत को आधार बनाकर लिखा गया है। आलोच्य काव्य–कृति को पौराणिक मिथकों के माध्यम से समसामयिक समस्याओं से जोड़ा गया है। उन्होंने अपने इस काव्य संग्रह में अपने समाज तथा विश्वपटल पर स्त्री के साथ हो रहे अन्याय एवं शोषण को रेखांकित किया है। आज भी द्रौपदी अपने अपमान और अत्याचार के विरूद्ध संघर्षरत है। कृष्णधर्मा 'मैं' के तर्ज पर प्रभा जी का 'अहल्या' काव्य संग्रह गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का मिथक ग्रहण कर रचा गया है। प्रभा जी कहती है कि सदियों से स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व अहल्या करती आयी है। स्त्री आज भी मुक्त कहां हो पाई है। हमेशा पुरूष से छली गई लेकिन फिर भी पुरूष की नियति को नहीं पहचान पाई। अपनी मुक्ति की आशा आज भी पुरूष से लगाए बैठी है और ऐसी स्थिति में उनका स्त्रीवादी चिंतन कह उठता है–"उठो/मेरे साथ/मेरी बांह/छोड़ दो,/किसी और से मिली/मुक्ति का मोह!/ तोड़ दो शापग्रस्तता की कारा/तुम अपना उत्तर स्वयं हो अहल्या/ग्रहण करों/वरण की स्वतंत्रता।"[4] इन कविताओं के माध्यम से प्रभा जी स्त्री को अपनी स्वतंत्रता के प्रति जागरूक करना चाहती हैं।

हिंदी साहित्य के स्त्री–लेखन की पूरी परम्परा में प्रभा खेतान के उपन्यासों की महत्ता एवं उपलब्धि सर्वविदित है। स्त्री–जीवन तथा स्त्री–पुरुष संबंधों से जुड़े उन तमाम प्रश्नों को प्रभा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उठाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी को एक संवेदनशील नारी की दृष्टि से देखा है। अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' में अमरिका के तीन शहरों– लान्स एजेल्स, सेंट लुईस और न्युयॉर्क में रहते हुए अपने अनुभवों के आधार पर अमरिकी स्त्री–जीवन की अन्तर्व्यथा का उद्घाटन किया है। अमरिका जैसे समृद्ध देश की नारी की पीड़ा का उद्घाटन करके यह उपन्यास विशिष्टि हो गया है। गोपाल राय के शब्दों में "प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चले' अमरिकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करने वाला हिंदी का पहला उपन्यास है।"[5] स्त्री–विमर्श की दृष्टि से 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में एक ऐसी नारी का जीवन संघर्ष है जो पुरुष प्रधान समाज के विरूद्ध अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। छिन्नमस्ता की नायिका प्रिया पुरुष के अर्थ और सेक्स इन दोनों स्तरों पर उनके शोषण से मुक्त होना चाहती है। प्रभा खेतान का उपन्यास 'अपने–अपने चेहरे' मारवाड़ी परिवार की अंतरंग कथा के माध्यम से स्त्री जीवन की त्रासदी को व्यक्त करता है। उपन्यास की नायिका रमा है,

जो विवाहित गोयनका से प्रेम करती है। सम्पूर्ण कथा में रमा दूसरी होने के कारण हाशिए पर ही रहती है।

उपन्यास इस जीवंत सत्य को रेखांकित करता है कि पुरुष प्रधान समाज में नारी चाहे जिस वर्ग की हो उसे आहत, अपमानित और उपेक्षित होना ही है। मधुरेश के शब्दों में ''अपने–अपने चेहरे उपन्यास में प्रभा खेतान समाज में उस स्त्री की स्थिति और नियति को परिभाषित करती है जिसे रखैल के रूप में जाना जाता है।''[6] स्त्री चेतना के रेखांकन में 'पीली आंधी' प्रभा खेतान का सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसनीय उपन्यास है। उपन्यास में सोमा का संकल्प और साहस नारी शक्ति की ओर संकेत करता है। वह सुजीत से प्यार करती है। उसका गर्भधारण करती है और पति गौतम से साफ कहती है''मैंने तुमसे कभी प्यार नहीं किया। नहीं, तुम्हारी कोई स्मृति नहीं, हां मैं सुजीत से प्यार करती हूं। गौतम मैं जीना चाहती हूं। यहां इस घर में लोग सांस लेते है लेकिन जीते नहीं।''[7] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक काल से लेकर भूमण्डलीकरण के इस दौर तक स्त्री अपनी सामाजिक, स्थति और सम्मानजनक अस्तित्व के लिए संघर्षशील है।

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में नारी मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। उनकी आत्मकथा हंस पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई। इसमें लेखिका पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के भेद पर आधारित नियमों से त्रस्त होकर अपनी अनुभवहीनता में एक विवाहित व्यक्ति से शारीरिक संबंध स्थापित कर पुरुष अधिपत्य की शिकार होती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता ही उन्हें अपना खोया हुआ आत्मविश्वास जगाने के लिए सहायक होती है। प्रभा खेतान की आत्मकथा का मूल्यांकन करते हुए अभय कुमार दूबे ने लिखा है–''प्रभा खेतान ने आत्मकथा लिखकर स्त्री जीवन की दुर्बलताओं के प्रामाणिक ब्योरे पेश किए और उनके आईने में समाज को मजबूर किया कि वह स्त्री–पुरुष संबंधों पर एक बार फिर से सोचें।''[8] प्रभा खेतान एक उद्योगपति महिला हैं। उनका यह दुस्साहस सराहनीय रहा क्योंकि पुरुष का कार्य क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुना। यह बहुत ही हिम्मत और संघर्ष की बात है।

सिमोन द बोउवा के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'द सेकेंड सेक्स' का 'स्त्री उपेक्षिता' शीर्षक से उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया। इसके अलावा 'उपनिवेश में स्त्री' तथा 'बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ– आलोचनात्मक ग्रंथों में भूमंडलीकरण और स्त्री प्रश्न पर चिंतन है। स्पष्ट है कि आलोच्य ग्रंथ में प्रभाजी का अध्ययन, चिंतन–मनन अत्यंत व्यापक एवं गहन है। सभी निबंधों के केन्द्र में नारी अस्तित्व एवं अस्मिता की खोज है।

निष्कर्षत : स्त्री होने के नाते प्रभा खेतान ने अपनी रचनाओं में चित्रित स्त्री का पूर्णतः न्याय देने की कोशिश की है। स्त्री की पीड़ा को जितनी सूक्ष्मता से प्रभा जी ने रेखांकित किया है वह अन्यत्र दुलर्भ है। उसकी बाह्य तथा अंतर व्यथा अपनो के लिए उनकी छटपटाहट, करूण समय आने पर पत्थर से भी सख्त हो जाने वाला उनका स्वभाव मन झकझोर देता है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. रोहिताश्व, कथा साहित्य के प्रतिमान, पृ. 110
2. प्रभा खेतान, सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं, पृ. अपनी बात
3. प्रभा खेतान, अपरिचित उजाले, पृ. 10
4. प्रभा खेतान, अहल्या, पृ. 58
5. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, पृ. 126
6. वही, पृ. 216
7. प्रभा खेतान, पीली आंधी, पृ. 81
8. हंस, नवम्बर 2008, पृ. 70

3.अज्ञेय और 'बाल जगत् की देहरी पर' निबंध

–ड़ॉ.अनुकूल सोलंकी

प्रभारी प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय गुलाना जिला शाजापुर म,प्र

अज्ञेय ने यायावरी जीवन जिया। अनेक विधाओं में लेखनी चलाई और अपने अनुभूत को सत्य के रूप में साहित्यिक स्तर पर प्रसारित किया। प्रौढ और परिपक्व चिंतन के धनी मूर्धन्य साहित्यकार अज्ञेय अपने समकालीन साहित्यकारों के अनेक कोणों से विशिष्ट एवं अलग थे। पाठकों के मनोजगत में गहरी पैठ रखने वाले कवि, निबंधकार कहानीकार साहित्य एवं अन्तः प्रक्रियाएँ लिखने वाले उम्दा चिंतक एवं विचारक बहुत ही कम मिल पाएंगे अज्ञेय का सर्जनात्मक साहित्य संस्कृति एवं मूल्यों का साहित्य है। अनेकानेक प्रयोगों के माध्यम से साहित्यिक जगत को अचंभित करने वाले मनोविश्लेषक अज्ञेय सीधे मानव के अंतर्मन को बोल कर रख देते हैं युवा पीढ़ी एवं परिपक्व मस्तिष्क वाले पाठकों के लिए अज्ञेय ने खुब लिखा लेकिन बाल जगत के लिए वहां कुछ भी नहीं लिख पायें। लेकिन बाल मनोविज्ञान के बारे में सुझाव अनेक दिए।सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' प्रौढ चिंतक और विचारक है। बहुश्रुत प्रतिभा के धनी है अज्ञेय से बाल साहित्य के प्रकाशक प्रश्न पूछते हैं कि "आप बच्चों के लिए कुछ नहीं लिखते।" अज्ञेय प्रकाशक की वह व्यवसाय बुद्धि का हंसकर उत्तर देते हैं "अभी बच्चों के लिए लिखने लायक उम्र नहीं हुई है और दो –चार वर्ष बाद सोचूँगा।"

अज्ञेय के मतानुसार और सन्दर्भ में शायद हलका जवाब ही उपयुक्त होता है, लेकिन बात वास्तव में हल्की नहीं है। क्योंकि ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने के लिए जैसा निष्पाप मन चाहिए या शैशव में संभव है या परिपक्व अवस्था में बड़ी साधना के बाद प्राप्त हो सकता है "पुराने युक्ति है कि कवि का निकष गद्य होता है। "इसी तरह कह सकते हैं कि लेखक के परिपक्वता का निकष है बाल साहित्य। प्रौढ लेखक उसी को मानना चाहिए जो बच्चों के लिए भी लिख सके। मैंने बच्चों के लिए लिखा नहीं तो कम से कम इस निकष को बराबर अपने सामने रखा है।"1अज्ञेय कहते हैं कि मैं बच्चा बन नहीं सका ,लेकिन बच्चों से लगातार कुछ ना कुछ सीखता रह सका हूँ। सत्ता यानी रिएलिटी क्या है ,यह मार्गदर्शन लगातार बच्चे से मिलता रहा है। हम बड़े और प्रौढ़ केवल इकहरे कालजीवी बनाते जाते हैं और अपने को सयाना समझते हैं।

''हमारा सांयानापन हमारे सहज बोध को भोथरा करने की एक लंबी प्रक्रिया है यह प्रक्रिया मुख्यतया आत्मा रक्षात्मक है इसलिए उसे पूरी तरह ना करें मसूर उसके बावजूद इस पहचान को बनाए रखने पर जोर देना है तो आवश्यक है कि बच्चा संसार का सबसे अधिक संवेदनशील संग्राहक यंत्र है कुछ भी उसके पर्यवेक्षण से परे नहीं है ।पर्यवेक्षण कैसे किया जाना चाहिए यह सीखने के लिए इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है कि हम बच्चे का ही पर्यवेक्षण करें ।''2

मूर्धन्य साहित्यकार अज्ञेय बच्चे के मनोविज्ञान और उसके परिवेश की बात करते हैं कैसे कोई बच्चा स्वयं अपने परिवेश का सर्जन करता है कैसे प्रत्येक छाप लगातार मूल्यांकन कर मूल्य संगठन को एक स्वतंत्र जगत् में यथास्थान स्थापित करता चलता है। ''बच्चा संसार का सबसे अधिक संवेदनशील संग्राहक यंत्र है , लेकिन वह केवल यंत्र नही है, जीव भी हैः इसलिए वह केवल क्रिया का लक्ष्य नही है, करता भी है।किसी भी पाये हुए परिवेश में वह स्वंय अपने परिवेश का सबसे समर्थ सर्जक भी है,यह बात भी उतनी ही महत्व कि है। अगर हम यह नही समझतें कि बच्चा स्वंय अपने परिवेश का सर्जन कैसे करता है तों हम यह भी ठीक–ठीक नही समझते सकते िकवह उससे प्रतिकृत कैसे होता है, उसकि छाप कैसे ग्रहण करता है, (और कदाचित् यही सबसे अधिक महत्व कि बात है,)ग्रहण कि हुई प्रत्येक छाप का लगातार मूल्याकंन करता हुआ उसे कैसे मूल्य– संगठन के एक स्वतंत्र जगत् में यथास्थान स्थापित करता चलता है।''3

बच्चे के स्वायत्त संसार की चर्चा करते हुए हम यह भी भूल करते हैं कि वह संसार एक दूसरे संसार से घिरा हुआ है जो कि बच्चे के अभिभावकों का संसार है। बच्चों की यह निर्भरता स्वास्थ्य और विकासोन्मुख हो सकती है, अवस्था और अत्याचारी भी हम बच्चों को 'बनाना' चाहते हैं या बनने देना चाहते है।''किसी भी समाज में किसी भी बच्चे को शिक्षा के मूल समस्या यह है कि बनने देने और बनाने की प्रक्रियाओं और प्रविधियों का संतुलन कैसे हो ।और इस संतुलन का महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब समाज स्वयं तेजी से बदल रहा हो। स्थिर अथवा स्थितिशील समाज में नियमन का आधार तत्कालीन मुल्य– बोध होगा लेकिन जो समाज बदल रहा है उसे यह भी ध्यान रखना होगा कि आगामी कल में उसके मूल्य क्या होंगे।''4

अज्ञेय के मतानुसार शिक्षक के प्रयासों का जोर 'बनाने' वाले पक्ष पर होगा और साहित्यकार का जोर बनाने देने वाले पक्षी पर। दोनों के लक्ष्य विरोधीन होकर एक दूसरे के पूरक होगे। बात यहाँ साहित्य देने की है वह भी बाल साहित्य। इस प्रकार।''उस बच्चे

को मिलने वाला साहित्य अगर ऐसा है कि वह बच्चे की गोचर शक्तियों का सामर्थ्य, उसके पहुँच, उनकी पकड़ उनकी दक्षता या तीव्रता बढ़ाता है तो वह बच्चे के लिए उपयोगी साहित्य और बच्चा स्वयं भी उसकी और आकृष्ट होगा।''5अज्ञेय लक्ष्य करके कहते हैं कि जैविक परिवेश सांस्कृतिक परिवेश से पहले हैं और अधिक बुनियादी है इस प्रकार।''साहित्य का सरोकार संवेदन मात्र के विकास और पोषण से हो, शिक्षा का सरोकार सभ्य जीवन अथवा सांस्कृतिक परिवेश–गत तकाजों को भी ध्यान में रखे तो उचित ही होगा।''6बच्चे के मनोविज्ञान में सभी बातें प्रभाव डालती है आवश्यक है कि हम साहित्य अथवा शिक्षा, सभ्यता और समाज के परस्पर सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए रचनात्मक का प्रश्न उठाये। और उस पर विचार करें। समाज भी स्वतन्त्रयोन्मुख होगा तभी शिक्षा स्वतंन्त्र प्रेरक होगी और बच्चा होगा उन्मुक्त होगा। भाषा भी साथ में जोड़ी जा सकती है।''भाषा के प्रश्न को इसी सन्दर्भ में देखना चाहिए। शहर हो या देहात अमीर परिवार हो या गरीब, बच्चे को कौन सी भाषा मिलती है या दी जाती है इसी बात पर परिवेश के साथ उसके सम्बन्ध की रचनात्मकता का स्वरूप निश्चित हो जाता है।''7

बाल साहित्य का लेखक अपने अपरिपक्व पाठक के लिए यह सम्भव बनाये कि वह खुली आँखों से अपने परिवेशको देखें, पहचाने है और उसका मूल्यांकन करें। क्योंकि जो''जो साहित्य पर्यवेक्षण के लिए खुला क्षेत्र देता है उसकी प्रवृति उसके सामर्थ्य को बढ़ाता है वही बच्चे के लिए उपयोगी और अच्छा साहित्य है।''8इस प्रकार कोई भी बच्चा कल्पना शक्ति के सहारे आगे बढ़ता है, खेलता है और खेलों का आविष्कार करता है, उसी के सहारे अनुभव क्षमता बढाता है। ऐसे में ''एक तरफ बच्चे के गोचर अनुभव है जो यथार्थ की पहली कोटि को रूपायित करते हैं उनके समान्तर बच्चे की अपनी इच्छाएँ है जिनके सहारे वहां उस पहली कोटी के यथार्थ से आगे बढ़कर एक वृहत्तर जगत् को प्रत्यक्ष करता है और उसकी गुत्थियाँ सुलझाता है।''9

यहाँ उचित –अनुचित, सम्मत और निषिध्द तथा अच्छे– बुरे की बात भी उठती है जो आत्यन्तिकबोध है, अज्ञेय इस बहस में पडना आवश्यक नहीं समझते। अज्ञेय के मतानुसार ''यह महत्व की बात इतनी ही है के मूल्यों का संसार भी होता है और शिक्षा अनिवार्यतया उससे जुड़ी हुई हैः मूल्य निर्धारण के दीक्षा शिक्षा के कर्तव्यों में से एक है। हमने इच्छाओं की बात की है और रचनात्मक कल्पना अथवा फेटेंसी के सहारे गुत्थियाँ खोलने की बात की है अपनी इच्छाओं को पहचान कर बच्चा अपने परिवेश से टकराहट की संभावनाएँ भी पहचानता है नियमन नियंत्रण के प्रश्न उसके सामने उठते हैं सम्मद और

निषिध्द की रेखा से उसका परिचय होता है निःसंदेह बाल –साहित्य मूल्यों के जगत् में भी जाएगा और उचितानुचित विवेक को पुष्ट करेगा। लेकिन साहित्यकार इस तीसरे वृत्त से ही आरम्भ करें या ठीक नहीं होगा उसे तो केंद्र तक पहुँचाना होगा। तभी उसका रचा हुआ साहित्य सच्चे अर्थ में बाल– साहित्य हो सकेगा क्योंकि तीसरे वृत्त तक सीमित रहना केवल 'बनाना' चाहने वाले पक्ष के साथ एकात्म हो जाना है, जबकि साहित्यकार का संवेदन सार्थक तभी है जब वह 'बनने' वाले के साथ भी एकात्मता प्राप्त कर सके :सच्चा सम्प्रेषण वही है क्योंकि वास्तविक सह्रदयता भी तो वही है।''10 फैंटेसी केवल बच्चे की प्रवृत्ति नहीं है, वह मनुष्य मात्र की एक सहज प्रवृत्ति और क्षमता है और साहित्यकार को उसका भरपूर उपयोग करना चाहिए। बच्चे के लिए फैंटेसी सचाई को पहचानने, स्वीकार करने और उसके साथ एक सम्बन्ध जोड़ने का एक साधन होता है।''जहां अपेक्षाओं और यथार्थ स्थितियों में टकराहट होती है वहाँ इस सर्जनात्मक कल्पना के सहारे ही बच्चा आपेक्षिक मूल्यों के संसार में अपनी इच्छाओं का स्थान निर्धारित करता है, नहीं वह कुंठित होकर समाजविरोधी कामों का अथवा गोपन क्रियाओं के सहारे अपनी इच्छाएँ पूरी करने में प्रवृत्त होता है स्वास्थ्य विकास में वहां गोचर अनुभव कर प्रत्यक्ष अनुभव और फिर मूल्यबोध के प्रौढ जगत् में अपना स्थान पहचानता है तभी वह इस बात को सही ढंग से ग्रहण कर पाता है कि कुछ इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती कि कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर नहीं है।''11

संपूर्ण निबन्ध को समझने के पश्चात् ''मूलतः बाल साहित्य के और बाल शिक्षा के संदर्भ में जो बात ध्यान में रखने की है वही यही कि सारे चिंतन के केंद्र में स्वयं बच्चा होना चाहिए। शहरी और देहाती जनजातीयां या वनजातीय धनी निर्धन होने से पहले बच्चा एक विकासमान और रचनाशील इकाई है उस तक पहुँचकर ही हम बच्चे तक पहुँच सकते हैं उसके जगत् में प्रवेश पा सकते हैं। अलग–अलग तरह के परिवेश बच्चे को कैसे प्रभावित करेंगे, उसके अनुभव –पुंज को कैसे बदल देंगे यह समझने के लिए पहले हमें यह जानना जरूरी होगा कि परिवेश के प्रति बच्चे की प्रतिक्रिया कैसे होती है प्रतिकृत होने वाली शक्तियों आपेक्षिक क्रम और महत्व क्या है अपने अनुभवों को निरंतर संघठित करने वाली और उसके आधार पर परिवेश से लगातार नये प्रकार का सम्बन्ध जोड़ने वाली बच्चे की प्रतिभा कैसे काम करती है इसको समझ लेने के बाद ही हम यह समझ पाएँगे कि शहरी अथवा देहाती बच्चे की सर्जनात्मक कल्पना उसकी फैंटेसी से किन–किन चीजों से किस किस दिशा में प्रेरित हो सकती है उन प्रवृत्तियों के अनुकूल और बच्चों के साथ

संवाद की स्थिति कैसे स्थापित की जा सकती है तभी फिर शहरी अथवा देहाती या इसी तरह के दूसरे विभाजनों में किसी बच्चे की अवमानना नहीं होगी प्रत्येक जगत् में प्रवेश करना हमारे लिए संभव होगा बल्कि प्रत्येक जगत् का बच्चा स्वयं हमारा स्वागत करेगा। दूसरी ओर अगर वहां बुनियादी समझ नहीं है तो बच्चों के सभी संसारों के द्वार हमारे लिए बंद है, हम चाहे जिस संसार की देहरी पर है सिर पटकते रहें।''12

निष्कर्षः–इस प्रकार संपूर्ण निबंध का केंद्र बच्चे और बाल साहित्य रचने का मनोविज्ञान अज्ञेय के द्वारा प्रस्तुत किया गया है और उन अनुकूल प्रवृत्तियों को बच्चो के मनोविज्ञान से जोड़ा गया है जो बच्चों से संवाद स्थापित करती है। उपर्युक्त समस्त व्याख्या और विश्लेषण बाल –साहित्यकार को अच्छे ढंग से समझना चाहिए तभी साहित्यकार अच्छे और सच्चे बाल साहित्य का सृजन कर पायेगा अन्यथा अज्ञेय जैसे चिंतक की तरह प्रौढ एवं परिपक्व साहित्य की ही रचना कर पायेगा जो आनेवाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक का काम करेगा इसलिए निर्मल वर्मा के शब्दों में कह सकते हैं ''अज्ञेय अपनी पीढ़ी के कमलेखकों में है शायद अकेले जिन्होंने साहित्य सर्जन के बाहर स्वंय रचनात्मक सर्जन को अपनी चिंता का विषय बनाया है''13

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 304
2. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 305
3. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 306
4. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 307
5. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 309
6. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 309
7. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 311
8. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 313
9. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 314
10. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 314–315
11. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 316
12. अज्ञेय रचनावाली(खंडः11) पृष्ठ 320
13. निबंध कला का जोखिम पृष्ठ 70

4.महिलांचे स्वातंत्र्य लढ्यातील योगदान

–डॉ.भाऊसाहेब यशवंता जाधव
इतिहास विभाग,
कोहिनूर कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, खुलताबाद. जिल्हा, औरंगाबाद.

भारताच्या स्वातंत्र्य लढ्याची एकूण माहिती तरुण पिढीला कमीच आहे आणि त्यातल्या त्यात स्वातंत्र्यलढ्यामध्ये गरिबांपासून गर्भश्रीमंत स्त्रियांपर्यंत अनेक प्रकारच्या स्त्रियांनी केलेल्या कामगिरीबद्दल तर अज्ञानच आहे. पुरुषाच्या खांद्याला खांदा लावून स्वातंत्र्य लढ्यात भाग घेणाऱ्या आणि वर्चस्वाचे समर्पण करणाऱ्या या शूर महिलांचे योगदान हे भारतीय स्वातंत्र्य लढ्यात महत्त्वाचे आहे. इ.स. 1947 मध्ये भारत स्वतंत्र झाला, या स्वातंत्र्याच्या प्राप्तीसाठी लाखो–करोडे स्त्री–पुरुष व बालक–बालके यांनी आपले प्राण दिले आहेत. 1997 ते 1998 हे भारताच्या स्वातंत्र्याच्या सुवर्णमहोत्सवांचे वर्ष स्वातंत्र्य मिळाल्यापासून गेली पन्नास वर्षे स्त्रियांच्या स्वातंत्र्य युद्धातील कामगिरीकडे सतत दुर्लक्ष झाले. महिला नेत्यांचे गुणगाण आवश्य झाले व दुर्लक्षणपण झाले. परंतु आपण एक गोष्ट विसरलो आंदोलनाला कर्तबगार नेत्यांची आवश्यकता असते. त्यापेक्षा कितीतरी पटीने अधिक बलिदान करायला निघालेल्या स्वयंसेवकाची असते. म्हणूनच या बड्या नेत्याबरोबर समाजातील सर्व स्तरातील महिलांनी कोणती कामगिरी केली हे ही पाहणे जरुरीचे आहे. भारताचा पहिला स्वातंत्र्यसंग्राम 1857 मध्ये झाला. 1857 चे स्वातंत्र्य युद्ध म्हटले की, आपल्याला झाशीची राणी आठवते. राणी लक्ष्मीबाईने फक्त युद्धाचे नेतृत्त्व केले नाही तर मध्यप्रदेशातील स्त्रियांनी युद्धाच्या कामात सहभाग करण्यात प्रेरणा व उत्तेजन दिले. लक्ष्मीबाईंच्या दोन दासी काशी व सुंदर या युद्धकलेत प्रविण होत्या, त्यांची राणीवर फार मोठी निष्ठा होती. लक्ष्मीबाई ग्वाल्हेरच्या किल्ल्यातून दासीच्या वेषात रात्रीच निघून गेली. सधवा काशिने राणीचा वेष केला व राणीच्या पलंगावर झोपून राहिली. 1857 च्या युद्धात डावपेच लढविण्यात झिनत महलचा मोठा हिस्सा होता. असे मानले जाते. बेगम हजरत महल ही अवधचा नवाब वाजिदअली शहाँ यांची पत्नी होती. जीवनापेक्षा कलावंताचे जीवन अधिक पसंत करीत, परिणामी ब्रिटीशांनी त्यांचे राज्य खालसा केल्याबरोबर त्यांनी पाठवलेल्या ठिकाणी ते निघून गेले.

विसावे शतक :विसाव्या शतकातील पहिली जगप्रसिद्ध स्त्री, स्वातंत्र्यसैनिक भिकाईजी रुस्तुम कामा ह्या होत. त्या मादाम कामा नावाने ओळखल्या जात. त्या खानदानी पारसी

घराण्यातील, मादाम कामांनी आपल्या समाजसेवेला मुंबईतील झोपडपट्टीपासून सुरुवात केली. श्रीमंत रुस्तुम कामांना श्रीमंत व प्रतिष्ठीत घराण्यातील आपल्या पत्नीने झोपडपट्टीतील लोकांच्यात मिसळणे ही गोष्ट बिल्कुल पसंत पडली नाही.जर्मनीतील समाजवादी परिषदेत त्यांनी स्वतःच्या कल्पनेने स्वातंत्र्य भारताचा झेंडा बनवून तो फडकवला. ब्रिटीश विरोधी कारवायांचा त्यांच्यावर आरोप करुन त्यांना लंडनमधून हद्दपार केले गेले. त्या फ्रान्स देशात गेल्या व तिथे राहून भारतीय क्रान्तीकारांना मदत करण्याचे काम त्यांनी केले. लाहोरची लाडो राणी झुत्शी 1918 मध्ये गांधीजींची अनुयायी बनली. दारुच्या दुकानावर निदर्शने करण्यासाठी तिने स्त्रियांना एकत्र केले. महात्मा गांधी यांनी भारतीय स्त्रीला तिच्या शक्तिची जाणीव करुन दिली. आपल्या प्रत्येक भाषणात स्त्रियांकडे वळून ते म्हणत महिलांनो तुम्ही भारत देशाची अर्धी शक्ती आहात. या देशाच्या स्वातंत्र्यलढ्यात तुमचा सहभाग ही अर्धा असायला पाहिजेत. गांधीजीच्या आव्हानाला हाक देवून महिला कॉंग्रेसच्या कार्यात संथ गतीने का होईना पण येवू लागल्या. गांधीजीची पहिली भारतीय शिष्या अवान्तीकीबाई गोखले गांधीजींच्या विचाराने भारावलेल्या होत्या. 1930 मधील सविनय कायदेभंगाच्या चळवळीत त्यांनी स्त्रियांना नव्हे तर पुरुषांनाही मार्गदर्शन केले. नागालँडची राणी गिडालू हिचे आंदोलन असो वा बीन दासचा बंगालचे गव्हर्नर जॅक्सन यांच्यावर गोळी झाडण्याचा प्रयत्न असो वा प्रितीलता वडडेदाराच साहसी मरण स्त्रीचे स्वतः बाहेर पडून योगदान देणे हा तिच्या दृष्टीने महत्त्वाचा टप्पा ठरला. ज्यांच्या दहनभूमीवर कधी पाटी व पणती लावली नाही एवढच काय ज्यांची नावं ही कधीही क्रांतीकारकांच्या विजयगाथेत झळकली नाही, अशा तरुण भारतीय क्रांतीकारी स्त्रियांच्या कहाण्या प्रत्येक भारतीय स्त्रीची मान अभिमानाने उंचावणाऱ्या अशाच आहेत. राणी गिडालू नागालँडच्या उत्तर कछार पहाडी भागात राहणारी ही केवळ तेरा वर्षाची मुलगी होती. बंगालमधील चरगाव येथे क्रांतीकारकांचा असा एक गट आकारास येत होता. 18 एप्रिल 1930 मध्ये त्यांनी पोलिसांचे शस्त्रगार लुटले. टेलीफोन एक्सचेंज उखडून टाकले. युरोपातील लोकांच्या क्लबवर बॉम्बफेक करुन आपली रणनिती जाहिर केली. 06 फेब्रुवारी 1932 रोजी बंगालचे गव्हर्नर सर स्टॅनली जॅक्सन कलकत्ता विद्यापीठाच्या दीक्षांत समारंभात भाषण करत होते. वंग कन्याच्या साहसकथा एकापेक्षा एक रोमहर्षक आहेत. कल्पना दत्त यांनी सांगितलेली प्रितीलता वडडेदारांची कथा अशीच काळजाचा ठोका चुकवणारी आहे. दोघी जणी बालपणीच्या मैत्रीणी बालवयात दोघींनी ईश्वर आणि राष्ट्र यांच्याशी निष्ठा ठेवायचा निर्धार केला.पुढे 24 सप्टेंबर 1932 रोजी प्रीतीने पहाडतील क्लबवर हल्ला केला होता. सांगण्याचे तात्पर्य हे आहे की, भारताच्या

स्वातंत्र्यलढ्यातील स्त्रियांचे योगदान हे मोलाचे होते. कारण भारताच्या स्वातंत्र्याविषयी महिलांना आपले विचार प्रकट करने व भारतीय संस्कृतीचा सर्वांगीण विकास करने व श्स्वातंत्र्यश मिळालेच पाहिजे हे प्रामुख्याने भारतीय महिलांनी बघितले होते. देशात माजलेली ठोकशाही, महिलावर होणारे अत्याचार, बोकाळलेला भ्रष्टाचार आदी विषयाचा विरोध भारतीय स्त्रियांनी केलेला आपणास आढळून येतो.

स्वातंत्र्य लढ्यातील सरोजिनी नायडूंचे कार्य : ह्या स्वातंत्र लढ्यातील एक महान स्वातंत्र्यसेनानी होत. त्यांचा जन्म हैद्राबाद येथे सधन कुटुंबात झाला. स्वातंत्र्य संग्रामात त्यांनी गोखल्यांना गुरू मानले होते. आणि महात्मा गांधीचे नेतृत्व स्विकारले. प्लेगच्या साथीमध्ये त्यांनी जनतेला सर्वतोपरी मदत केली. ब्रिटीश सत्तेच्या विरोधात त्यांनी कॉंग्रेसच्या ध्येयधोरणाचा प्रसार केला. होमरुल लिगच्या कार्यात त्यांचा मोठा सहभाग राहिला. संपूर्ण देशभर त्यांनी ब्रिटीश सत्तेच्या विरोधात असंख्य व्याख्याने दिली. लोकमान्य टिळकांच्या मृत्यूनंतर नायडू ह्या गांधीजीच्या नेतृत्वात काम करु लागल्या. कॉंग्रेसच्या संपूर्ण ध्येयधोरणात त्या सहभागी होत्या. 1925 मधील कानपूर येथील कॉंग्रेसच्या अधिवेशनाच्या त्या अध्यक्षा झाल्या.

स्वातंत्र्य लढ्यातील ॲनी बेझंट यांचे कार्य : भारतीय स्वातंत्र्य लढ्यात सहभागी असलेल्या बेझंट यांचा जन्म इंग्लंडमध्ये झाला. भारतात आगमन झाल्यानंतर त्यांनी श्न्यु इंडियाश वृत्तपत्र काढले. भारतात आल्यानंतर भारतीय संस्कृती, तत्वज्ञान यांचा सखोल अभ्यास केला. भारतीय संस्कृती आणि तत्त्वज्ञानाने त्या प्रभावित झाल्या होत्या. पुढे 1917 च्या कलकत्ता कॉंग्रेस अधिवेशनाच्या त्या अध्याक्षा झाल्या. श्जन्माने ख्रिश्चन व मनाने हिंदू असे त्या स्वतः बद्दल नेहमी म्हणतश लोकमान्य टिळकाप्रमाणेच त्यांनी होमरुल आंदोलन उभारले. भारतीय स्वातंत्र्याचा त्यांनी नेहमी पुरस्कार केला. ॲनी बेझंट ह्या समाजवादी विचारसरणीच्या पुरस्कर्त्या होत्या. भारतीय स्वातंत्र्य लढ्यातील त्यांचे स्थान महत्त्वाचे आहे. भारतीय संस्कृतीचा त्यांनी प्रचंड अभ्यास केल्याने त्या नेहमी हिंदू व बौद्ध तत्वज्ञानाचा स्वीकार करीत. त्यामुळेच भारतीय स्वातंत्र्य, शिक्षण, समाजसुधारणा याबाबतीत त्यांचे स्थान अतिशय महत्त्वाचे आहे.

अरुणा आसफ अली : ह्या भारतीय स्वातंत्र्य लढ्यातील आग्रणी महिला स्वातंत्र्य सेनानी होय. गांधीजींनी पुकारलेल्या 1942 च्या श्करो वा मरोश्श या आंदोलनात त्या सहभागी झाल्या होत्या. भारतीय स्वातंत्र्य प्राप्तीनंतर त्या राजकारणात सक्रीय झाल्या.

सुचेता कृपलानी : या स्वतंत्र भारताच्या पहिल्या स्त्री मुख्यमंत्री होत, दिल्लीत शिक्षण पूर्ण करून सुचेता बनारस हिंदू विद्यापीठात इतिहासाच्या अध्यापिका झाल्या. पुढे वयाच्या 28 व्या वर्षी त्यांनी आचार्य कृपलानी यांच्याशी विवाह केला. हिंदूस्थानाच्या स्वातंत्र्य संग्रामात त्यांनी हिरिरीने सहभाग नोंदवला. 1942 ते 1944 त्यांनी भूमिगत राहून आंदोलन केले. पुढे त्यांना अटक करण्यात आली. स्वतंत्र भारताच्या राजकारणातही त्यांचा सक्रीय सहभाग राहिला. देशातील पहिल्या महिला मुख्यमंत्री म्हणूनही त्यांच्याकडे बघितले जाते.

उषा मेहता : भारताच्या स्वातंत्र्य लढ्यातील एक महत्त्वाचे व्यक्तिमत्त्व. 1942 च्या आंदोलनामध्ये त्यांचा सहभाग होता. 'कॉग्रेस रेडिओ' या गुप्त केंद्राच्या त्या आयोजक होत्या. त्यांचा जन्म गुजरातमधील सारस गावांत झाला होता. लहानपणीच उषा मेहता सायमन कमिशनच्या विरुद्ध निषेध मोर्चात सहभागी झाल्या होत्या. मुंबईमध्ये स्थायिक झाल्यांनतर त्यांचे कुटुंब स्वातंत्र्य चळवळीत अधिक सक्रिय झाले होते. गांधीजींनी घोषित केल्याप्रमाणे मुंबई येथून गोवालिया टँक मैदानात एक रॅलीसह 9 ऑगस्ट 1942 ला भारत छोडो आंदोलन सुरू होणार होते. तत्पुर्वी गांधीजीसह सर्वच नेत्यांना अटक करण्यात आली होती. तरी पण राष्ट्रीय ध्वज उंचावण्याकरीता ज्युनियर नेत्या व कार्यकर्त्याच्या गटाला सोडण्यात आले. 9 ऑगस्ट 1942 रोजी गोवालिया टँक ग्राऊंडवर तिरंगा फडकविणाऱ्या उषा त्यापैकी एक होत्या. त्याचे नाव ''ऑगष्ट क्रांती मैदान" असे ठेवण्यात आले.

कमलादेवी चट्टोपाध्याय : कमलादेवी ह्या सुप्रसिद्ध राजकिय व सामाजिक कार्यकर्त्या होत्या. महात्मा गांधीच्या असहकार चळवळीमध्ये त्यांनी भाग घेतला. शेतीविषयक प्रश्नांसंबंधी त्यांना विशेष आस्था होती. कामगार विषयक चळवळीमध्येही त्यांनी भाग घेतला. ऑल इंडिया विमेन्स कॉन्फरन्स ही स्त्रियांची संघटना त्यांच्या प्रयत्नातून साकार झाली. त्यांची भारतीय रंगभूमीच्या संदर्भातील कामगिरी ही लक्षणीय आहे. त्यांनी भारतीय नाट्याकलेत नवचैतन्य निर्माण करण्यासाठी अनेक नवनवीन प्रयोग केले होते. सार्वजनकि क्षेत्रातील कामगिरीबद्दल त्यांना मॅगेसेस पुरस्कार ही देण्यात आला.

कॅप्टन लक्ष्मी सेहगल : लक्ष्मी सेहगल या पेशाने डॉक्टर होत्या. 1943 साली त्यांनी सुभाषचंद्र बोस यांच्या आझाद हिंद सेनेत राणी लक्ष्मीबाई रेजीमेंटच्या कर्नल पदी म्हणून जबाबदारी स्विकारली. लक्ष्मी सेहगल ह्या कॅप्टन लक्ष्मी या नावाने ओळखल्या जातात. आझाद हिंद सेनेच्या पथकामध्ये सुरुवातीला 185 स्त्रिया सैनिक होत्या. यानंतर हा आकडा 2000 वर पोहचला. पिस्तुल, बंदुक, मशिनगन्स यासारखी शस्त्रे वापरण्याचे शिक्षण या स्त्रियांना दिले जाई. हिंदूस्थान आणि ब्रम्हदेश यांच्या आघाडीवर झालेल्या युद्धात या

स्त्रियांनी विजय मिळवला. नंतर आझाद हिंद सेना माघार घेत असता यांच्या फौजेने निकराचा लढा दिला आणि सुभाष बाबू यांना निसटून जाण्याची संधी दिली व मगच त्या ब्रिटीशांना स्वाधीन झाल्या. युद्धाच्या अखेरीला त्या जखमी सैनिकांची सेवा करीत होत्या. त्यामुळे त्यांच्यावर खटला न भरता त्यांना सोडून देण्यात आले.

समारोप :एकूणच स्वातंत्र्य लढ्यामध्ये महिलांचा सहभाग हा अतिशय महत्त्वाचा होता. देशातील महिलांचा सहभाग स्वातंत्र्यलढ्यात नसता तर स्वातंत्र्याचे यश मिळवणे कठीण झाले असते. देशांतर्गत आणि देशाबाहेरील राहणाऱ्या महिलांचाही या स्वातंत्र्यलढ्यात मोलाचा वाटा आहे. अशा या स्वातंत्र्य लढ्यातील महिलांना फारशी प्रसिद्धी कधी मिळाली नाही. परंतू त्यांनी आपले ध्येय कधीच सोडले नाही.

संदर्भ :

1. चौसाळाकर अशोक – स.पा.टिळक आणि आगरकर यांचे राजकिय विचार, कोल्हापूर – 2007
2. भारताचा स्वातंत्र्यलढा – लेखक अरुण जाखंडे, प्रकाशन – पद्मगंधा प्रकाशन.
3. भारताचा स्वातंत्र्यलढा भाग 1 लेखक – ए.जी.थोरात, पी.एस.शिंदे (शैक्षणिक टेक्स बुक इतिहास प्रकाशन – फडके प्रकाशन)
4. महाराष्ट्रातील कॉंग्रेसचा स्वातंत्र्य लढा (1885–1920) लेखक–सुमन वैद्य व शांता कोठेकर म.रा.सा.स (महामंडळ 1885)

5.राष्ट्रनायक भगतसिंह के मानवदर्शन में दलित सांस्कृतिक यथार्थ

– *बुद्धिराम,*

असि.प्रोफेसर समाजशास्त्र

डा.बी.आर. अम्बेडकर जन्मशताब्दी महाविद्यालय, धनसारी अलीगढ़

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व पराधीनता से मुक्ति के साझा प्रयासों का उद्देश्य केवल अंग्रेजों से राजनीतिक आजादी प्राप्त करना ही नहीं बल्कि देश के नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक व सांस्कृतिक पुनरूद्धार के प्रयास भी शामिल थे। इनके लिए विभिन्न क्षेत्रों के सभी वर्गों, जातियों, सम्प्रदायों व भाषाई समुदायों ने अनेक शहादतें दीं, जो हमारी अमूल्य साझा सांस्कृतिक विरासत है। इस हेतु 1857 की सशस्त्र क्रान्ति व इसके पूर्व व बाद के प्रयास जिनमें बिरसा मुण्डा, सिद्धो कान्हू, कोल भील गोंड व कूका विद्रोह, वीर कुंवरसिंह, राजा नाहरसिंह व महेन्द्रप्रताप, रानी झांसी, झलकारी बाई कोरी, ऊदादेवी पासी, तिलका मांझी, बहादुरशाह जफर, दादा कान्हा, कुरील, जैसवार, चेतराम जाटव, उदइया व बांके चमार, महावीरी, मदारी व मातादीन वाल्मीकि, स्वामी अछूतानन्द, बाबू मंगूराम, सर छोटूराम, नारायण गुरू, महात्मा फुले, पेरियार व डा0 आम्बेडकर के आन्दोलनों में संगठित, असंगठित प्रयास प्रमुख रहे। साथ ही 1885 में कांग्रेस स्थापना, गाँधी नेतृत्व, क्रान्तिकारी राष्ट्रीय धारा, आजाद हिंद सेना व सामाजिक न्याय की साम्यवादी समाजवादी धाराओं से भी ग्रामीण किसानों, नगरीय निम्न वर्गों महिलाओं आदिवासियों, श्रमिकों, दलित, शोषित, वंचितों को संघर्ष व संगठित नेतृत्व की नवीन ऊर्जा व दिशा प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निर्मित लोकतांत्रिक भारत गणराज्य के संविधान में इन संघर्षों के साझा विरासतजन्य सांस्कृतिक मूल्यों में समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व व सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय आदि की संविधान द्वारा संरक्षित किया गया है। देश को स्वतंत्र हुए सात दशक से अधिक अर्थात् 75वां वर्ष चल रहा है, जिसके उपलक्ष्य में मा0 प्रधानमंत्री जी द्वारा आजादी का अमृत महोत्सव नामकरण कर संस्कृति मंत्रालय के माध्यम से अनेक कार्यक्रमों का आरम्भ किया है किन्तु आजादी के इतने वर्षों बाद भी इस विशाल भारतीय समाजवादी, पंथ निरपेक्ष लोकतंत्र में निम्नवर्गीय सामान्य जनमानस में निराशा के भाव तथा वे ही आशंकाएं हैं, जिन्हें संविधान निर्माता डा0 बी.आर. आम्बेडकर ने संविधान समर्पण के अवसर पर व्यक्त करते हुए संविधान की सफलता, असफलता, परम्पराग्रस्त

पूर्वाग्रहों, बौद्धिक वर्ग की उदारवादी पहल व राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता मिलने की आशा करते हुए व्यक्त की थी। इन्हीं आशा निराशाओं को सत्तर के दशक में प्रसिद्ध हिन्दी गजलकार दुष्यंतकुमार, साहिर लुधियानवी, शैलेन्द्र आदि ने इन शब्दों में पिरोया– ''कहां तो तय था चिरागां हर बसर के लिए। कहां चिराग नही है शहर भर के लिए।।

आशा निराशाओं के इस परिवेश में ही महान क्रान्तिकारी शहीदों भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव, मदनलाल धींगरा, ऊधमसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, वीर अब्दुल हमीद व नेताजी सुभाषचन्द बोस की भावपूर्ण स्मृति हमारे मानस में आ जाती है। उन महान बलिदानों में प्रथम स्वातंत्र्य समर व जलियांवाला बाग के जघन्य हत्याकांडों से लेकर काकोरी, चौरी चौरा, मेरठ, कानपुर, बैरकपुर, दिल्ली व लाहौर के गोली, बम व फांसी काण्डों तथा षहादतों की एक लम्बी सांस्कृतिक श्रृंखला निर्मित की। विशेषकर महान क्रान्तिकारी राष्ट्रनायक सरदार भगतसिंह जिन्होंने अपनी किशोरावस्था व छात्र जीवन में ही देश की गुलामी से विचलित होकर जहाँ अंग्रेजों के विरूद्ध आजादी के संघर्ष में असीम साहस से प्रसन्नमुख होकर प्राणोत्सर्ग कर दिया वहीं देश की आंतरिक, सामाजिक, आर्थिक, दुर्व्यवस्था के विरूद्ध दलित, शोषित, वंचित अछूतों व महिलाओं के मानवाधिकार संरक्षण व कल्याण हेतु तथाकथित द्विज, सवर्णों को सोचने व दलित अछूतोद्धार, शुद्धिकरण, हरिजन, गिरिजन, वनवासी आदि कहने पर मजबूर किया।

भगतसिंह का जन्म 28 सितम्बर 1909 को वृहद पंजाब के लायलपुर हुआ। लाहौर कॉलेज से स्नातक व पराधीन भारत में विवाह न करने के साहसी संकल्प के साथ ग्रह त्यागकर निकले भगतसिंह ने देश की स्वतंत्रता के साथ ही दलितों का भी अपने प्रसिद्ध आलेख 'अछूतों का सवाल' आदि के द्वारा प्रगति व विकास के आहवान किए। साथ ही 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' जैसे विश्व प्रसिद्ध आलेखों से र्ड्श्वर के अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, सर्वकल्याणक, सर्वहितकारी, विश्वव्यापी (।सउपहीजलए व्ठदप च्तमेमदज) रूप को चुनौती देकर स्वयं के साम्यवादी, समाजवादी, जनवादी, नास्तिक व मानवतावादी होने के अद्वितीय प्रमाण दिए। स0 भगतसिंह ने 'अछूतों का सवाल' नामक आलेख जो विद्रोही नाम से जून 1928 की कीरती पत्रिका में प्रकाशित हुआ, में लिखा– ''अछूतों तुम संगठित हो जाओ, तुम ही असली सर्वहारा हो। तुम्हारे पास खोने को कुछ नहीं, तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं। उठो व्यवस्था के विरूद्ध बगावत खड़ी कर दो, बस फिर तुम्हारी गुलामी की जंजीरें कट जायेंगी।,, फिर अपने नास्तिक होने के प्रमाण स्वरूप लिखा– ''मेरे

एक दोस्त ने मुझे विनती करके लिखा नास्तिक मत बनो। अपने अन्तिम दिनों में तुम ईश्वर से फाँसी माफी की प्रार्थना करो। मैंने कहा–"नहीं प्यारे दोस्त ऐसा नहीं होगा। मैं इसे अपने लिए अपमानजनक मानता तथा भ्रष्ट होने की बात समझता हूँ। मैं स्वार्थी होकर किसी भगवान से कोई प्रार्थना नहीं करूँगा। चाहे इसे मेरा अहंकार ही समझें तो भी मैं इसे स्वीकार करता हूँ।,,.....मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढा है जिन्होंने विपत्तियों में साहस से मुकाबला किया। अतः मैं भी उन्हीं की तरह फाँसी की आखरी घड़ी तक सिर ऊँचा किए खड़ा रहना चाहता हूँ।,,[1] उपरोक्त उदाहरणों से जहां स0 भगतसिंह के महान मानवतावादी होना स्पष्ट होता है, वहीं दलितों को भाग्य, भगवान, ईश्वर, स्वर्ग, नर्क, के जाल से हटकर सदाचारी, कर्मशील व स्वयं के भाग्य विधाता होने का आहवान है।

भगतसिंह के नास्तिक होने का वास्तविक प्रमाण उनके जेल जीवन के अंतिम दो वर्षों में लाहौर सेन्ट्रल जेल में लिखे गये दो ग्रन्थों व कई आलेखों में से एक महत्वपूर्ण लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' को उनके पिता द्वारा जेल से बाहर ले आना तथा उनकी शहीदी के बाद सितम्बर 1931 में लाहौर से ला0 लाजपतराय के पत्र 'द पीपुल' में प्रकाशित हो जाना था।,,[2] वास्तव में इस महत्वपूर्ण लेख के पीछे तत्कालीन आन्दोलनकारी बाबा रणधीर सिंह से हुई भगतसिंह की भेंट थी, जो उसी जेल में बंदी, ईश्वर विश्वासी एक धार्मिक व्यक्ति थे और उन्होंने बाबा के ईश्वर की शरण में जाने, प्रार्थना करने के उपदेशों को न मानने पर नाराजगी के बाद अहंकारी होना भी स्वीकार कर लिया और लिखा– "मैं पूछता हूँ तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर उस व्यक्ति को उस समय क्यों नहीं रोकता जब वह कोई पापकर्म या अपराध करता है? युद्ध उन्मादी राजाओं को क्यों नहीं रोकता, जो राज्य विस्तार के लिए मानवता का [ून खराबा करते हैं? अंग्रेजों की बुद्धि में भारत मुक्ति की भावना क्यों नहीं भर देता अथवा पूँजीपति धन्ना सेठों के दिमाग में उत्पादन के साधनों पर अपना व्यक्तिगत सर्वाधिकार त्यागकर श्रमिकों के प्रति परोपकार की भावना क्यों नहीं भर देता?,,[3] उनका मत था कि भारत में अंग्रेजों की हुकूमत ईश्वर की इच्छा से नहीं बल्कि पूँजी, हथियार व दिमाग की ताकत से है और हम अकर्मण्य व उदासीन लोग उनके विरोध का साहस भी नहीं कर पाते।

भगतसिंह का मानव दर्शन व नास्तिकता पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित थे। जिस तरह बौद्ध दर्शन के विद्वान बौद्ध बनने से पूर्व व्यक्ति को बुद्ध की शिक्षाओं के

विषय में सामान्यतः यह बताते हैं कि जानो, छानो फिर मानो अर्थात् निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग फिर उपयोग की वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाकर ही किसी बात को मानो। ठीक उसी दूरदृष्टि (थ्वतमेपहीज) से उन्होंने रहस्यवाद, आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, अहिंसावाद, साम्यवाद, समाजवाद व यथार्थवाद का गहन अध्ययन किया। उन्होंने लेनिन, त्रोस्की, मार्क्स व क्रान्तिकारी बाकुनिन की पुस्तक 'ईश्वर व राज्य' तथा निर्लम्ब स्वामी की 'सहज ज्ञान' आदि को पढ़ा, जिनमें रहस्यमय व आत्मविश्वासी नास्तिकतावाद भरा हुआ था तथा यह दर्शन उनके लिए अत्यन्त रोचक सिद्ध हुआ। अतः भगतसिंह ने स्वयं लिखा– ''1926 तक मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि दुनिया (न्दपअमतेम) को बनाने, चलाने व नियंत्रित करने वाली सर्वशक्तिमान ईश्वरीय परमसत्ता (।सउपहीजल) के अस्तित्व का सिद्धान्त असत्य व निराधार है। ईश्वर के प्रति अविश्वास के विषय में मैंने अपने मित्रों से चर्चा की और स्वयं को नास्तिक घोषित कर लिया।,,[4] उन्हें यह भी ज्ञात था कि अनेक तर्कों के जबाव नहीं दे पाने के कारण लोग नास्तिकों को अहंकारी, दम्भी व मानसिक रूप से जड़ मूर्ख भी कहते हैं साथ ही यह भी कि हमारे भोले भाले प्रकृति पूजक पूर्वजों ने जिस प्रकृति की परमसत्ता (नचमत च्वूमत) में अंतर्यामी ईश्वर का जो विश्वास उत्पन्न कर लिया उसे चुनौती देने वालों, न मानने वालों को काफिर, विधर्मी, गद्दार व विश्वासघाती भी कह दिया जाता है किन्तु उनके तर्क और बौद्धिक भाव इतने मजबूत होते हैं कि उन्हें ईश्वर के कोप या ईशनिंदा का भय, मुसीबतों, विपत्तियों का भय दिखाकर दबाया ही नहीं जा सकता तो फिर इन बेकार की बहसों में कीमती समय नष्ट करने की आवश्यकता ही क्या है? भगतसिंह ने इस विषय में कहा– ''मैं किसी हेकड़ी (टंदपजल) या दंभ से प्रेरित होकर नास्तिक नहीं बना और किसी रहस्यवाद, सुखवाद या काव्यवृत्ति के उन्माद, मदहोशी का भी सहारा नहीं लेना चाहता बल्कि मैं तो यथार्थवादी हूँ और अपनी सहजवृत्ति व अंतःप्रकृति पर विवेक से ही विजय पाना चाहता हूँ। हाँ कामयाबी अवश्य ही संयोग व परिस्थितियों पर निर्भर करती है।,,[5]

ईश्वर की उत्पत्ति के विषय में भगतसिंह का ज्ञान सामान्य था या विशेष, ईश्वर के सृष्टिकर्ता रूप के विषय में उनके विचार क्या थे? या उनका प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान वैज्ञानिक था या आदर्शवादी, इन सभी प्रश्नों को उन्होंने अपने उसी प्रसिद्ध आलेख में सुस्पष्ट किया व इन रहस्यमय व उलझाऊ प्रश्नों के उत्तरों के लिए सृष्टि की उत्पत्ति में प्रकृति की महाघटना सूर्य का महाविस्फोट, ब्रह्माण्ड के महाविचलन व आकस्मिक संयोग से उत्पन्न निहारिका (छमइनसंम) नेचुरल हिस्ट्री व जीव विज्ञान के इतिहास, चार्ल्स डारविन के

ग्रन्थ 'जीवों की उत्पत्ति' (व्तपहपद व" चमबपमे) मानव विकास प्रक्रिया तथा मानव द्वारा प्रकृति से निरंतर विरोध व संघर्श की विकासवादी प्रक्रिया का फल बताया साथ ही ईश्वर की उत्पत्ति के विशय में लिखा– ''मानव ने अपनी कमियों, कमजोरियों पर विचार कर अपनी सीमाओं को समझते हुए जीवन की विशम परिस्थितियों से सामना करने, सुख समृद्धि व शान्तिकाल में उच्छृंखल, अहंकारी होने से रोकने व नियंत्रित करने के लिए ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना की गई।,,[6] आध्यात्मिक आचार्य ओशो रजनीश के मत में भी– ''हस्ती (ईश्वर) का षोर तो है दीदार नहीं।,,

राश्ट्रनायक भगतसिंह के मानवीय विचार दर्शन में तर्क व विवेक को विशेष स्थान दिया गया किन्तु उस प्राचीनकाल में व्यक्ति को कोई तार्किक प्रमाण नहीं मिला तो सांसारिक रहस्यों को सुलझाने के प्रयासों में काल्पनिक दर्शन को स्वयं पर हावी पाया जबकि आधुनिककाल में उन जैसे सामाजिक क्रान्तिकारी ने दर्शन को मानवीय कमजोरी का परिणाम बताते हुए कहा– ''दर्शन मानव की मानसिक दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है।,,[7] प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने की कड़ी में दर्षन की उत्पत्ति व दृष्टिकोणो की विभिन्नता में अनेक सम्प्रदायों, धर्मों, विचारधाराओं आस्तिक, नास्तिक, पूर्व व पश्चिमी दर्शनों में मतभेद, वैमनस्य व संघर्श हुए। इन्ही की ओर इंगित कर उन्होंने मानवीय दृष्टि से विचार व्यक्त किए–''विभिन्न धर्म व दर्शनों में भी मतान्तर है। भारत में ही बौद्ध व जैन उस ब्राह्मण धर्म से अलग हैं, जो स्वयं आर्य समाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी विश्वासों में विभाजित है। प्राचीन दार्शनिक विचारक चार्वाक के दर्शन में एक स्वतंत्र विवेक मिलता है, जिन्होंने अपने समय में ईश्वर की प्रभुसत्ता को चुनौती दे डाली थी। जीवन व जगत सम्बन्धी मौलिक प्रश्नों पर इस्लाम व ईसाइयों समेत सभी के मत भिन्न हैं। सभी दावा करते हैं कि उनका धर्म दर्शन ही सच्चा व अच्छा है और यही विचार यहाँ सभी बुराईयों की जड़ है।,,[8]

यहाँ विचारणीय प्रश्न यही है कि प्राचीन विद्वान दार्शनिकों के अनुभवाश्रित ज्ञान को आधार बनाकर अज्ञान व अंधविश्वासों के विरूद्ध संघर्ष के बजाए हम निठल्ले, आलसी व निकम्मे लोग अपने धर्म सम्प्रदायों, मान्यताओं व विश्वासों में अटल अडिग रहकर कहीं मानवता को विकास के बजाए पराभव की ओर धकेलने के दोषी तो नहीं? भगतसिंह ने जहाँ ईश्वर के साथ ही आस्तिकों से दुनिया की दुख, तकलीफों व अशान्ति पर सवाल

किए वहीं हिन्दुओं से भी पूछा कि आज जो लोग दुख, अत्याचार, शोषण व उत्पीड़नग्रस्त हैं क्या वे पूर्वजन्म के पाप हैं? उन्होंने कहा– ''मानना पड़ेगा कि आपके कुछ बड़े चालाक व धूर्त पूर्वजों ने कुछ ऐसे सिद्धान्त बनाए जिनसे तर्क, विवेक व अविश्वास के आधार पर की जाने वाली सभी कोशिशों को दबाकर नाकाम कर दिया गया तथा धर्मशास्त्रों के द्वारा दुनिया के सबसे बडे पाप गरीबी (च्वअमतजल) को ईश्वर द्वारा दी गयी पूर्व कुकर्मों की सजा के रूप में संस्तुत कर दिया गया और यह इस चिंता में भी किया गया कि ये अछूत बहुसंख्यक कहीं विद्रोह न दें। कभी आपने यह भी नहीं सोचा कि गरीब, अज्ञानी कथित अछूत (दलित) जातियों की नियति हिन्दु समुदाय में कितनी दुर्गतिपूर्ण है?,,[9] स0 भगतसिंह ने कहा कि–''हमारे पूर्वजों ने बड़े पाप कर्म किए है किन्तु अब क्षमा याचना व प्रायश्चित का समय है। इन अछूतों को बिना अमृत छकाये, बिना कलमा पढ़ाये या शुद्धिकरण किए अपने में शामिल करके उनके हाथों से पानी पीना व अन्य सांस्कृतिक कार्यों में सहभागिता ही उचित मानवीय ढंग है।,,[10]

राष्ट्रनायक भगतसिंह के मानव दर्शन में अछूतों का सवाल व अछूतों की समस्याओं के ज्वलंत प्रश्न भी मानवीय सम्मान व सहानुभूतिपूर्ण स्थान रखते हैं। 1923 के काकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन में जिन्ना के अध्यक्षीय भाषण में अछूत दलितों को हिन्दु मुस्लिम संस्थाओं को बांट देने व उनके कथित पुनर्वास हेतु अमीर, धन्ना सेठों द्वारा धन देने के प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया स्वरूप भेजे गए भगतसिंह के पत्र 'अछूतों का सवाल' में लिखा– ''उनके छूने से धर्म भ्रश्ट हो जाएगा, मंदिर अपवित्र हो जाएंगे, देवगण नाराज होकर कोप करेंगे, इनके पानी लेने से कुँए अपवित्र हो जाएंगे, ऐसे विचारों को सुनकर बीसवीं सदी के आधुनिक समाज में शर्म आती है।,,[11] जबकि उत्तर साफ है कि इनकी गरीबी का इलाज करो। ऊँचे कुल के गरीब कोई भी गन्दा काम नहीं करते, सवर्ण माताएं भी तो अपने बच्चों का मैला साफ करके भी मेहतर अछूत नहीं हो जातीं। इसी सदी में भौतिकवादी यूरोप में इंकलाब की आवाज बुलन्द हुई तथा अमेरिका, रूस व फ्रांस के क्रान्ति कालों में समानता की घोषणा कर दी गयी, जबकि हमारे देष के अतिअध्यात्मवादी धार्मिकों द्वारा स्वयं पर विदेशों में हो रहे दुर्व्यवहार व अंग्रेजी शासन से समानता की गुहार तो लगायी जाती है लेकिन क्या हमें ऐसी शिकायत करने का अधिकार है? हालांकि– ''गांधी जी ने सितम्बर 1932 में अछूत दलितों पर हरिजन नाम थोप दिया किन्तु डा0 आम्बेडकर

व उनके परम मित्र भाऊराव गायकवाड़ के विरोध प्रस्ताव के फलस्वरूप 1935 के भारत सरकार अधिनियम व संविधान में इन्हें अनुसूचित जाति कहा गया।,,[12]

डॉ0 हरिनारायण ठाकुर इस सन्दर्भ में लिखते है–''इतिहास से पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था के विषय में जितने उदार भगतसिंह, सुभाषचन्द्र बोस आदि क्रान्तिकारी थे गाँधीजी उतने बिल्कुल नहीं थे। उनकी हरिजन भक्ति तो डॉ0 आम्बेडकर के दलित आन्दोलन की प्रतिक्रिया ही थी।,][13] पटना में यद्यपि ला0 लाजपतराय द्वारा उन्हीं दिनों हिन्दु महासभा के अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए लम्बी बहसों के बाद अछूत दलितों के जनेऊ धारण करने व वेद शास्त्र पढ़ने पर सहमति प्राप्त करके हिन्दुओं की कुछ लाज बचाई किन्तु भगतसिंह की दृष्टि में यह तथ्य भी स्पष्ट था कि कुत्ता सवर्णों की गोद में बैठकर कार में सफर कर सकता है, रसोई में बेरोक टोक घूम सकता है, मन्दिर, कुँए, तालाबों व नदियों में पानी पीकर स्नान कर सकता है फिर वे अछूतों को पशुओं से भी गिरा समझेंगे तो वे दूसरे धर्मों में तो जायेंगे ही। उन्होंने यह भी लिखा–''वर्तमान बड़े सुधारक मालवीय जी अछूतों के प्रेमी व प्रशंसक होकर मेहतर, मोची के हाथों अपने गले में फूलों का हार तो डलवा लेते हैं किन्तु घर जाकर कपड़ों सहित स्नान करते हैं तो हमें हृदय में बड़ा दुख होता है। यह बड़ी खूब चतुर चाल है।,,[14] स0 भगतसिंह ने स्वतंत्रता पूर्व की अछूत समस्याओं व उनके सुधार को लेकर हिन्दु, मुस्लिम व सिखों में हलचल की ओर भी समाज का ध्यान आकर्शित किया कि किस तरह उनको जनेउ देने उतारने, दाढ़ी रखने व कटाने तथा अमृत छकाने को लेकर इन धर्मों में कैसी गला काट प्रतिस्पर्द्धा है जबकि इसाई मिशनरी अछूतों की शिक्षा, स्वास्थ्य व सांस्कृतिक उन्नयन किस शांति व मानवीयता से कर रही हैं व इससे देश के इस दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है। बाबू मंगूराम के 'आदि धर्म मंडल' जैसे संगठन तो किसी की खुराक बनने के बजाय स्वयं स्वतंत्र अस्तित्व के प्रचार व पक्ष के परिणाम हैं।

भगतसिंह अंत में अपने मानव दर्शन की पराकाष्ठा में दलित सम्मान की जिजीविषा को जागृत कर आह्वान करते हैं– ''हम मानते हैं कि अछूतों के मानवाधिकारों के संघर्ष हेतु उन्हीं के जन प्रतिनिधि हों और उनसे साफ कहते हैं कि उठो अछूत जनसेवक भाईयो, अपना इतिहास देखो। गुरू गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे। शिवाजी आपके भरोसे ही वह कर सके जिससे वे इतिहास में महापुरूष हैं। तुम्हारा

त्याग व इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा है। तुम्हारी नित्य सेवा से ही जनता के सुखों में वृद्धि व जीवन आसान होता है किन्तु हम उसे नहीं समझते.... वे अभी भी तुम्हें जूती की तरह पैरों के नीचे दबाए रखना चाहते हैं। अब उठो अपनी शक्ति पहचानो, लातों के भूत बातों से नहीं मानते। दूसरों का मुँह मत ताको, संघर्ष करो फिर तुम्हारे अधिकारों से इनकार की जुर्रत कोई नहीं कर सकेगा। सोए शेरो उठ खड़े हो जाओ।,,[15] शोध निष्कर्षो में अन्ततः यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है कि स0 भगतसिंह वास्तव में क्रान्तिकारी राष्ट्रनायक थे। उन्होंने जहाँ एक ओ पीड़ित मानवता पर दयादृष्टि न रख पाने वाले ईश्वर को न मानते हुए अपने प्राण रक्षा की स्वार्थी प्रवृत्ति से दूर रहकर अपनी नास्तिक श्रेष्ठता का परिचय दिया वहीं अछूत दलितों की तत्कालीन दुर्दशा से दृवित होकर सनातन हिन्दू धर्म से मानवीय आधार पर कोई उम्मीद न रखकर स्वयं ही अपनी बेहतरी के लिए उनको चेतना व सघर्ष का आह्वान कर श्रेष्ठ मानवीयता का भी परिचय दिया जो अन्यत्र दुर्लभ है।

शोध सन्दर्भ–

(1) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ, बुद्धम पब्लिशर्स जयपुर 2019 पृष्ठ 04. (2) उपरोक्त पृष्ठ 18. (3) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ– आम्बेडकर इन इण्ड़िया (पत्रिका) कुशीनगर फरवरी, मार्च 2014 पृष्ठ 28. (4) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ, बुद्धम पब्लिशर्स जयपुर 2019 पृष्ठ 08. (5) उपरोक्त पृष्ठ 11. (6) उपरोक्त पृष्ठ 18. (7) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ– आम्बेडकर इन इण्ड़िया (पत्रिका) कुशीनगर फरवरी, मार्च 2014 पृष्ठ 23. (8) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ, बुद्धम पब्लिशर्स जयपुर 2019 पृष्ठ 12. (9) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ, बुद्धम पब्लिशर्स जयपुर 2019 पृष्ठ 15. (10) डॉ0 हरिनारायण ठाकुर– दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2014 पृश्ठ 339. (11) डॉ0 डी.आर. जाटव– हरिजन कौन है ? समता साहित्य सदन जयपुर 2015 पृ0 3 (12) डॉ0 हरिनारायण ठाकुर– दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2014 पृष्ठ 333. (13) डॉ0 हरिनारायण ठाकुर– दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2014 पृष्ठ 338. (14) संपादकीय– बहुरि नहि आवना (त्रैमासिक) संयुक्तांक नई दिल्ली जन0 दिस0 2015 पृष्ठ 03. (15) भगतसिंह– मैं नास्तिक क्यों हूँ, बुद्धम पब्लिशर्स जयपुर 2019 पृष्ठ 23

6.समकालीन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श

–प्रा. डॉ. दत्तात्रय सदाशिव अनारसे

सहा. प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, माढा

हिंदी साहित्य में अनेकविध परिवर्तनों से कई सन्दर्भ उजागर हुए। जब–जब साहित्यिक बदलाव महसूस किए गए, तब–तब हिंदी साहित्य ने अपना चोला बदल दिया है। इसी सिलसिले से समकालीन हिंदी साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विषयों का विमर्श होना जरुरी हो गया है। वर्तमान में समस्त मानवी जीवन में बिखरे समस्याओं की परतें खोलना जरूरी बन गया है। हर एक दिन की लड़ाई को जुझारू रूप से लड़ने की नौबत आन पड़ी है। इसी सन्दर्भ में समकालीन दलित साहित्य में प्रस्तुत समस्याओं का जिक्र करना यथोचित होगा।

1990 के बाद हिंदी में दलित साहित्य लिखा जाने लगा। आज 'दलित साहित्य' को परिभाषित करते हुए सही अर्थों में 'दलित साहित्य एक आन्दोलन बन गया है। इसी सन्दर्भ रूप 1960 के आसपास मराठी भाषा में शुरू होकर मराठी दलित साहित्यिक आन्दोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित करके दलित जीवन को साहित्य में स्थान न हो। आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक नाथ कवियों के बल पर मध्ययुग में संत कबीर, संत रैदास, दादू दयाल आदि से होते हुए आधुनिक काल में प्रेमचन्द, निराला, रेणु, नागार्जुन, धूमिल, जगदीश चन्द्र, महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम आदि रचनाकारों ने प्रकाश डालने की कोशिश की। दलित साहित्य जीवन के दु:ख–दर्द का जीवन्त दस्तावेज है।

कुंजीपटल : दलित जीवन, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक संदर्भ, जुझारू, आन्दोलन, नाथ कवि, दस्तावेज, मानवी जीवन की समस्या आत्माओं का क्रन्दन, पुनर्जागरण, शिक्षा और सत्ता, तकनीकी प्रगति, सूचना और विश्वबंधुत्व।

विषय विवेचन :वर्तमान युग में सामाजिक बदलाव, प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना, मानवी अधिकारों की प्राप्ति और नये सामाजिक पुनर्स्थापित करने का युग है। बदलते हुए परिवेश में विश्वस्तरीय विज्ञान, तकनीकी प्रगति, सूचना और विश्वबंधुत्व के विचार से समस्त विश्व में समाज के उपेक्षित–वंचित ध्यान केन्द्रित करने पर बल दिया गया। इसी लहर से भारत भी अछूता नहीं रहा।

नव–सामाजिक परिवर्तन पुनर्जागरण से भारत के सन्दर्भ में निसंकोच रूप से संभव रहा है। समाज में सदियों से शोषित पीडित दलित मानवता को, जातिवादी भेद तथा अस्पृश्यता में ग्रस्त नर–नारियों को सामाजिक न्याय, सामाजिक अधिकार और मौके की समानता, शिक्षा और सत्ता में हिस्सेदारी का पथ प्रशस्त हुआ है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था चली आ रही है। यह समाज व्यवस्था का शोषित एवं उपेक्षित अंग दलित समाज है। प्रस्तुत वर्ण व्यवस्था में दलित समाज सदियों से उच्चवर्ग द्वारा पीड़ित है तथा उच्चवर्ग का दास बनकर उनकी सेवा कर रहा है। सवर्ण लोग दलितों का सदियों से शोषण करते आए हैं, लेकिन दलित समाज इसे अपना नशीब मानकर चुप बैठा है और इस शोषण को सहता है।

हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्य यह एक चर्चित विषय रहा है। प्रस्तुत समाज व्यवस्था ने कई वर्षों से दलित समाज को शुद्र संबोधित करते हुए उन पर अन्याय, अत्याचार एवं शोषण करते रहें। शुद्रों से अतिशुद्र मानकर सवर्णों ने शुद्र वर्ग की विडंबना की है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज रूढ़ि–परंपराओं से बंधा हुआ है। इसीसे समाज में अंधश्रध्दा बढ़ने से धार्मिक विश्वासों को ठेंस पहुँचती है। दलितों पर हुए अन्याय और शोषण से अपमानित किया जाता है। जाति व्यवस्था को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिखाई देता है। समाज के लोग जाति के नाम पर हमेशा इनका शोषण तथा द्वेष करते हैं। वर्णवादी समाज व्यवस्था में अछूत जातियों को घृणित, नीच और लांछित मानते हैं।

उच्चवर्गीय समाज की जातिवादी मानसिकता के कारण दलित अपमान, उपेक्षा, नफरत और शोषण की जिन्दगी जी रहा है। सवर्णों द्वारा दलितों के साथ अन्याय एवं अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया जाता है। सवर्णों द्वारा सामजिक जीवन में अपमानित अवस्था से दलितों की आर्थिक स्थिति दयनीय बन जाती है।

समाज और साहित्य का गहरा रिश्ता होने से हर एक मनुष्य सामाजिक स्तर पर अपनी प्रतिमा साफ रखने की कोशिश करता है। फिर भी किसी व्यक्ति द्वारा अपमानित होकर जीवन में दुःख, दैन्य, संत्रास, पीड़ा का अनुभव करता है। साहित्य समाज का सचित्र दर्शन कराता है।

साहित्य में सामाजिकता के विविध पैलू नजर आते हैं। जिसमें दलित, निम्नवर्ग किसान, मजदूर, विधवा और परित्यक्त्या नारी को स्थान प्राप्त हुआ है। सवर्ण समाजद्वारा दलितों के ऊपर बल तथा धन से अन्याय, अत्याचार करता रहता है। डॉ. नगमा जावेद

लिखती हैं दलित साहित्य शो''ात, पीडित, उपेक्षित दलित जीवन का आक्रोश, आत्माओं का क्रन्दन, व्यथा एवं वेदना है।"

किसी भी समाज की जीवन जीने की एक पध्दति होती है। जिसमें विविध तौर–तरीके शामिल होते हैं। सामाजिक उच्च–नीचता से कई लोगों के जीवन में उबड़ खाबड़ मच जाती है। जाति व्यवस्था अपनी परंपरागत विशेषताओं को वर्तमान समय में भी बनाई हुई है। इसकी विशेषता वंशानुगत सदस्यता, संस्तरण, जाति अन्तर्विवाह एवं गोत्र बहिर्विवाह, परंपरागत व्यवसाय, सहभोज एवं सामाजिक संबंधों से संबंधित प्रतिबंधों, पवित्रता और अपवित्रता संबंधी विचार, जाति पंचायत, संगठन आदि। भारत की जाति व्यवस्था का अध्ययन करने से प्रमुख आधार होती है। इसके बारे में इरफान हबीब ने कहा है – "हमारे इतिहास की ऐसी कोई व्याख्या विचार योग्य नहीं हो सकती जिसमें जाति व्यवस्था की भी व्याख्या सम्मिलित न हो।"[2]

जाति व्यवस्था के चक्र में समस्त मानवी जीवन में अनेकविध परिवर्तन दिखाई देता है। जाति व्यवस्था केवल भारत में पाई जाती है, बल्कि वास्तविक है कि, भारत में जाति व्यवस्था का व्यापक और चरम रूप देखने को मिलता है। जाति व्यवस्था एक विचारधारा बनकर पूरे हिन्दू समाज में प्रविष्ट कर गई है, उस रूप में अन्य कहीं नहीं पाई जाती है। इसलिए जाति व्यवस्था सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट और अनूठी व्यवस्था है।"[3]

बदलते हुए परिवेश में सामाजिक स्तर पर समय–समय पर अनेकविध परिवर्तन हुए, लेकिन उन्हीं परिवर्तनों से दलितों को सिर्फ दुःख, अन्याय, अत्याचार के सिवा भी नहीं मिला। जिससे दलित समाज में गुस्सा और आक्रोश का स्वर मुखरित होता दिखाई दिया। सवर्णों की व्यवस्था को लेकर अपनी स्थिति, नियति और लाचारी का आरोपपत्र भी है और माँग पत्र भी। इससे यही अपील होता है कि, दलित समाज अपनी दयनीयता का बखान और मानवीय व्यवहार की याचना की जाती थी। "दलितों को दबाकर रखने वाली जाति प्रथा के बारे में कोई झंकार नहीं कर सकता कि, जाति व्यवस्था पुरातन और जटिल संस्था है। जाति का प्रश्न, जाति की समस्या सैध्दांतिक और व्यावहारिक दोनों ही रूपों में बहुत घातक है। व्यवहारतः यह एक बहुआयामी परिणामों वाली व्यवस्था है। यद्यपि यह एक एकदेशीय समस्या है, किन्तु यह व्यापक स्तर पर अपकार कर सकती है।"[4]

शासन और सत्ता के सूत्रधार जब पूँजीवादी शक्तियाँ बन जाती है, तब समाज में दमन प्रवृत्ति उदय होता है। समकालीन वास्तविक जीवन तथ्यों, यथार्थों और ज्वलंत

समस्याओं, साधारण श्रमजीवी मानव की गाथाओं ने विश्वभर के साहित्य में आमूल परिवर्तन लाया है। आज समाज मी मानव अपने मूलाधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। संविधान द्वारा मनुष्य को प्राप्त अधिकारों वंचित रखने के लिए अनेकविध प्रयास हो रहे हैं। इसलिए आज का मनुष्य अपने जीवन में संत्रास, पीडा, दुख का अनुभव करता दिखाई देता है। सरकारी प्रशासन में अफसरशाही ने रिश्वत और सिफारिशों के माध्यम से सारी यंत्रणा दूषित कर रखी है। साधारण मानव–वर्ग की स्थिति अत्यंत पीडादायक दारूण है। अपनी सारी कामनाओं की होली को जलती देखकर उनकी आँखों में खून के आँसू आते हैं।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः प्रस्तुत आलेख में दलित जीवन की त्रासदी, अंतर्गत भावनाओं चित्रण यथोचित रूप से करने का प्रयास किया गया है। संविधान द्वारा दिए अधिकारों छीनने का षडयंत्र सामाजिकता को मलीन करता दिखाई देता है। सामन्य लोगों की दयनीय स्थिति को बिना परखे उस पर अन्याय, अत्याचार, दोषारोप किया जाता है। आज के माहौल में दलितों का जीवन में मानवता के स्तर पर खरा नहीं उतर पाया है। इसी चिंता को लेकर सामान्य लोगों के जीवन की त्रासदी तरस ख के लिए मजबूर कर देती है।

सन्दर्भ सूची :1) संपादक रतनकुमार पाण्डेय अनभै 2004 पृष्ठ– 74 2) हबीब, इरफ़ान : कास्ट एंड मनी इन इंडियन हिस्ट्री, पृ.3 3) जाति व्यवस्था– सुनीलकुमार सिंह 4) अम्बेडकर, डॉ. बाबा साहेब : लेखन और भाषण, खंड 1 पृ. 6

7."पर्यावरण के लिए मानवीय विकास एक गंभीर चुनौती"
– *डॉ.रामसिया चर्मकार*

प्रस्तावना–

अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता और आंदोलन के आरंभिक सम्मेलन 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्टॉकहोम में विश्व के सभी देशों का प्रथम पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें 199 देशों ने भाग लिया लेते हुए एक पृथ्वी के सिद्धांत को सर्वमान्य तरीके से मान्यता देते हुए घोषणा पत्र में 26 सिद्धांतो को रखा गया है। हमारे देश में संरक्षित वन क्षेत्रों में हजारों पेड़ों को खत्म कर खनन की मंजूरी दी जा रही हे। पिछले एक दशक में लगभग 38,846 हेक्टेयर संरक्षित वन क्षेत्र को खनन के लिए आवंटित कर दिया गया है। प्रत्येक माह देश के किसी न किसी राज्य से खनन के लिए आवेदन किये जा रहें हैं। कोर्ट ने वन्यजीव अभयारण्य या पार्क के अंदर खनन की अनुमति नही देने का आदेश पहले ही दे दिया था। फिर भी यह खेल बादस्तूर जारी है। भारत में रहने वाले लगभग 48 करोड़ लोग खतरनाक प्रदूषण के स्तर को झेल रहे हैं और मनुष्य की जीवन प्रत्याशा में 9 वर्ष से भी अधिक उम्र कम हो गई है। बकस्वाहा जंगल के बीच में दबे 55 हजार करोड़ के हीरे को हासिल करने के लिए 2.5 लाख से भी अधिक पेड़ों को काटा जाएगा। बकस्वाहा की घटना से इसे और भी बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

मुख्य शब्द– पर्यावरण, खनन, प्रदूषण, राजनीतिक स्वेच्छाचारिता, मानव, भूमि।

अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता और पर्यावरण आंदोलन के प्रारंभिक सम्मेलन के रूप में 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्वीडन के स्टॉकहोम में विश्व भर के सभी देशों का प्रथम पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें 199 देशों ने भाग लेते हुए एक पृथ्वी के सिद्धांत को सर्वमान्य तरीके से मान्यता प्रदान की गयी। इस सम्मेलन में घोषणा पत्र में 26 सिद्धांतो को रखा गया है। उन सिद्धांतों में से कुछ प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं–

1. मानवीय पर्यावरण पर घोषणा पत्र रखना।
2. मानवीय पर्यावरण की दिशा में कार्य योजना प्रस्तुत करना।
3. विश्व पर्यावरण दिवस की घोषित किये जाने का प्रस्ताव।
4. नाभिकीय शस्त्रों के परीक्षण प्रतिबंध का प्रस्ताव।
5. इस दिशा में बढ़ते हुए दूसरा सम्मेलन बुलाने के लिए सिफारिस।

देश के संरक्षित वन क्षेत्रों में खुले तौर पर खनन की मंजूरी दी जा रही हे। पिछले एक दशक में संरक्षित वन क्षेत्रों मे सर्वाधिक 14,158 हेक्टेयर में खनन की मंजूरी ओड़िसा में दी गई है। छत्तीसगढ़ में 7,086 तथा मध्यप्रदेश में 6,135 हेक्टेयर की मंजूरी दी गई है। केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को पिछले 2 वर्षों के दौरान मध्यप्रदेश से लगभग 4000, राजस्थान से लगभग 500 सौ और छत्तीसगढ़ से लगभग 550 हेक्टेयर संरक्षित वन क्षेत्र में खनन के लिए आवेदन किये गये हैं। पर्यावरण में आए बदलाव को लेकर विश्व भर में चिंता की जा रही हे। जबकि हमारे देश में संरक्षित वन क्षेत्रों में हजारों पेड़ों को खत्म कर खनन की मंजूरी दी जा रही हे। पिछले एक दशक में लगभग 38,846 हेक्टेयर संरक्षित वन क्षेत्र को खनन के लिए आवंटित कर दिया गया है। इतना ही नही प्रत्येक माह देश के किसी न किसी राज्य से खनन के लिए आवेदन किये जा रहें हैं। मध्यप्रदेश में पिछले दो वर्षों में 4 हजार हेक्टेयर संरक्षित वन क्षेत्र में खनिजों कै खनन की इजाजत के लिए 19 आवेदन दिये हैं। जबकि कोर्ट ने वन्यजीव अभयारण्य या पार्क के अंदर खनन की अनुमति नही देने का आदेश पहले ही दे के बाद भी यह खेल बादस्तूर जारी है। बकस्वाहा की घटना से इसे और भी बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

मध्यप्रदेश के पन्ना–छतरपुर जिले के पन्ना टाइगर रिजर्व और नौरादेही अभयारण्य के बीच बकस्वाहा के इमली घाट एरिया में प्रस्तावित टाइगर कंजरवेशन पार्क क्षेत्र में 364 हेक्टेयर की जमीन को हीरा खनन के लिए 55 हजार करोड़ ऑफसेट मूल्य पर बिरला ग्रूप को खदान लीज पर 50 सालों के लिए दी गई। इस लीज से एक हजार करोड़ की ऑक्सीजन को खत्म कर सरकार लगभग प्रत्येक वर्ष हीरा खनन से 450 करोड़ रूपये कमाएगी। इस खनन से इस क्षेत्र के 2.15 लाख से अधिक पेड़ काटें जाएगें। वन विभाग इसके एवज में राजस्व जमीन पर करीब 3.83 लाख पौधे लगाएगा। वही, जितने पेड़ कटेंगे, उनकी वर्तमान कीमत के हिसाब से कंपनी राशि जमा कराएगी। इस लीज का विरोध देशव्यापी स्तर पर किया जा रहा है। साथ ही इस मामले में कोर्ट में सुनवाई भी हो रही है। हाई कोर्ट ने केन्द्र, राज्य सरकार और आदित्य बिरला ग्रुप की एस्सेल माइनिंग कंपनी व अन्य से पूछा है कि बकस्वाहा में हीरा खनन के लिए पेड़ो की कटाई की अनुमति कैसे दी गई? इस दौरान अधिवक्ता ने कोर्ट को बताया कि मध्यप्रदेश में छतरपुर के बकस्वाहा जंगल के बीच में दबे 55 हजार करोड़ के हीरे को हासिल करने के लिए 2.5 लाख से भी अधिक हरे–भरे पेड़ों को काटा की तैयारी पूरी कर ली गयी हे। इतना ही नही हीरे की

खनन के लिए रिपोर्ट तक को बदल दी गई है। शुरूआती सर्वे में इस जंगल में जो वन्य प्राणी पाए जाते थे, वे अब नदारद बताये जा रहें हैं।

बसस्वाहा की घटना के बाद देश में पहली बार सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित विशेषज्ञों की समिति ने पेड़ों का आर्थिक मुल्यांकन किया गया है। विशेषज्ञों की रिपोर्ट के आधार पर, एक पेड़ का मूल्य एक साल में 74,500 रूपये हो सकता है। इसमें भी पेड़ जितना पुराना होगा, उसके मूल्य में प्रत्येक वर्ष 74,500 रूपये से गुणा किया जाना चाहिए। इसमें आक्सीजन की कीमत 45 हजार रूपये, जैव–उर्वरकों की कीमत 20 हजार रूपये होती है। इंडियन काउंसिल ऑफ फॉरेस्ट रिसर्च एण्ड एज्युकेशन के मुताबिक, एक पेड़ की औसत उम्र 50 वर्ष मानी जाती है। 50 वर्ष में एक पेड़ 50 लाख कीमत की सुविधा देता है। इन 50 वर्षों में एक पेड़ 23 लाख 68,000 रूपये कीमत की वायु प्रदूषण को कम करता है। इसके साथ ही 20 लाख रूपये कीमत की भूमि क्षरण नियंत्रण और उर्वरता को बढ़ाता है। एक पेड़ की वास्तविक कीमत जानने के लिए देश के जाने माने वैज्ञानिक व पर्यावरणविद् टीएस दास का एक अध्ययन बताता है कि एक पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवन काल में मनुष्य जाति को लगभग 2.5 करोड़ रूपये की ऑक्सीजन मुहैया कराता है।

फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया की रिपोर्ट के आधार पर वन क्षेत्र के मामले में अभी भी देश में सबसे आगे है। म0प्र0 में 77482 वर्ग किमी, अरूणाचल प्रदेश 66964 वर्ग किमी, छत्तीसगढ़ 55547 वर्ग किमी, ओडिसा 51345 वर्ग किमी व महाराष्ट्र में 50682 वर्ग किमी है। साल 2011 में म0प्र0 में 77700 वर्ग किमी में हरियाली रही। 2019 में यह कम होकर 77482 वर्ग किलोमीटर रह गई। मध्यप्रदेश में कुल 94668 वर्ग किमी वन क्षेत्र है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 31 फिसदी और देश का 12 प्रति. है। मध्यप्रदेश सरकार प्रदेश को हरा–भरा बनाये रखने के लिए प्रत्येक वर्ष 5 से 8 करोड़ वृक्षारोपण करती है। इसके लिए हर साल 350 करोड़ रूपये खर्च किये जाते है। किन्तु हरियाली विस्तार होने के उलट कम होती जा रही है। वृक्षारोपण में सबसे बड़ी गड़बड़ी 2017 में हुई जब एक दिन में सात करोड़ पौधे रोपे गये। इसमें सिर्फ 10 प्रतिशत ही पौधे शेष बचे। इसकी जांच 7 बार हो चुकी है किन्तु अभी तक जिम्मेदारी तय नही की गई है। प्रदेश में प्रत्येक वर्ष 5 लाख पेड़ काटे जाते हैं। प्रदेश सरकार वन क्षेत्र से हर वर्ष लगभग 12 सौ करोड़ रूपये का राजस्व कमाती है। प्रदेश में 11 नेशनल पार्क व 24 अभयारण्य है। इन दोनों से सरकार को 17–18 करोड़ रूपये प्रत्येक वर्ष मिलते हैं। पर्यावरण संरक्षण और सुधार के उद्देश्य से

पर्यावरण अधिनियम 1986 को अधिनियमित किया गया, इन सब के बावजूद वनों की बदहाली जारी है।

देश में वायु प्रदूषण के कारण व्यक्ति की जीवन प्रत्याशा में भारी गिरावट आई है। जीवन प्रत्याशा में लगभग 9 वर्षों की कमी हो सकती हे। शिकागों विश्वविद्यालय के वायु गुणवत्ता जीवन सूचकांक की रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत में 48 करोड़ से अधिक लोग उत्तर में गंगा के मैदानी क्षेत्रों में रहते हैं। इन क्षेत्रों में प्रदूषण का स्तर नियमित रूप से दुनिया में किसी अन्य स्थान पर पाए जाने वाले स्तर से कही अधिक है। दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड़ आदि राज्यों मे खतरा अधिक है। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान में भी पांच वर्ष से अधिक उम्र कम हो रही है। यह हालात इसलिए निर्मित हुए है क्योंकि मनुष्य ने पर्यावरण को असंतुलित कर दिया है। मनुष्यों की विकास की अंधी दौड़ ने प्रदूषण में बेतहासा वृद्धि खासकर वायु प्रदूषण को पूरी तरह से नजर अंदाज कर दिया है। नवीन योजनाएं और नवीन फाइलों के माध्यम से मनुष्य अपना विकास जितना कर लेता है उतना विनाश वह पर्यावरण का कर देता है। जबकि वास्तव में वह दूरगामी अपने ही विनाश का विकास कर रहा है। शहरों का अविकसित स्वरूप ने इस पर अधिक प्रभाव डाला है। इसका प्रमुख कारण है कि सरकारें शहरों का निर्माण बहुत कम करती हैं। इसके एवज में शहरों में और शहरों के नजदीक बसने वाले अधिकतम नागरिकों के पास आर्थिक सम्पन्नता न होने के चलते अपने स्तर से अपना विकास करते रहते हें जो आगे चल कर बड़े शहरों का रूप ले लेता है। इस प्रकार के शहर अविसित शहरों की श्रेणी में होते हैं। ऐसे शहरों के बस जाने के बाद इनमें पुनः निर्माण की गुंजाइस न के बराबर होती है। बल्कि ऐसे अविकसित शहरों पर सरकारें टैक्स वसूलने के साथ ही विकास के नाम पर इन शहरों का जितना विकास नही हो पाता है उतना विकास तो भ्रष्टाचार का हो जाता है। नेशनल क्लीन एयर प्रोग्राम के अंतरगत भी देश के सबसे अधिक प्रदूषित 102 शहरों में वायु प्रदूषण के स्तर को कम करने के लिए अभियान चलाया जा रहा है। 2024 तक इसमें 20 से 40 प्रतिशत तक की कमी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ऐसे लक्ष्य कागजों में ही विकसित होते नजर आते है। धरातल की वास्तविकता तो कुछ औेर ही होती है। ऐसे सुधारों का यह आलाम है कि वायु प्रदूषण की वजह से देश के मध्य, पूर्वी और उत्तर भारत में रहने वाले लगभग 48 करोड़ लोग खतरनाक प्रदूषण के स्तर को झेल रहे हैं। लॉकडाउन के दौरान प्रकृति और पर्यावरण को

विकास का रास्ता प्रशस्त हुआ था जिसमें प्रत्येक जीव ने स्वच्छ वातावरण को महसूस करते हुए उसे जाना ओर समझा भी।

उम्र घटने का कारण– पर्टिकुलेट मैटर या कण प्रदूषण वातावरण में मौजूद ठोस कणों और तरल बूदों का मिश्रण है। चूल्हे, स्टोव, उद्योग का धुआं, निर्माण कार्यों से उत्पन्न धूल आदि के अतिरिक्त सल्फर डाइआक्साइड व नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसे रसायनों की मात्रा बढ़ने से खांसी, अस्थमा, हृदय रोग का खतरा बढ़ जाता है।

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा भोपाल के गोविंदपुरा इंडस्ट्रियल एरिया में संघ की लघु उद्योग भारतीय संस्था को कार्यालय बनाने के लिए 10 हजार वर्ग फुट जमीन आवंटन को लेकर प्रदेश की कांग्रेस पार्टी ने कड़ा एतराज जताते हुए इसका विरोध किया है एवं जमीन के आवंटन को असंवैधानिक करार दिया। दिग्विजय सिंह ने कहा जिस पार्क की जमीन दी गई है उस पार्क पर मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और पूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय बाबुलाल गौर ने पौधारोपण किया था आज उसी पार्क के पोड़ों को काटा जा रहा हे। वह अपने ही लगाये पौधों को ही कांट रहें हैं। दिग्विजय सिंह ने कहा कि गोविंदपुरा इडस्ट्रियल एरिया के 95 प्रतिशत लोग इस जमीन आवंटन के खिलाफ हैं। इस पर संघ के अनुषांगिक संगठन लघु उद्योग भारती ने कहा कि यह जमीन पार्क के लिए आवंटित नही कि गई है। यहां पर अतिक्रमण करने के लिहाज से पौधारोपण किया गया हे ताकि इस जमीन को अपने अधिकार क्षेत्र में बनाए रखने के लिए गोविंदपुरा एसोसिएशन ने यहां पर पार्क का स्वरूप प्रदान कर दिया। इसके आधार पर तो स्वयं मुख्यमुत्री शिवराज सिंह चौहान ही इस जमीन को खुर्द बुर्द करने के लिए वृच्छारोपण किये थे तो इसीलिए किये थे कि वह इस जमीन को संघ के आधीन संगठन को आवंटित कर सके। यदि ऐसा है तो लघु उद्योग भारती को सिकायत किस बात की है। जमीन तो उसी संगठन को दी जा रही है। नेता, धर्म के ठेकेदार और कॉरपोरेट गवर्नेंस तक में जमीन की बेस कीमती धातुओं को कब्जा ने लगे हैं और यह सब पर्यावरण को खत्म करने के बाद ही मिलेगा। इसी दिशा में कार्य किया जा रहा है।

शासन–प्रशासन ने अपने आप को इस तरह से निष्क्रिय कर लिया है कि संगठन और निजी लाभ के लिए राजनैतिक तंत्र ने स्वयं को इतना लाचार और बेबस कर लिया है कि पर्यावरण को क्षति पहुचाने वालों को कानूनों जैसी चीज से भी डरना छोड़ दिये हें। आम आदमी और पर्यावरण एक्टिविस्ट संगठनों के विरोध के बावजूद सरकारों पर कोई फर्क नही पड़ता हे जो इस परिणाम तक पहुचाता है कि प्रकृति के तत्वों का

अप्रत्याशित, असीमित विदोहन और पर्यावरणीय मानकों का डंके की चोट पर सीधा उल्लंघन और बद से बत्तर हालात यह बताने के लिए काफी है कि पर्यावरण संरक्षण महज ड्राफि् टंग, गोष्ठियों और पैकेजों के रूप में आर्थिक गबन का पर्याय बन दिया गया है। ऐसा हाल सिर्फ भारत बस का नही है बल्कि समूचें विश्व की यही स्थिति है। समूचे विश्व के राजनैतिक क्षेत्र प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के पगति कितने गैरजिम्मेदार और संवेदनहीन हैं कि किसी भी राजनीतिक दल या उनके नेताओं द्वारा अपने अपने घोषणा पत्रों और चुनावी अभियानों में प्रकृति के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए मुद्दा बनाया गया हो या फिर कभी यह स्वीकार किया गया हो कि पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन इनकी प्रमुख जिम्मेदारियों में से एक हो। 5 जून यानि विश्व पर्यावरण दिवस को विश्व सरकारों ने राजनीतिक लाभ के लिए इसे मात्र एक राजनीतिक उपकरण बन कर रख दिया है।

निष्कर्ष–विश्व पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में संविधान स्टॉकहोम घोषणा पत्र 1972 में 26 सिद्धांतो को रखा गया है। ये सिद्धांत विश्व पटल पर यदा–कदा ही नजर आते हैं किन्तु जिन सिद्धांतो को स्वीकारा ही नही गया है वे विश्व भर में प्रभावी रूप से सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप में नजर आ रहें हैं। विकास जरूरी है पर पर्यावरण की बलि देकर नही, नही तो विकास के नाम पर मनुष्य स्वयं बलि का बकरा बन जाएगा। पर्यावरण संरक्षित है तो पृथ्वी का प्रत्येक जीव सुरंक्षित है। किन्तु पर्यावरण प्रगति के विपरीत अपने ही प्रगति की दौड़ में आज मनुष्य इतना अंधा हो चुका है कि वह अपनी सुख सुविधाओं की खातिर पर्यावरण को किसी भी स्तर तक क्षति पहुचाने के लिए अग्रसर है। सरकारों पर आम आदमी के विरोध व कोर्ट के आदेशों का भी असर नही पड़ता है। लॉकडाउन से मानव शांत और प्रकृति व पर्यावरण को विकास का रास्ता प्रशस्त हुआ था, जिसमें प्रत्येक जीव ने स्वच्छ वातावरण को महसूस करते हुए उसे जाना ओर समझा भी। इसके पूर्व और बाद के हालात एक समान हो गए। ऐसी स्थिति निर्मित न हो, जरूरी है कि गंभीरता के साथ पर्यावरण के प्रति सचेत हो जाए।

सुझाव–

1. पृथ्वी के प्रत्येक जीव को संरक्षित करने के लिए जरूरी है कि प्रकृति और पर्यावरण को नियंत्रित करने वाली क्रिया–कलापों को बंद कर देना चाहिए।
2. मानवीय जीवन में उन चीजों को अधिक उपयोग में लाना चाहिए जो पर्यावरण को कम से कम क्षति पहुचाये।

3. राजनीति को राजनीतिक लाभ और निजी लाभ के क्षेत्र से बाहर निकल कर अपनी भूमिका को सशक्त बनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. स्टार समाचार – 05 जून 2020, पृ. सं. 06।
2. पत्रिका – 05, जून 2021, पृ. सं. 02,।
3. स्टार समाचार – 12 जुलाई 2021, पृ. सं. 02।
4. पत्रिका – 18 जून 2021, पृ. सं. 01।
5. पत्रिका – 27, 31 अगस्त 2021, पृ. सं. 08।
6. पत्रिका – 02 सितम्बर 2021, पृ. सं. 08।

INTERNET-

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/ i;kZoj.k _laj{k.k
2. https://www.drishtiias.com/hindi/to-the-points/paper3/environment-protection-act-1986s
3. https://www.dhyeyaias.com/current-affairs/COP25/journey-from-stockholm-conference-1972-to-earth-conference-1992
4. https://bharatdiscovery.org/india/मानवीय पर्यावरण स्टॉकहोम सम्मेलन।

8.श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का बाल साहित्य में योगदान

–प्रा.डॉ.नलिनी एस. पशीने

हिंदी विभागाध्यक्ष,

एस. एस. पी. महाविद्यालय,दासगाँव बु. गोंदिया. महाराष्ट्र

बालसाहित्य बड़ों के साहित्य से भिन्न एक सृजन रूप है, जिसका एकमात्र लक्ष्य बालक है। यह बच्चों की प्रकृति को, उनकी कल्पना, उनके सपनों और आकांक्षाओं को केंद्र में रखकर, लिखा जाता है। 'बालसाहित्य' बाल मनोविज्ञान, बाल कल्पना और बाल जीवन से संबंधित होता है। बाल साहित्यकार जब साहित्य रचता है, तो उसे सर्वप्रथम बालविश्व में जाना होता है वहाँ पहुँच कर, वह अपनी कल्पना को बाल दृष्टि से देखकर ही सृजन करता है, तभी उसका साहित्य बाल साहित्य की दृष्टि से खरा उतरता है और कालजयी कृतियों का निर्माण करता है।

डॉ0 दिनेश चमोला 'शैलेष' का अभिमत है कि ''बाल साहित्य महज मनोरंजन नहीं बल्कि किसी उन्नत राष्ट्र की वह सुदृढ़ व मजबूत आधारशीला है, जिस पर भावी विश्व के ज्ञान–विज्ञान, नेतृत्व, समृद्धि, संपन्नता, सौहार्द, विश्व–बंधुत्व, भाईचारा, वैश्विक एकता व अखंडता का बहुमंजिल भवन खड़ा व विनिर्मित होता है।'' (1)

प्रेमचंद की 'ईदगाह', रविंद्रनाथ टैगोर की ''काबुलीवाला'', महादेवी वर्मा की 'बारहमासा', सुभद्राकुमारी चौहान की 'मेरा नया बचपन', 'खिलौने वाला' आदि कालजयी कृतियाँ हैं जो बालमन की विभिन्न छटाएँ लिए हुए हैं।

डॉ0 रत्नाकर पांडेय के मतानुसार ''बच्चों के मन में बहुत सी भावनाएँ कुंठित रह जाती हैं। सच्चा बाल काव्य लिखने वाला कवि अपने गीतों द्वारा शिशुओं के मनोरंजन के साथ ही उन्हें कुंठित भावनाओं से मुक्त करता है। यह उनके भीतर ऐसी क्षमता जागृत करता है, जिससे वे प्रत्यक्ष जगत से ऊँचे उठकर अपनी मनोभावनाओं का परिष्कार कर और दृढ़ साहस से अपनी बुद्धि का विकास कर, जिज्ञासाओं की परितृप्ति का साहस कर सकें। सच्चा बाल–काव्य बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन के साथ–साथ उन्हें सत्–असत् को पहचानने की दृष्टि देता है।'' (2)

द्विवेदी युग से प्रारंभ हुई इस काव्य धारा की ओर बहुत से साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ, जिसमें वात्सल्यमयी माँ के रूप में सुभद्राकुमारी चौहान ने भी सहभाग लिया है। सन 1932–33 के आस–पास सुभद्रा जी का अधिक झुकाव बाल कविताओं की ओर हुआ है। इससे पूर्व उन्होंने अपनी प्रथम पुत्री के जन्म के बाद एक बाल–कविता लिखी

थी जो बहुत पसंद की गयी थी किंतु इसे 'बालकाव्य' नहीं कहा जा सकता है। यह माँ का वात्सल्यमयी मातृत्व साहित्य जरूर है, जिसमें बालमन और माँ का मन एकाकार हो रहा है। अपने बच्चों के साथ अपने वात्सल्य का तादात्म्य जुड़ाते हुए उनके मन में जो रागात्मक काव्य का उद्‌भव होता उसे वे अनायास रूप से ऐसे शब्दों में गूंथती जिससे बालमन एकदम खिल उठता है। इसीलिए उनके अन्य साहित्य के साथ–साथ उनका बालसाहित्य भी उतना ही लोकप्रिय एवं सम्मान प्राप्त रहा है।

बालकाव्य के उनके दो संग्रह हैं प्रथम– 'सभा का खेल' और द्वितीय– 'कदंब का पेड़', 'सभा के खेल' में अजय की पाठशाला, सभा का खेल, नटखट विजय, मुन्ना का प्यार, पतंग, बाँसुरीवाला, कुट्टी आदि कविताएँ संकलित थीं। उसी प्रकार 'कदंब का पेड़' में कोयल, रामायण की कथा, पानी और धूप, खिलौनेवाला, आदि बाल कविताएँ रखी गई थी। 'सुभद्रा समग्र' में सुभद्रा जी की कुल 13 बाल–कविताएँ संचयित हैं। इन सभी बाल कविताओं में सुभद्रा जी ने बड़े ही रोचक ढ़ंग से बच्चों के क्रिया कलाप, उनकी जिज्ञासु–वृत्ति और बाल सुलभ चेष्टाओं का सहज चित्रण किया है।

बाल साहित्य की प्रथम शर्त होती है 'बाल मनोरंजन'। बालसाहित्य द्वारा मनोरंजन न हो तो वह अरूचिकर होगा और अरूचिकर साहित्य न तो बच्चे पढ़ने चाहेंगे और न ही उनके मन पर साहित्य का कोई प्रभाव पड़ेगा। सन 1932–33 से सुभद्रा जी का झुकाव बाल–कविताओं तथा कहानियों की तरफ हुआ था। सुभद्राकुमारी चौहान की मातृत्व भावना का सुंदर एवं परिपक्व विकास बालकाव्य में देखा जा सकता है।

बालकाव्य की उनकी पहली पुस्तक 'सभा का खेल' है किंतु इसमें बहुत सी कविताएँ नहीं आ पायी थी। हंस प्रकाशन इलाहाबाद ने बाद में 'सभा का खेल' और 'कदंब का पेड़' के नाम से दो पुस्तकें प्रकाशित की थी।

सभा का खेल :–सभा का खेल इस पुस्तक में 'अजय की पाठशाला', 'सभा का खेल', 'नटखट विजय', 'मुन्ना का प्यार', 'पतंग', 'बाँसुरी वाला', 'कुट्टी' आदि कविताएँ संग्रहीत रही है। 'सभा का खेल'इस कविता में देशभक्ति का भाव संचरित हुआ है। इस कविता का प्रमुख उद्देश्य बच्चों को खेल–खेल में देश पर मर मिटने के लिए प्रेरित करने का रहा है। इस काव्य में तत्कालीन सामाजिक–राजनीतिक वातावरण की छाप देखी जा सकती है। सुभद्राकुमारी चौहान ने प्रमुख देशभक्त नेताओं के चरित्र को आदर्श मानते हुए, उनके द्वारा बताए गए राह पर चलने का संदेश यों दिया है –

''सभा सभा का खेल आज हम

खेलेंगे जीजी आओ ।
मैं गाँधी जी, छोटे नेहरू
तुम सरोजिनी बन जाओ ।।''(3)
'कदंब का पेड़' :–
इस बाल साहित्य पुस्तक में 'कोयल', 'रामायण की कथा', 'पानी और धूप', 'खिलौने वाला' आदि कविताएँ हैं।
सुभद्रा जी का स्वभाव बालसुलभ रहा है। वे बच्चों के बीच स्वयं भी एक बच्ची बन जाती थी। सुभद्रा जी ने अपनी बाल–कविताओं में वास्तव में अपने बच्चों सुधा, अजय, विजय, मुन्ना आदि के क्रिया–कलापों को प्रस्तुत किया है।
'अजय की पाठशाला' :–
सुभद्रा कुमारी चौहान एक माँ थी, इसीलिए वे बाल मनोविज्ञान को गहराई से समझती थी, जिसका प्रभाव उनकी कविताओं पर भी पड़ा है। जो यों अभिव्यक्त होता है –
''खाने की भी नहीं रही सुध
बैठ गए पुस्तक लेकर ।
बोले–पढ़ता हूँ न छेड़ना
कोई भी बाधा देकर ।।''(4)
बच्चों में नकल करने की प्रवृत्ति होती है, वे अपने दैनिक क्रियाकलापों में उसका यों प्रयोग करते हैं।
''तुम लिखती हो हम आते हैं
तब तुम होती हो नाराज।
मैं भी तो लिखने बैठा हूँ
कैसे बोल रही हो आज ।।''(5)
'मुन्ना का प्यार'
बच्चें आपस में खेलते हैं, मिलजुल कर रहते हैं, किंतु जब उनके मन में यह भावना घर कर जाती है कि माँ उन्हें कम प्यार करती है, तो वे बोल उठते हैं –
''माँ, क्या मुन्ना ही बेटा है
हम क्या नहीं तुम्हारे हैं ?''(6)
'पानी और धूप'

बच्चों की जिज्ञासु प्रवृत्ति और बाल सुलभ प्रश्नों की बौछार का चित्रण, इस काव्य में बड़ी ही सुंदरता से यों किया गया है –

''अभी अभी थी धूप बरसने
लगा कहाँ से यह पानी
किसने घड़े फौड़ बादल के
की है इतनी शैतानी ।''(7)

उसी तरह गलती करने पर अक्सर पिता बच्चों को डाँटते हैं, अतः बच्चों को बादलों की गर्जना में और पिता की फटकार में उत्कृष्ट कल्पना और दृश्य विधान को प्रस्तुत करते हुए, यों साम्यता दिखाते हुए वे लिखती हैं –

''जोर–जोर से गरज रहें हैं
बादल हैं किसके काका
किसको डाँट रहे हैं किसने
कहना नहीं सुना माँ का ।''(8)

आगे इसी कविता को देशप्रेम के साथ जोड़ते हुए वे यों लिखती हैं –

'' खुश होकर तब बिजली देगी
मुझे चमकती सी तलवार
तब माँ कोई कर न सकेगा
अपने ऊपर अत्याचार ।
पुलिसमैन अपने काका को
फिर न पकड़ने आयेंगे
देखेंगे तलवार दूर से ही
वे सब डर जायेंगे ।'' (9)

'कदंब का पेड़'

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान मूलतः देशभक्त साहित्यकार रही हैं। अपने बालकाव्य में भी उन्होंने प्रसंगानुसार पौराणिक एवं ऐतिहासिक भूमिकाओं का सहारा लिया है। 'कदंब का पेड़' और 'बासुँरी वाला' कविता में 'कृष्ण' को याद करते हुए, पौराणिक कथाओं का सहारा लिया गया है । वे यों लिखती हैं –

''यह कदंब का पेड़ अगर माँ
होता जमुना तीरे

मैं भी इस पर बैठ कन्हैया
बनता धीरे–धीरे ।''(10)

'कदंब का पेड़' कविता में माँ और संतान के बीच दिन–प्रतिदिन के सहज वार्तालाप, वात्सल्य और स्नेह का सहज प्रस्तुतीकरण यों हुआ है।

''गुस्सा होकर मुझे डाँटती
कहती 'नीचे आ जा'
पर जब मैं न उतरता हँस कर
कहती मुन्ना राजा ।''(11)

'पतंग'

'पतंग' कविता में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने बालसुलभ जिद्द को प्रस्तुत किया है। पतंग देखकर पतंग के लिए मचलना, बच्चों द्वारा माँ को समझाना, अंततः माँ का बहला देना आदि भावों का अंकन उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ यों किया है।

''बनिये की दुकान पर अम्माँ
आयें हैं पतंग इतने
एक नहीं, दो नहीं, सुनो माँ
उतने तारे हैं जितने ।''(12)

वहीं अंत में बच्चों द्वारा माँ को दी जाने वाली धमकी को भी कवयित्री ने बड़े ही रोचक ढ़ंग से यों प्रस्तुत किया है।

''अब हम रह न सकेंगे अम्माँ
हम भी पतंग उड़ायेंगे
पैसा हमें न दोगी तो हम
रोयेंगे चिल्लायेंगे ।।''(13)

'खिलौने वाला'

बाल मनोविज्ञान का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करते हुए, बच्चे खिलौने के लिए मचल उठते हैं तथा उनके मन में बाल भावनाएँ यों मचलने लगती है।

''वह देखो माँ आज खिलौने वाला
फिर से आया है
कई तरह के सुन्दर–सुन्दर
नये खिलौने लाया है।।''(14)

खिलौनों के साथ–साथ कवयित्री बच्चों में देशप्रेम की भावना को भी प्रबल बनाने का प्रयास करती है और अन्याय एवं अत्याचार के विरोध की बात को भी यों प्रस्तुत करती है –''मैं तलवार खरीदूँगा माँ
या मैं लूँगा तीर कमान
जंगल में जा, किसी ताड़का
को मारूँगा राम समान ।।''(15)
'कोयल'
इस कविता में वसंत के आगमन का सूचक 'कोयल' को बच्चों की दृष्टि से देखा गया है। कवयित्री अपने भावों को व्यक्त करते हुए यों रचती है –
'' कोयल, कोयल सच बतलाओं,
क्या संदेशा लायी हो।
बहुत दिनों के बाद आज फिर
इस डाली पर आयी हो ।।''(16)
वहीं कोयल बच्चों को मीठे बोल बोलने की सीख कितने स्वाभाविक ढंग से यों देती है –
''यह मिठास तुमने अपनी
अम्माँ से ही पायी होगी,
अम्माँ ने ही मीठी मीठी
बोली सिखलायी होगी ।।''(17)
'बाँसुरी वाला'
भारतीय संस्कृति के धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक प्रसंग और चरित्रों को सुभद्रा जी ने बड़ी ही कुशलता के साथ बच्चों के हृदय में उतारने का प्रयास यों किया है –
'' बैठ किसी रथ पर गोकुल से
मैं भी मथुरा जाऊँगा ।।
जो लड़ने आयेंगे कुश्ती
में मैं उन्हें हरा दूँगा ।।''(18)
''मार कंस मामा को असुरों को
भी खूब डरा दूँगा ।।'' (19)
'' सीता तो थी रामायण में
रामचंद्र जी की रानी ।

चीर द्रौपदी का खींचा था ।
दुःशासन ने अभिमानी ।।''(20)

'रामायण की कथा'

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान बच्चों में अच्छे संस्कार, उनके चरित्र–निर्माण और सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण के प्रति उन्हें समझ लाना तथा जागरूकता प्रदान करने का उचित माध्यम अपनी कविता को बनाया है। कवयित्री ने अपने भावों को व्यक्त करते हुए यों लिखा है –

''रामायण की कथा हो रही, है सरला के घर ।''(21)

इस कविता में बाल सुलभ प्रवृत्ति का अनुपम उदाहरण देखने को मिल रहा है। जब बच्चा अपनी माता को रूझाने के प्रयास में प्रलोभन देता है। इस भाव को कवयित्री ने इस प्रकार से व्यक्त किया है –

'' पूजा हो जाने पर बँटता
है प्रसाद मनमाना
चाहो तो प्रसाद लेने को
माँ तुम भी आ जाना ।''(22)

साथ ही श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी वात्सल्य भावना का भी प्रकृति के साथ तादात्म करते हुए प्रस्तुत किया है। अपनी बच्ची का परिचय ही वे क्रीड़ापूर्ण वाटिका के रूप में यों देती है –

''दीप–शिखा है अंधकार की
घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल–भृङ्ग की
है पतझड़ की हरियाली ।।'' (23)

उन्होंने उचित स्थानों पर प्रकृति–प्रेम को दर्शाया है। बच्चे बालसुलभ प्रवृत्ति से अपनी माँ से प्रश्न करते हैं –

''सूरज ने क्यों बंद कर लिया
अपने घर का दरवाजा
उसकी माँ ने भी क्या उसको
बुला लिया कहकर आ जा '' (24)

उसी प्रकार 'कोयल' कविता में वसंत ऋतु के आगमन की सूचना देते हुए, कोयल को बच्चों की दृष्टि से देखते हुए यों प्रस्तुत किया है –

''कोयल, कोयल सच बतलाओं
क्या संदेशा लायी हो ।''

अथवा

''यह मिठास तुमने अपनी
अम्माँ से ही पायी होगी ।''(25)

उनके काव्य में प्रकृति चित्रण उनके प्रकृति–प्रेम को दर्शाता है। बच्चों में प्रकृति–प्रेम को आरोपित करना भी उनके बालकाव्य का लक्ष्य रहा है।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान जी का बाल साहित्य सुबोध, सुगम्य और सहज है, वह कलात्मक एवं लोकप्रिय रही है। बाल–मनोविनोद के साथ प्रसंगानुसार, उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, देशप्रेम की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने बच्चों में उपदेश तथा सीख लादने का प्रयास नहीं किया बल्कि बच्चों में उसे सहज रूप से प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं का वास्तविक सौंदर्य यही है कि उन्होंने बच्चों के दैनिक क्रियाकलापों द्वारा ही काव्य प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची–1. डॉ0 दिनेश चमोला 'शैलेष', हिंदी बाल साहित्य, पृ – 42 2. डॉ0 रत्नाकर पांडेय स्रोत;– द्विवेदी युगीन बालकाव्य चेतना, भाषा पत्रिका; मई–जून2007, पृ–55 3. स्रोत – सुभद्रा समग्र – सुभद्राकुमारी चौहान पृष्ठ – 195 4. स्रोत – वहीं पृष्ठ – 192 5. स्रोत – वही पृष्ठ – 192 6. स्रोत – वही पृष्ठ – 190 7. स्रोत – वही– पृष्ठ – 180 8. स्रोत – वही– पृष्ठ – 180 9. स्रोत – वही – पृष्ठ – 180 10. स्रोत – वही– पृष्ठ – 185 11. स्रोत – वही– पृष्ठ – 186 12. स्रोत – वही – पृष्ठ – 187 13. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 187 14. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 182 15. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 183 16. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 177 17. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 184 18. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 188 19. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 188 20. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 189 21. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 178 22. स्रोत – वहीं – पृष्ठ – 178 23. मुकुल तथा अन्य कविताएँ; सुभद्राकुमारी चौहान पृष्ठ 51 24. वहीं पृष्ठ 180 25. वहीं पृष्ठ 184

9.स्त्री विमर्श : बदलता परिदृश्य

–डॉ0 शीनू

(हिन्दी विभागाध्यक्ष) गौरीशंकर कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर।

"सपनों से भागती,
एक स्त्री का पीछा करते
कभी देखा है तुमने उसे
रिश्तों के कुरूक्षेत्र में
अपने..................आपसे लड़ते ?"

स्त्री विमर्श अर्थात फैमिनिज़्य स्त्री अस्मिता को केन्द्र में रखकर संगठित रूप से बढ़ाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमें नारी साहित्य की रचना की गयी। नारीवादी साहित्यकारों का उद्देश्य लैगिंक असमानता और भेदभाव को राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था से दूर रखकर महिला और पुरूष दोनों को ही अपने अस्तित्व को निखारने के लिए, समान अवसरों और अधिकारों की पैरवी करना है। दुनिया भर की स्त्री जाति की वास्तविक स्थिति पर विचार विमर्श करने वाली स्त्रीवादी लेखिका **ताराबाई शिंदे** के शब्दों से साफ स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ सदैव से ही अपनी अना के लिए संघर्ष करती आयी हैं। पुरूष का स्त्री से प्रेम तब तक रहता है, जब तक वह उसके साथ है, अन्यथा उसके जाते ही पुरूष अपना रूख मोड़ता है और भूल जाता है कि उसका सम्बन्ध कभी उस स्त्री से था–फ्तुम तो पहली की मृत्यु के पश्चात् दसवें ही दिन दूसरी को **ब्याह** कर लाते हो। बताओ भी कि कौन से ईश्वर ने तुम्हे ऐसी सलाह दी ? जैसी स्त्री वैसा ही पुरूष। तुम में ऐसे कौन से गुण विद्यमान हैं, तुम कौन ऐसे शूर और जाबांज हो कि जिसकी वजह से परम पिता ने तुम्हें ऐसी स्वतंत्रता दी है ?प्त विचारों में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्राचीन काल से ही स्त्री के सन्दर्भ में प्राथमिकता रही है।

परम्परागत नारियों का बंधन तोड़ना आवश्यक था। इसमें सुखद मुद्दे थे। पुरूष–स्त्री समानता, शिक्षा, विवाह, नौकरी, हर क्षेत्र में, राजनैतिक, व्यवसाय आदि में दोनों लोगों का समान अधिकार हो। आजादी के बाद संविधान में समान अधिकार दिया, पर व्यावहारिक रूप से बहुत कुछ छूट गया। शोषण चला, दहेज उत्पीड़न, वेतन का तारतम्य नहीं रहा, पर नारी इसमें भी उठ खड़ी हुई।

रामायण–महाभारत में नारी के साथ जो कुछ हुआ, वह अकल्पनीय है। वह विलास की साधन बनी, उसे अबला कहा गया। सतीत्व की परीक्षा और सती–असती के मानदंड, पुरूष–स्त्री समाज में भिन्न–भिन्न रहे। इस तरह नारी तब हाशिये पर आ गई, परन्तु आधुनिक युग में परिवर्तन हुआ। नारी की स्थिति में जबरदस्त सुधार आया। जयशंकर प्रसाद के नाटक **'ध्रुव स्वामिनी'** में नायिका के दोनों ही रूपों के दर्शन होते हैं वह अपने पति रामगुप्त से भिक्षा मांगती है कि उसकी रक्षा की जाए–"मेरी रक्षा करो! मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। **राजा आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ..................मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।"**

परन्तु जब रामगुप्त उसे उपहार में शकराज को देने की ठान लेता है तब वह अपने नारीत्व की रक्षा, अस्तित्व की रक्षा स्वयं करती है–"मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ, मुझमें रक्त की तरह लालिमा है, मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है, उसकी रक्षा में ही करूंगी।" इस प्रकार प्रसाद ने उन संदर्भों को उठाया, जिसमें नारी स्वयं उठे और अपने लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करें।

वहीं, प्रेमचन्द स्त्री को उसके गुणों के कारण पुरूष से श्रेष्ठ मानते थे, वे मानते थे कि त्याग और वात्सल्य की मूर्ति नारी के जीवन का वास्तविक आधार प्रेम है, और यही उसकी मूल प्रवृत्ति थी। वे स्त्रियों का बेहद सम्मान करते थे। स्त्री के अस्तित्व की उत्कृष्टता उनके साहित्य में नया रूप लेकर आयी। संघर्षरत और मेहनतकश नारियां उनके उपन्यासों की जान हैं–**"जब पुरूष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वो महात्मा बन जाता है लेकिन यदि नारी में यह गुण आ जाए तो वह कुलटा बन जाती है।"** परन्तु नारी समाज में चाहे कितना ही तुच्छ स्थान प्राप्त कर ले वह कभी हारती नहीं है और यहीं सहनशीलता उसे सर्वोपरि बनाती है। प्रेमचन्द के नारी पात्रों की यह विशेषता है कि वे भारतीय हैं। '**गबन**' में **जालपा** जैसी प्रेमचन्द के नारी शक्ति रूपी पात्रों को देखकर आश्चर्य होता है, एक ओर उसका पति को सर्वस्व मानने वाला रूप, तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी होना, वह सबल चरित्र का ऐसा उदाहरण है, जो बिना झगड़े, तत्परता और बहादुरी से जिन्दगी की जद्दोजहद से जूझती है। अपनी समझ से जो भी रास्ता अख्तियार करती है उस पर अडिग रहती है। रीतिरिवाज, अंधविश्वास और संस्कारों को नकारते हुए ज्ञान के उदात्त रूप को आत्मसात करती है। जालपा का रूप प्रेमचन्द की दृष्टि में विकास का द्योतक है। वहीं **'कर्म भूमि'** की **सुखदा** एक समाज कल्याण और आत्मशक्ति के रूप में उभरा व्यक्तित्व है। **'गोदान'** की

'धनिया' सशक्त इरादे की निडर और धैर्यवान स्त्री यथासंभव परिस्थितिवश विरोध और विद्रोह का साहस रखती है, वहीं **'झुनिया'** प्यार करके शादी का फैसला करती है, यहाँ वह पुरूष से ज्यादा सशक्त है। प्रेमचन्द ने विधवा समस्या को अपने साहित्य में बार–बार उभारा है, यह समाज का शाश्वत प्रश्न है जो हर वर्ग की स्त्री के सम्मुख उभरकर आता है–'**गबन**' की विधवा **रतन** कहती है –''न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था कि पति के मरते ही हिन्दू नारी इस प्रकार स्वत्व–वंचिता हो जाती है।'' **इस प्रकार अनगिनत चरित्रों के माध्यम से नारी के जीवन की झाँकी हमारे साहित्य में प्रस्तुत की गयी है।**

स्त्रियों की दशा को देखकर विवेकानन्द कहते है–**''स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है।''** सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह **''स्वातिबूँद और खारे मोती''** तथा **'यह तुम भी जानो'** काफी चर्चित रहे हैं। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है–

''माँ–बाप ने पैदा किया था गूँगा
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही परिपाटी पर
बैसाखियां चरमराती हैं।
अधिक बोझ से अकलाकर
विस्फारित मन हुँकारता है
बैसाखियों को तोड़ दूँ ?''

पिछले बीस सालों में अगर कुछ कहानियों के विषय का विभाजन करें तो हम पाएँगे कि सबसे ज्यादा कहानियाँ स्त्री के मुददों पर ही रची गयी है। उपन्यास के क्षेत्र में स्त्रियों की समस्याओं पर लिखे गए उपन्यासों की एक बेहद उर्वरा जमीन हिन्दी के रचनात्मक साहित्य में देखी गयी है। **कृष्णा सोबती** की **'मित्रों' मरजानी'** एक अक्खड़ और दबंग औरत की सांकेतिक तस्वीर प्रस्तुत करती है। वहीं हिन्दी की वरिष्ठ लेखिका और साहित्यकार ममता कालिया ने 'स्त्री विमर्श पर कह दिया कि सिमोन द बोउआर तक पहॅुचने से पहले हमें महादेवी वर्मा को पढ़ना पड़ेगा, जिन्होंने 1934 में ही लिख दिया था कि हम स्त्री हैं, हमें न किसी पर जय चाहिए, न पराजय, हमें अपनी वह जगह चाहिए जो हमारे लिए निर्धारित है। महादेवी वर्मा ने कहा था कि –**''सभी गुणों के बावजूद स्त्री संस्कारों की गठरी भर बन गयी है।''** उस गठरी को खोलने की आवश्यकता अब शायद स्त्री को समझनी होगी। बहुत बार देखा गया है कि समाज की कहानी स्त्री की कहानी

नहीं बनती, परन्तु स्त्री जब खुद अपनी कहानी के लिए औजार ढूंढती है, और उन्हें अपनी राह बनाने में इस्तेमाल करती है, तो वह समाज की कहानी को चिन्हित करती हुई नजर आती है। **गालिब** का शेर उस स्थिति में ठंडी पवन का काम करता है :–

"इशरत–ए–कतरा है दरिया में फना हो जाना,
दर्द का हद से गुजर जाना है, दवा हो जाना।"

अमृता प्रितम एक ऐसा नाम है जिनकी रचनाओं में स्त्री के उस स्वतंत्र व्यक्तित्व को सामने लाने का प्रयास किया जिसे पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था ने हजारों वर्षों से गुलामी की जंजीर में जकड़ रखा था। **"एक थी अनीता"**, **"धरती सागर और सीपियाँ"** या **"एक थी सारा"** आदि उपन्यासों में स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश में निकल पड़ती है। समाज की जर्जर, रूढिग्रस्त परम्पराओं का विरोध करते हुए, वह अपने लिए उस जमीन की तलाश करती है, जहाँ वह खुलकर सांस ले सके। वे कहती हैं–

"पीर फकीर ने जिस्म को
खुदा का हुजरा कहा है,
आत्मा की कोठरी। तुम बताओ,
महान कोठरी होती है कि आत्मा?"

स्त्री को भी सृजन के मार्गों पर जाना पड़ेगा। उसे भी निर्माण की दशाएँ खोजनी पड़ेगी। जीवन को ज्यादा सुन्दर और सुखद बनाने के लिए उसे अनुदान करना पड़ेगा; तभी स्त्री का मान, स्त्री का सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा होगी। वह समकक्ष आ सकती है। स्त्री को एक और तरह की 'शिक्षा' चाहिए, जो उसे संगीत पूर्ण व्यक्तित्व दे, जो उसे नृत्यपूर्ण व्यक्तित्व दे, जो इसे प्रतीक्षा की अनंत क्षमता दे, जो उसे मौन की, चुप होने की, अनाक्रामक होने की, प्रेम की और करूणा की गहरी शिक्षा दे। स्त्री को पहली दफा चह सोचना है कि क्या स्त्री भी एक नई संस्कृति को जन्म देने के आधार रख सकती है? कोई संस्कृति जहाँ उसे घुट–घुट कर जीवन यापन करने की आवश्यकता नहीं, जहाँ प्रेम, सहानुभूति और दया का साम्राज्य हो और वह हृदय खोल कर कह सके कि वह एक स्त्री है।

"महिलाएँ समाज की वास्तविक वास्तुकार होती हैं।"

संदर्भ सूचीः–

1.उपन्यास्कार प्रेमचन्द, लेख–प्रेमचन्द और उनकी नायिकाएँ, डॉ0 सुरेश सिन्हा

2.गोदान – पृष्ठ 361

3.गबन – पृष्ठ 337

4.ताराबाई शिंदे – स्त्री पुरूष तुलना, संवाद प्रकाशन, 2002

5.डॉ0 मंदाकिनी मीणा एवं डॉ0 अनिरूद्ध कुमार 'सुधांशु'–'अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य'

6.ध्रुवस्वामिनी नाटक – जयशंकर प्रसाद

7.स्वातिबूँद और खारे मोती – सुशीला टाकभौरे

8.पंचशील शोध – समीक्षा

10.संजीव कृत जंगल जहाँ शुरू होता है उपन्यास में आदिवासी विमर्श

–प्रा.डॉ.ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब जाधव,
हिंदी विभाग, शिवनेरी महाविद्यालय, शिरूर अनंतपाल

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। इसका मूल अर्थ निवासी होता है। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है– आदिकाल से देश में रहने वाली जाति। आदिवासी उन्हें कहते हैं, जो पर्वत और जंगलों में दुर्गम स्थानों पर निवास करते हैं, समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते हैं तथा अधिकांशतः मांस–भक्षण तथा अर्द्धनग्न अवस्था में रहते हैं। भारत में आदिवासियों को देशज, वनवासी, जंगली, गिरीजन, इंडिजिनस आदि नामों से पुकारा जाता है। भारत में झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान, असम, महाराष्ट्र, मेघालय, मिजोराम, लक्षद्वीप, अंदमान–निकोबार आदि राज्यों में आदिवासी समाज बसा हुआ है। इसकी आबादी लगभग आठ करोड है तथा लगभग 585 जनजातियों का समावेश इनमें हुआ है। इन जनजातियों में भौगोलिक, प्राकृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक परिवेश के अनुसार ही सभी जनजातियों ने अपनी संस्कृति, समाज, रीति–रिवाज, परंपरा का अपना एक अलग ढाँचा गढ़ा है और ढाँचे में रहकर वे अपना जीवन बसर करते हैं, अपनी संस्कृति का वर्णन करते हैं।

आदिवासियों का जीवन अधिकतर जंगलों में बीतता है। जंगल इनकी संस्कृति है और वही इसका धर्म भी है। विभिन्न संस्कृतियों से दूर ये आदिवासी अपनी संस्कृति का विकास स्वयं करते हैं और अपने प्रतीकों की पूजा करते हैं। ये प्रकृतिपूजक हैं और जंगल, पहाड़, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। वनउपज इनका सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक स्त्रोत होता है। आदिवासी जीवन के बारे में पी. प्रणिता अपना विचार प्रकट करते हुए कहती हैं– "वे आदि बाशिंद हैं और उन्हीं को नागरी अधिकारों से वंचित करके समाज से फेंकने की साजिश हो रही है। इनमें इनकी संपत्ति, जंगल, पानी आदि शामिल है, छीन ली जाती है।"[1] वर्तमान में आदिवासियों का जीवन दलितों से भी गया गुजरा है। वे संगठित नहीं हैं। उनसे जंगल और जंगल की संपत्ति छीनी जा रही है। जिनकी वजह से मेहनत मजदूरी करके अपना गुजारा चलाने के सिवा उनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। लेकिन वर्तमान समय में आदिवासियों के विकास के लिए सरकार की ओर से कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं को अंमल में लाया जा रहा है। उनको शिक्षा देकर मनुष्य धारा में लाने की कोशिश की जा रही है। सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों के बावजूद आज भी आदिवासी जातियाँ उपेक्षा और शोषण का शिकार भी हो रही है।

आदिवासी जीवन पर लिखा गया संजीव कृत– 'जंगल जहाँ शुरू होता है' यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में जंगल को जीतने का दुर्निवार संकल्प है। इस उपन्यास का कथाक्षेत्र बिहार के पश्चिमी चंपारण के मिनी चंबल में रहनेवाले आदिवासियों के शोषण की गाथा है। था:ओं ने अंग्रेजों की गुलामी को कभी स्वीकार नहीं किया था इसलिए अंग्रेजों ने इन्हें चोर, डाकू, आदिवासी बना दिया है। थारू जाति के आदिवासियों की डाकू बनने की विवशता को यथार्थ रूप में संजीव जी ने उपन्यास में चित्रित किया है। थारूओं पर नेता, पुलिस, डाकू और जमींदारों के अन्याय–अत्याचार को उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास का नायक जंगल ही है। इस उपन्यास में डाकू बनने के लिए जिम्मेदार उन सभी परिस्थितियों का चित्रण किया गया है, जो सीधे–साधे गौतम बुद्ध के शाक्य के वंश के थारू जाति के आदिवासी लोग डाकू बनने के लिए विवश हैं। वे सब परिस्थितियां जिनमें प्रकृति का प्रकोप,

दरिद्रता, अंधश्रद्धा, शोषण, भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, पुलिस प्रशासन द्वारा किए जाने वाले अन्याय–अत्याचार, जमींदारों–नेताओं द्वारा किया जानेवाला शोषण, स्त्रियों के साथ किए जाने वाले बलात्कार ये सब समस्याएं इन्हें डाकू बनने के लिए विवश करती हैं। लेखक इस उपन्यास के माध्यम से कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर कुमार के द्वारा परिस्थितियों में परिवर्तन लाने की बात करते हैं, लेकिन कुमार को मलारी के साथ बलात्कार करते हुए और काली के आगे खुद को आत्मसमर्पण करते हुए दिखाकर अफसरों की मूल्यहीनता और डाकुओं की शक्ति और उनके नेताओं के साथ के संबंध को उजागर किया है।

उपन्यास में एक कर्तव्य परायण कुमार नाम के पुलिस अफसर का चित्रण किया है। पश्चिम चंपारण में डाकुओं के उन्मूलन के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक पाइयान' नाम का अभियान चलाया जाता है। इसके चार विभाग हैं। इनमें से एक का प्रमुख कुमार है। जब इस कार्य का जिम्मा वह लेता है तो उसे पता चलता है कि सिर्फ परशुराम, परेमा और नोतिया डाकू नहीं है, ये तो मात्र व्यवस्था के हाथों की कठपुतलियां हैं। कुमार डाकू को मारने की अपेक्षा डाकू बनने की स्थिति को ही खत्म करना चाहता है। डाकुओं को अच्छा इंसान बनने का मौका देना चाहता है। पर भ्रष्ट पुलिस तंत्र को अकेला सुधार नहीं सकता। कुमार डाकू निर्मूलन के संदर्भ में कहता है– "मैंने बार–बार कहा है सर, डाकू समस्या कोई ऊपर का आवरण नहीं है कि आप उसे खरोंच कर फेंक दे। इनकी जड़ों में भूमिसुधार न होना, ढीला प्रशासन, पॉलिटिकल सेक्टर, रोजगार की समस्या, धर्म, टिपिकल भौगोलिक स्थिति वगैरह है। ये सभी इंटररिलेटेड है, सारा कुछ दुरुस्त कर दीजिए, रोग खुद–ब–खुद खत्म हो जाएगा।"[2] वह डाकू समस्या की जड़ को ही खत्म करना चाहता है। वह काली को सुधारने हेतु विवेकानंद की 'दिमाग का कैसे नियंत्रण रखें' और राहुल सांकृत्यायन की 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' ये दोनों किताबें देता है। लेकिन पुलिस व्यवस्था आदिवासियों को मार–मारकर डाकू बना देती है तथा उन्हें विद्रोही बनाकर उनका एनकाउंटर करवा देती है। इन पुलिस वालों के लिए काली के मन में जो गुस्सा भरा है, वह कुमार से इस प्रकार व्यक्त करता है– "अव्वल तो मुकदमा चलेगा ही नहीं, एनकाउंटर के नाम पर मारकर फोटो खिंचवाने का शौक हो तो अलग बात है, दूजे मुकदमें और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदल जाएगी, हालात नहीं बदल जाएंगे, मैं फिर उसी दल–दल में सड़ूँगा।"[3]

आदिवासियों की दुर्गति का सबसे बड़ा कारण शिक्षा का अभाव और अंधविश्वास रहा है। इन आदिवासियों में अंधविश्वास इस कदर फैला हुआ है कि उन्हें उनकी बातें ही सही लगती हैं, उससे अलग हटकर वे सोचना ही नहीं चाहते। जंगल से रात को जब भयानक आवाजें आती हैं, तब कुमार का नौकर पारबती कहता है कि, "हुजूर, बनसप्ती देवी है, भटका रहे है, डाकुओं की देवी है। कभी कोई रूप धर लेती है, कभी कोई और ऊं वह दिन भी ऊं लड़की–लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी। आंखों पर परदा न डाल देती है मैया।"[4] वैसे तो आदिवासियों में छुआछूत नहीं माना जाता। लेकिन उपन्यास में थारूओं में छुआछूत को बताया गया है। जब इस्लाम सबके साथ बैठकर चाय पी रहा था, तब परेमा कहता है– "एक पेड़ की छाँव में इस्लाम बैठकर दोनों में चाय सुड़क रहे थे मियाँ है। बरतन छुआ जाएगा तो फेंकना पड़ेगा। एक पल को ठिठकता है परेमा, अरे ए तिवारी, अब से चाचा के लिए एक ठो परमानेंट बरतन का जुगाड़ रखवाओ।"[5]

थारूओं की स्त्रियों को यौन शोषण का चित्रण उपन्यास में किया गया है। थारू स्त्रियों के शोषण के प्रमुख दो कारण हैं– उनमें पहला यह है कि थारूओं की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा सुंदर होती हैं और दूसरा कारण गरीबी और असुरक्षा। दुःख की बात यह है कि महिलाओं के शोषण के लिए जिम्मेदार खुद महिलाएँ और उनके पति हैं। गरीबी के कारण पति ही पत्नी को देह व्यापार करने के लिए मजबूर करते हैं। स्त्री को

एक वस्तु माना जाता है, कोई भी उससे अपना मन बहला सकता है। महिलाओं को बेचने के लिए ये किसी भी हद तक गिर सकते हैं। पुरुषों के लिए रिश्तो का कोई मोल नहीं होता है। जोगी के बारे में सोखाइन कहती है– "धीरे–धीरे वह औरतों को फुसलाकर लाने और बेटी–बहन के नाम पर ग्राहकों को बेच आने के पूरे तंत्र से वाकिफ होता गया जैसे यह कि इस सौदेबाजी में कभी भी भावुक नहीं होना है, दिल को इतना खड़ा कर लेना है कि चाहे अपनी सगी बेटी, बहू, बहन या पत्नी ही क्यों न हो, अच्छी कीमत मिले तो धंधे की धरम ई है कि देने से नहीं बिचकना है कि जैसे बिल्ली अपने नन्हें बच्चों को कभी एक मुकाम पर नहीं रखती, उसी तरह तुम भी लड़की के मुकाम बदलते रहो, अपना भी। लड़की को मर्दों वाले घरों में न रखो, आग से 'खर' की रखवाली नहीं हो सकती। औरतों के घरों में वे खप खाती है, संदेह भी नहीं होता। जब भी रास्ते में कोई टोके, बेटी, बहन या बहू ही बताओ, दूसरे रिश्ते शक के दायरे में आ जाते हैं।"[5] उपन्यास में जोगी, सोखाईन को नारी देह व्यापार करते हुए दर्शाया गया है। साथ ही पुलिस और डाकू महिलाओं पर बलप्रयोग करके बलात्कार करते हैं। काली की भौजाई बिसरान बहू के साथ पुलिस स्टेशन में बलात्कार किया जाता है, प्रतिशोध की भावना के कारण काली डाकू बन जाता है। मलारी डाकुओं की रखैल बन कर रह जाती है। इस तरह उपन्यास में आदिवासी महिलाओं के शोषण का वास्तविक चित्रण किया गया है।

उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था पर करारा प्रहार किया गया है। डाकू समस्या के मूल में भ्रष्ट व्यवस्था है। व्यवस्था कभी भी डाकू समस्या का निर्मूलन नहीं चाहती। क्योंकि इन्हीं डाकूओं की बदौलत मालिकों को चुनाव के लिए लाखों रुपए मिलते हैं, फिर बूथ कैप्चर करते हुए सत्ता पर विराजित कराने का काम डाकू ही करते हैं। इसलिए नेताओं को डाकू निर्मूलन करना फायदेमंद साबित नहीं होगा। इसलिए डाकुओं को वे अभय देते हैं। उनसे ही किसी का अपहरण, हत्या तथा फिरौती करवाते हैं। डाकू पुलिस को डरते नहीं क्योंकि नेता को उन्होंने चुनाव में जिताया था। चंद्रदीप सिंह का परशुराम, लल्लन बाबू का परेमा पहले लढ़ैत थे बाद में डाकू बन जाते हैं। श्याम देव इंटर में फर्स्ट क्लास था पर गरीबी और अन्याय के चलते डाकू बन गया। परशुराम का सफर तो लढ़ैत, डाकू, विधायक और मंत्री तक है। वह समांतर सरकार चलाता है। स्वयं डाकू होकर डाकू निर्मूलन का ढोंग करता है। कुमार को सत्ता में आने पर राष्ट्रपति पदक दिलाने का प्रलोभन दिखाता है। परशुराम स्वयं को लोकसेवक तथा देशभक्त के रूप में बयान करता है– "परशुराम गरीबों की मदद करता है, जिसको इंसाफ नहीं मिलता, उसको इंसाफ देता है। नियाब करता है कराईम कंटरोल करता है।"[6] जंगल में रहनेवाले आदिवासियों का पुलिस और प्रशासन की ओर से भरोसा उठ गया है। इस संदर्भ में उपन्यास का पात्र मलारी कहता है– "डाकू का विश्वास कर लेना मगर किसी हकीम का विश्वास मत करना। यह देखा गया है कि अपनी मुसीबत का निदान पाने की उम्मीद डाकू सरदार परशुराम और काली से कर सकते हैं, पुलिस और प्रशासन से नहीं। ये तो अब सत्ता के दलाल हैं।"[7] यह जो पुलिस और प्रशासन के ऊपर से लोगों का भरोसा उठ गया है, उस भरोसे को जीतने की जरूरत है। पुलिस और प्रशासन दोनों ही किसी भी समस्या का समूल उच्चाटन नहीं करना चाहती क्योंकि जितनी ज्यादा समस्याएँ होती हैं, उतना ही ज्यादा आर्थिक और राजनीतिक लाभ उनको मिलनेवाला है।

अतः यह उपन्यास समकालीन राजनीति के विरोधाभासों और विसंगतियों का चित्रण करके डाकुओं की जगह पुलिस प्रशासन और सत्ताधारियों के प्रति पाठकों के मन में घृणा का भाव पैदा करता है। साथ ही साथ यह आदिवासी वर्ग भारतीय संस्कृति का परिचायक होने के बावजूद भी सदियों से इस तरह से सुख सुविधाओं से वंचित रहा है, जंगली जीवन बिताने के लिए मजबूर है और अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की

पूर्तता करने के लिए निरंतर संघर्ष और विरोध का सामना किस तरह करना पड़ रहा है, इसका यथार्थ वर्णन उपन्यास में किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. समकालीन हिंदी उपन्यास– सं. एम. षण्मुखन– पृ. सं. 54
2. जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव– पृ. सं. 146
3. जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव– पृ. सं. 139
4. जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव– पृ. सं. 21
5. जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव– पृ. सं. 78
6. जंगल जहाँ शुरू होता है– पृ. सं. 274
7. जंगल जहाँ शुरू होता है– पृ. सं. 32

11.भारतीय समाज में दैनिक क्रिया–कलापों में वर्ण व्यवस्था का प्रभाव

–गजेन्द्र सिंह
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय एम.जे.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय जिला भिण्ड़ (म.प्र.)

भारतीय समाज में वर्ण और जाति की सर्वत्र उपस्थिति दलित बचपन को गहन प्रभावित करती है। दैनिक क्रिया–कलापों में इसका समाविष्टन बालक की व्यवहार–दिशा तय करता हुआ उसकी सामाजिक भूमिका की आदत डलबाता है। बड़ा होता बालक अपने आस–पास के वातावरण से बहुत कुछ सीखकर अपना आचार–विचार निर्धारित करता है। एक तरह से समाज उसके भावी व्यवहार की प्रयोगशाला है। वह अपने माता–पिता, भाई–बन्धु, चाचा–चाची, ताऊ–ताई को समाज की विभिन्न भूमिकाओं में देखता हुआ बड़ा होता है। ये भूमिकाएं ही उसकी जीवन दिशा तय करती है। तभी एक ब्राह्मण एक जमींदार और एक दलित बच्चे के व्यवहार में भारी परिवर्तन पाया जाता है।

सबकी पैदाइश एक समान होती है परन्तु स्कूल जाने की उम्र तक सामाजिक परिस्थितियाँ उन्हें बहुत कुछ अपने अनुसार ढाल लेती हैं। यह भी सच है कि स्कूल का वातावरण भी उस जाति एवं वर्ण की खाई को पाटने की बजाये गहरा ही करती है। स्कूल का हर अंग निरीह सामाजिकता में जीता है। चाहे हेडमास्टर हो, अध्यापक हो, गैर–शिक्षक कर्मचारी हो या फिर सहपाठी, सभी वर्ण और जाति में लिपटे दलित बच्चों की कोमल मानसिकता के साथ खिलवाड़ करते हैं।''[1]

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में आत्मकथाकार अपने बचपन में ही जाति की विभीषिका से दो–चार हाथ हुए हैं। इस विभीषिका ने उन्हें लीलने का भरसक प्रयास किया परन्तु उनका धैर्य, साहस और परिवार का समर्थन लगातार उन्हें मिलता रहा। हालाँकि दलित परिवारों में भी वह चेतना नहीं थी कि वे ब्राह्मणवादी षड्यंत्र को समझ सकते। क्योंकि रोजी–रोटी कमाने की विवशता ने उनके दिमाग तंतुओं को कमजोर किया हुआ है।

बालक श्यौराज को न घर से सहारा मिलता है, न बाहर से और न समाज से। उसके कदम उसे अनायास प्रेमपाल सिंह यादव के खेत तक खींच ले गये। वही उसकी पढ़ाई की सुरक्षागार बनते हैं। दलित आत्मकथाओं द्वारा जाति की समझ उनके बचपन में अनायास ही हो जाती है।''[2] समाज की संरचना और व्यवहृत क्रिया–कलाप एक बालक को सारा सब समझा देते हैं। लेखक ने अपने दस–बारह साल की उम्र में ये गीत सुने थे–

''चप्पल पहन चमाइन चले

सेंडल पहन धोबनिया
हाय मोरे रामा बदल गई दुनिया।''[3]

इन गीतों में चमार–भंगी की गुलामी के वर्णन इसी तरह से मिलते हैं। चमारिन चप्पल पहन कर तथा धोबनिया सेंडल पहनकर चल रही है, इसका मतलब समय बदल गया है। ब्राह्मणवादी किला टूट रहा है। यहॉ रामा का सम्बोधन भी कितना सार्थक हुआ है क्योंकि राम भी उसी ब्राह्मणी संस्कृति के पोषक थे। बालक का बाल–मनोविज्ञान ऐसे गीतों से सोचता है कि चमारिन और धोबिन को क्या चप्पल और सेंडल पहनने का भी अधिकार नहीं है।

बालक श्यौराज द्वारा उसके बचपन में ही गाँव की वर्ण और जाति की संरचना को समझ लिया गया। गांव के सवर्ण जब दलितों के घर आते थे तो दलित अपनी चारपाई छोड़कर खड़े जो जाते और सवर्ण को चारपाई पर बिठाते थे। पढ़े–लिखे लोग भी इस नियम का पालन करते थे।

दलितों के आपसी झगड़ों में भी सवर्ण जमींदार ही उनका फैसला करवाते हैं। आत्मकथाकार डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं– ''आते ही चारपाई के सिरहाने बैठते थे और चमारों से जुहार यानि 'जयराम जी की लम्बरदार' कराते थे। बोलचाल में भी अपने उज्जडपन और सूखे स्वभाव का परिचय देते थे।''[4]

इनके उलट चमार–भंगी यादवों में जाते तो दूर जमीन पर बैठ जाते थे। यहाँ तक कि चमारों के रामचरन और उलफत मास्टर तक को मैंने अनपढ़ यादवों के आगे जमीन पर बैठे देखा। चमार–भंगियों के झगड़े आपस में सुलझते ही नहीं थे। उन्हें एक गैर दलित की जरूरत बनी रहती थी। कभी–कभी उनसे पिटते, गालियाँ खाते और फिर एक हो जाते। गॉव के पुरूष ही नहीं सवर्ण महिलाएं भी चमार भंगियों के साथ छुआछूत बरतती हैं। अनपढ़ महिलाओं की चेतना में भी जातिगत भेदभाव का संस्कार रच बस गया है। 'ब्राह्मणियॉ अनपढ़, असभ्य थीं। ज्ञान के नाम पर उन्हें बस इतना आता था कि वे ऊँची जात हैं। उन्हें सबसे छुआछूत बरतनी है।

पिता के देहांत के बाद बालक श्यौराज अपने अंधे गंगी बब्बा के संरक्षण में रहता है। पूरे गॉव के सवर्ण गंगी से एक अछूत होने के कारण छुआछूत बरतते हैं। बाबा गंगी के साथ बरती जाने वाली छुआछूत को बालक श्यौराज का कोमल मन–मस्तिष्क गहराई से समझ रहा है।''[5]

इसी उम्र के साथ जातिगत भेदभाव से उसका कटु सामना हो गया है। गंगी बब्बा लोगों के घरों में रोटी के लिए भिन्न–भिन्न काम करते थे। 'गाँव में वे यादवों की हाथ–चक्की पीसते थे और चारा–मशीन खींच कर कुट्टी काटते थे। जब वे चाकी पीसते थे, तब उनके हाथ से छूने पर अन्न अछूत नहीं होता था, पर पीसने के बाद बतौर मेहनताना एक–दो रोटी का आटा भीख के अन्दाज में उनकी झोली में डाला जाता था या मुट्ठियों से सूखा अनाज कमीज के पल्लु में डाल दिया जाता था। पीसने के बाद यादव महिलाएं उन्हें आटे को हाथ भी नहीं लगाने देती थीं। बच्चा के अद्धा की गांठ में उनका कटोरा बंधा रहता था।

चमार होने के कारण सवर्ण बालक, जिनकी उम्र मुश्किल से छह–सात साल होती थी, भी उन्हें कोई मानवीय गरिमापूर्ण संबोधित नहीं करते थे। उन्हें भी बचपन में ही जातीय श्रेष्ठता की शिक्षा अनायास मिल जाती हैं। एक ओर बालक श्यौराज का बचपन और दूसरी ओर सवर्णों के बच्चों का बचपन, उनमें रात–दिन का अंतर समझा जा सकता है– गाँव के अहीरों, तेलियों और बनियों के छह–छह, सात–सात साल तक के बच्चे भी 'गंगी इतै आ हमारी खाट बुन दे', 'हमारी कुटी काट दे', 'नाज पीस दे' इत्यादि सेवा कार्य कराने के लिए उन्हें अनादर के साथ बुलाते थे। ऐसा कोई बच्चा मुझे याद नहीं आ रहा जो उनका नाम लेकर न बुलाता हो या इंसान की तरह व्यवहार करता हो।''[6]

बचपन से युवावस्था तक मेरे जीवन के दिन अनेक प्रकार के शिकंजो में जकड़े हुए थे। इस जकडन के कारण मेरा जीवन और व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध होता रहा। कठिन श्रम, कष्ट, आभाव, और जातिभेद की पीड़ा से जकड़े जीवन का बचपन कुछ और याद नहीं कर पाती। जिस तरह किसी ताकतवर को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया हो, उसी तरह मुझे भी सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता ने, वर्णवादी–जातिवादी समाज व्यवस्था ने शिकंजे में जकड़कर रखा, जिसका परिणाम पीड़ा–दर्द, छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं था।''[7]

सुशीला तकभौरे 'शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित होने का जिसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। दलित होना ही जैसे व्यथा की बात है। जिस देश में में वर्णभेद, जातिभेद, की कुलषित परम्पराएँ हैं वहाँ दलित की व्यथा और गहरी हो जाती है सदियों से तिरस्कृत और आभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किये गए दलित जीवन की व्यथा–कथा का दर्द 'शिकंजे का दर्द' में समाहित है।

गरीबी–अभाव का ऐसा कष्ट उठाने के साथ–साथ जातिभेद के अपमान की व्यथा भी मिलती रही। स्कूल में पड़ते समय कोई भी लड़की मेरी पक्की सहेली नहीं बनी। लड़कियों से पढाई संबंधी बातें करने और किताब, कापी–लेने देने का वास्ता ही रहा। जातिभेद के कारण कभी किसी के नजदीक नहीं आने दिया।''[8]

ट्रेन से उतरी अनजान सवारी के साथ टाँगेवाले मुझे भी टाँगे में बैठा लेते थे। उन सवारियों में कोई मेरी जाति को जानता तो, वह मुझे टाँगे में बैठता देखकर तुरंत उतारने लगता, साथ ही गुस्से से कहता– ''अरे भाई क्या, अंधेर कर रहे हो? किसको हमारे साथ बैठा रहे हो? जरा सोच समझकर, सवारी बैठाओ। नहीं तो, कहो तो हम उतर जाते हैं।'' कई बार लोगो की ऐसी बातें सुनकर मैं छटपटा कर रह जाते, जातिभेद का अपमान हृदय में शूल की तरह चुभता, आँखों में गुस्सा उतर आता।''[9]

दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए यह किसी बदनुमा दाग से कम नहीं कि वह एक दलित को पहली बार विभागाध्यक्ष बनाने के ऐतिहासिक अवसर को टालने की कोशिश कर रहा है। 1922 में स्थापित दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अभी तक किसी दलित को विभागाध्यक्ष होने

का मौका नहीं मिला है। श्यौराज सिंह बेचैन उदार लेखक हैं। वे दलित आंदोलनों को सहानुभूति के साथ देखते रहे हैं, लेकिन बहुत आक्रामक ढंग से उसका हिस्सा नहीं रहे हैं। संभव है, कुछ लोग इस बात के लिए उनकी आलोचना भी करते रहे हों। लेकिन वे मूलतः मुख्यधारा के ऐसे लेखक हैं जिनसे किसी को भयभीत नहीं होना चाहिए। इस पूरे विवाद के बीच वे बिल्कुल चुपचाप रहे हैं। फिर भी यह उनकी वैचारिक अवस्थिति और जातिगत पहचान है जिसकी वजह से अपनी वरिष्ठता के बावजूद दिल्ली विश्वविद्यालय उनको अपने लिए असुविधाजनक मान रहा है।''[10]

दलित जीवन हीन स्थिति में पनपता है। उसके लिए घर और बाहर की दुनिया एक अजायबघर की तरह होती है। केवल जाति के कारण उनको दुत्कारा जाना उनके लिए सबसे बड़ी विडम्बना होती है। यह विडम्बना एक बालक व दलित के स्वाभाविक निर्भीकता के गुण को तहस–नहस करके रख देती है।

सन्दर्भ सूची–1–मेरा बचपन मेरे कंधों पर, डॉ. श्यौराज सिंह बचैन, पृ. 239

2–वही. पृ. 75

3–संतप्त, सूरजपाल चौहान, पृ. 25

4–तिरस्कृत, सूरजपाल चौहान, पृ. 35

5–घुटन, रमाशंकर आर्य, पृ. 60

6–वही. पृ. 71

7–शिकंजे का दर्द, सुशीला तकभौरे पृ. 9

8–वही. पृ. 104

9–वही. पृ. 110

10–https://ndtv.in/blogs/priyadarshans-blog-why-is-delhi-university-not-allowing-a-dalit-to-become-the-head-of-the-department-2113111

12.साहित्य में स्त्री विमर्ष

–डा. इरफाना. डी.एम.एस.
चल्लकेरे, चित्रदुर्गा जि.कर्नाटक

नारी विमर्श का प्रारंभ कब हुआ इसके संबंध में विद्वानों में सुनिश्चित एकमतता नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार इसका प्रारंभ 19 शताब्दी की दें है। 20 वीं शताब्दी में भी कुछ लोग इसका प्रारंभ फ्रांसीसी लेखक 'साइमन डी' बुआ की पुस्तक " द सेकंड सेक्स (1949)के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं और कुछ मेरी एलमन की पुस्तक 'थिकिंग एबाउट वीमन ' के प्रकाशन वर्ष से लेकिन अधिकाँश विद्वान इस तरह के किसी वर्ष विशेष को स्त्री विमर्श का प्रस्थान बिंदु मानना उचित नहीं समझते, क्योंकि20 शताब्दी में ही इससे पहले भी स्त्री की अलग पहचान , उसके स्वतान्त्रधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था। हिंदी में आरी विमर्श ने 20 शताब्दी के लगबग अंत में जोर पकड़ा है और अनेक लेखिकाए उसमें शामिल हुई है। आन्दोलन के रूप में इसकी शुरुआत ब्रिटेन और अमेरिका में में हुई 1 विन शताब्दी में औद्योगिक कात्न्ति के दौरान कई किस्म के संघर्ष हुए। उनमें एक संघर्ष स्त्री पक्ष ने भी किया। उनहोंने धर्मशास्त्र और कानूनों के द्वारा खुद को पुरुषों के मुकाबले शारीरिक और बौधिक धरातल पर कमजोर मानने इ इनकार कर दिया।

भारत में नारीवादी आन्दोलन की शुरुआत नवागारण के साथ हुई। राजा राममोहनराय ने 1818 में सटी प्रथा का विरोध किया और उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक ने सटी प्रथा को एयर कानूनी घोषित किया बाल विवाह, विधवा विवाह और बहुपत्नी प्रथा के विरुद्ध लड़ते हुए राजा राममोहनराय स्त्री के पक्षधर नजर आते हैं। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी विवेकानन्द और वामी दयान्म्द सरस्वती ने भी स्त्री शिक्षा पर जोर किया।ज्योइराव फुले व उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने स्त्रियों के सुधार के लिए महिला सेवा मंडल की स्थापना की। फुले दम्पति ने 1848 से लेकर सन्न 1952 लत लगभग अठारह पाठशालाओं का पाट्यक्रम बनाया और उसे कार्यान्वित भी किया। प्रारंभ में लड़कियों की शिक्षा आ विरोध तो हुआ किन्तु बाद में लोग स्त्री शिक्षा के महत्त्व को समझाने लगे है।

भारत की पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी सदियों से उपेक्षित रही है। उसे हमेशा पुरुष पर अवलंबित रहना पड़ता है। ऐसी उपेखित सतायी जाती नारी का असली रूप ग्रामीण समाज में ही देखने को मिलता है। आजादी , राजनीतिक संवाद या कोई भी

प्रगतिशील विचारधारा उसकी स्थिति को सुधारने संवारने में प्रसमार्थ रही है। शहरों में इन सबसे थोड़ा बहुत अंतर आता रहता है, क्योंकि साथन संपन्नता, वैद्धिकता व शिक्षा आदि की वजह से सभ्यता संस्कृति व जीवन के बदलाव वहां सबसे पहले स्थान ग्रहण करते हैं इन सबसे दूर अपने जद्बद्ध मूल संस्कारों में फंसे गाँवों में कोई फर्क नहीं पढता। नैतिकता, मर्यादा, मूल्य आदि के नियम उपनियम उसी के साथ पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर खडी हुई है, उसमें स्वाभिमान और आत्मगौरव के भाव जागे हैं। खटकनेवाली बातों का वह विरोध करने लगी है, किन्तु फिर भी यह स्थिति आम नहीं है। आज भी नारी की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है। भारत के गाँवों में वह उपेक्षित और पीड़ित ही है।

ग्रामीण भारतीय स्त्रियों की दशा की दशा तरफ इशारा करते हुए आचार्य शिवपूजन सहाय लिखते हैं।उनके अनुसार सती पुरुष में यदि संस्कारिक विचारों को छोड़ किया जाए तो कुछ भी बीएड नहीं। यहाँ सारे निया, बंधन पुरुष के अपने गधे हुए हैं। साथ ही यदि स्त्री भी वास्तविक समानता का दावा करती है तो उसे माससिक स्वतंत्रता पहले अर्जित करनी होगी। उनकी कहानियों का एक मुख्य आकर्षण उनके नारी पात्र है, जो समाज में आज भी मौजूद सामन्तवादी मानसिकता से संघर्ष करते हुए अकेले खड़े दिखाई देते हैं।स्त्री पुरुष समानता के कायल है। सामाजिक जीवन में स्त्री और पुरुष दोनों की भूमिकाओं को स्वीकार करते हुए नारियों पर होनेवाले अन्याय अत्याचारों का वे खुलकर विरोध करते हैं। एक ओर गाँव के जमींदार से शोषित है, जो उसकी ताल की शिकार है। दूसरी ओर उसके पति से जो अपने पुत्र और पत्नी की चिंता छोड़कर दिन रात शराब में धुत बाहर रहता है। ऐसे पति के साथ अपना जीवन बिताती सजर आती है। स्त्री को भगवान झेलने की ताकत बहुत दिया है।

नारी को जीवन भर कष्टों का सामाना करना पड़ता है। नारी जीवन से जुडी ससस्याओं के अंतर्गत प्रेम और विवाह से संबद्ध समस्याओं को भी सामना करना पड़ता है। प्रेम के साथ साथ विवाह के संबंधा में भी विशिष्ट धारणा है। असल में भारतीय समाज व्यवस्था में विवाह संबंधों के बनाने और जुड़ने का नाम है। परन्तु वर्तमान युग एन विवाह संस्था का रूप इतना विकृत हो उठा है कि वह सामाजिक निःसारता का प्रतीक बन गया है।यही कारण है कि ग्राम केन्द्रित कहानियों के नारी पात्र इस परंपरागत और खाखाली विवाह पद्धति में परिवर्तन की बात करते हैं। नारी प्रेम विवाह के संबंध में एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ती हैं।

प्रेम और विवाह की समस्या के भीतर अनमेल विवाह, बाल विवाह और विधवा विवाह जैसी कुछ समस्याओं के परिप्रेक्षय में भी नारी को झेलना पड़ता है। अच्छा घर देखकर नारी को बहुत उम्र वाले व्यक्ति से शादि कर देते हैं। छोटी उम्र की लड़की को अपने पति को समझ ने बहुत मुश्कित होता है।अनमेल विवाह का शिकार होते हैं। गरीब बाप की बेटी संतों का विवाह उससे तिगुनी उम्र के अपाहिज आदमी के साथ करते हैं। परिणामतः वहा अवैध संबंधों की शिकार होकर एक एक कर सात बच्चो की मान बना जाती है। गरीबी के कारण एक अच्छी भली और निरपराध ग्रामीण युवती का शादी के नाम पर शोषण होता है। घर की परिस्थिति के कारण , गरीबी के कारण नारी को अपना तन भी बेचना पड़ता है , सारा गाँव उसे कुलटा और व्यभिचारिणी कहकर नंदित करता है, जिससे वह अन्दर ही घुट घुट के जीती है। परिस्थितियों के विवश नारि को सभी तरह का दुःख झेलना पड़ता है। अनमेल विवाह में युवती की उम्र कम और युवक की ज्यादा होती है। उन दोनों में ताल मेल नहीं रहता। उनके सोच विचार , रहन सहना, उनके दायरे भी अलग अलग होते हैं। तो उनका जीवन यापन सुख माय नही बनसकता। हमेशा उनको समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कभी कभी 5–6 बचों के पिता को गरीबी के कारण विवाह कर देते हैं।

इसी तरह बालविवाह भी भारतीय स्त्री के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। कानूनी तौर पर लडके लड़की की क्रमशः इक्कीस और 18 वर्ष से कम आयु में शादी कर देना बाल विवाह कहलाता है। वान्वो में स्थिति परंपरावादी और अशिक्षित लोगों के कारण आज भी कहीं कहीं बाल विवाह का प्रचालन दिखाई देता है। उस छोटी सी बच्ची को मां के दायरे में, उस के लाड प्यार में पाले रहने की उम्र में उसे विवाह करते हैं। उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। सास ससुर के घर में कैसे अपने आपको संभालना उसको पता नहीं रहता, कैसा व्यवहार करना नही मालुम रहता है, पति के घरवालों के डांट से, मार से वह छोटी सी उम्र में सिकुड़ जाती है। वह खुद एक बच्ची रहती है, उसे अपना बच्चा संभालना पड़ता है। छोटी उम्र में वह बूढी जैसी दिखाती है। जल्दी शादी , जल्दी बच्चे , जल्दी बीमारियों का शिकार करना पड़ता है। उसे रक्तहीनता, स्त्री संबंधित बीमारियों का सामाना करना पड़ता है।

दहेज़ प्रथा भारतीय विवाजन्य समस्या का ही एक दूसरा रूप है। भारत में विवाह के समय लड़कीवालों की ओर से वरपखा को रूपए पैसे आदि कुछ न कुछ देने की परंपरा सदियों से विद्यमान है। आज कल इस कुप्रथा से बड़ा विकराल रूप धारण किया

है। भारत के ग्रामीण हों या शहरीं आं आदमी के लीए लड़की का विवाह एक विकट आर्थिक समस्या बन गई है। ऐसी कुप्रथाओं के कारण सामाजिक जीवन में कटुता और दरारों उत्पन्न होती हैं। अनमोल इवाह जैसी घोर कुप्रथा इसी का विक्सित रूप है। आजकल दहेज़ लेना और देना दोनों कानूनन अपराध है, फिर भी छिपे तौर पर यह प्रथा कायम है।

ग्रामीण सामाजिक जीवन से संबंधित समस्याओं के अंतर्गत स्वातन्त्रोत्तर कहानीकारों ने स्त्री पुरुष संबंध तथा सारी पराधीनता से संबंधित समस्याओं को पुरी गंभीरता के साथ उठाया है। ये रचनाकार स्त्री के समानाधिकार के समर्थक हैं। इसकी दृष्ठि में सामाझिक जीवन में स्त्री पुरुष दोनों की भूमिकाए महत्वपूर्ण हैं। स्त्री पुरुष के बीच प्रेम और सहयोग की भावना ही जीवन को एक सही और स्वस्था गति प्रदान करती हैस्त्री । इस विवेचन के आरंभ में ही कहा जा चुका है कि लेखक स्त्री पुरुष समानता के पक्षधर हैं।

गृहस्थ जीवन में पति पत्नी संबंधा पारिवारिक जीवन का मुख्या संबंध है। यही एक केन्द्रीय संबंध है। जहां से अन्य संबंधों का उत्पन्न होता है। जीवन में सुख समृद्धी सम्पन्नता एवं स्वाभाविकता इन दोनों के पारस्पर्क सहयोग एवं स्वाभाविकता इन दोनों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्बाव पर आधारित है। जीवन के विकास का आधार यही संबंधा है पाती पत्नी सन्धा में ज़रा सी कटुता समस्य वातावरण में कटुता बार देती है। पश्चिमी सबयता एवं शिक्षा के कारण नगरीय जीवन में इन संबंधों के अंतर्गत बहुत तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है। जब की गांवों में यह परिवर्तन प्रक्रिया अभी नाममात्र की है। शहरों में इसी संबंध कटुता का परिणाम है विच्छेदन। विच्छेदन की प्रथा अभी बांवों से दूर है। ग्राम्य जीवन में यहाँ स्थिति तब देखने को मिलाती है जब पति पत्नी के पारस्परिक संबंधों में या उअनके वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे प्रेमी अथवा प्रेमिका का आगमन होता है।

हमारे गांधीजी का सपना था कि नारि रात के 12 बजे अकेली आजादी से घूमेगी तो तब भारत स्वतन्त्र हुआ। यह तो न मुमकिन है, भारत में रोज लड़कियों पर अत्याचार हो रहा है। छोटे बच्चों से लेकर बढ़ो तक भी आज अत्याचार से नही बचारे है। ऐसे महामारी के दिनों भी लोगों को अक्ल नही आरही है। 2020 में 19% लड़कियों का अपहरण हुआ है। एन.सी.आर.बी. की रिपोर्ट से रोज 77 रपे हो रहे है। 80 हत्या होरहे है। 2020 में 28]046 केस रेप के है। स्त्री देह की स्वतंत्रता उसे अपने सौन्दर्य बोध

अपनी अनुबुत यों और स्न्वेदान्न के आधार पर समशाने और महसूस करने में है और हिंदी का स्त्री लिखाण इस स्टार तक पहुँच चुक है। जहां भारतीय समाज और वर्चस्वशाली संसृति द्वारा स्त्रीयों पर थोपा गया यों मुक्ति की बात करते करते स्त्री फिर उसी पुरुषवादी सौन्दर्य बोध की कसौटी पर स्वयं को डसने लगती है लिकिन भारत के सन्दर्भ में जान मुख्या धारा में भी अभी तक सामाजिक स्वतंत्रता का कोई स्वरूप नहीं है वहां लैंगिक स्वतंत्रता बार बार उसी सांस्कृतिक वर्चस्व वाले जाल में उलझाता नार आया यह बहुत आश्कार्यनक नहीं है।

स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगन विश्वासों तक ही सीमित नहीं उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी तलाशने की जरुरत हमारे आलोचकों को हे न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक ख़ास दायरे में बांदाने की कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के पारिवार्तनों को भी ध्यान में रखना भी आवश्यक है। स्त्रीवाद विमर्श संबंधी आदर्ष का मूल कथ्य यही रहता है कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंग न बने। आधुनिक स्त्रीवादी विमर्श की मुख्य आलोकाना हमेशा से यही रही है कि इसके सिद्धांत एवं दर्शान मुक्य रूप से पश्चिमी मूल्यों एवं दर्शन पर आधारित रहे है। नारीवाद राजनीतिक आन्दोलन का एक सामाजिक सिद्धांत है जो स्त्रीयों के अनुभवों से जनित है। हालाकि मूल रूप से यह सामाजिक संबंध से अनुप्रेरित है लिकिन कई स्त्रीवादी विद्धान का मुक्य जोर लैंगिक असमानता और औरतों की अधिकार इत्यादि पर ज्यादा बाला देते हैं।

13.भारतीय कृषि क्षेत्र में पानी के स्रोतों का विकास

–जयवीर सिंह,
एम ए (जे एम सी)
संस्थानः सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

प्रस्तावनाः भारत देश एक कृषि प्रधान देश है। भारत के अनेक नाम है, जैसे भारत वर्ष, भारत, हिंदुस्तान, इंडिया और कृषि प्रधान देश आदि। भारत को महापुरुषों का देश भी कहा जाता है। भारत एक अखंड देश है। भारत के गांव में आज भी 70% जनसंख्या गांव में बसती है। गांव की आबादी कृषि पर निर्भर है। भारत देश 15 अगस्त 1947 में अंग्रेजों से आजाद हुआ था। इस शोध विषय में हम कृषि क्षेत्र में सिंचाई के साधनों और सिंचाई के तरीकों का अध्ययन करेंगे। देश की आजादी से पहले सिंचाई के कौन से साधन थे और देश की आजादी के बाद सिंचाई के कौन से साधन है। कृषि के क्षेत्र में सिंचाई के संसाधनों का कितना विकास हुआ है, यह सब जानकारी हम इस शोध अध्ययन के अंतर्गत करेंगे। कृषि में सिंचाई के कौन से प्रकार थे तथा सिंचाई कैसे की जाती थी आदि की जानकारी भी हम इस शोध अध्ययन में कर सकेंगे।सिंचाई का अर्थः कृषि के क्षेत्र में फसलों एवं बाग़वानी को तैयार करने में पानी की आवश्यकता होती है, फसलों एवं बाग़वानी को तैयार करने के लिए की गई पानी की आपूर्ति को हम सिंचाई कहते हैं।'फसलोत्पादन में जल के अभाव में पौधे का जीवन असम्भव होता है । पौधों को जीवनकाल में अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होती है । प्राकृतिक रुप से जल की आवश्यकता पूर्ति नहीं हो पाती है । अतः पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए कृत्रिम रुप से पानी की व्यवस्था करनी पड़ती है जिसे सिंचाई कहते हैं ।

सिंचाई के प्रकारः

छिड़काव सिंचाई प्रणालीः छिड़काव सिंचाई, पानी सिंचाई की एक विधि है, जो वर्षा के समान है। पानी पाइप तंत्र के माध्यम से आमतौर पर पम्पिंग द्वारा वितरित किया जाता है। वह फिर स्प्रे हेड के माध्यम से हवा और पूरी मिट्टी की सतह पर छिड़का जाता है जिससे पानी भूमि पर गिरने वाला पानी छोटी बूँदों में बंट जाता है।

बेसिन या द्रोणी सिंचाईः सिंचाई की एक विधि जिसके अंतर्गत वर्षा या बाढ़ के समय निम्न भूमि या गर्तों में जल एकत्रित कर लिया जाता है और उसका उपयोग समीपवर्ती खेतों में फसलों की सिंचाई के लिए किया जाता है। मिश्र और सूडान में ग्रीष्म ऋतु में नील नदी में आने वाली बाढ़ के जल को विशेष रूप से बनाये गर्तों में एकत्रित किया जाता है जिससे फसलों की सिंचाई की जाती है।कुआँ और रेहट से सिंचाईः बारिश कम होने से जिले के किसान परेशान हैं। जिसकी वजह से जिले में सिंचाई की समस्या

बढ़ती जा रही है। जिसका मुख्य कारण यह भी है कि किसान अपने परंपरागत सिंचाई के साधनों का उपयोग नहीं कर रहे और पूरी तरह से नहरों और और सरकारी सहायता पर अश्रित होते जा रहे हैं। एक समय ऐसा भी था जब किसानों के खेतों में नहरों का पानी नही पहुंच पाता था। तो किसान अपने खेतों के समीप एक कुआं खोद कर उसमें लोहे की बनी रेहट नामक मशीन लगा देते थे और अपनी फसल की सिंचाई कर लेते थे। परन्तु धीरे –धीरे कुआं की संख्या में भी कमी आती गयी।

बौछारी (स्प्रिंकलर) सिंचाई तकनीकः बौछारी या स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई में पानी को छिड़काव के रूप में दिया जाता है। जिससे पानी पौधों पर वर्षा की बूंदों जैसी पड़ती हैं। पानी की बचत और उत्पादन की अधिक पैदावार के लिहाज से बौछारी सिंचाई प्रणाली अति उपयोगी और वैज्ञानिक तरीका मानी गई है। किसानों में सूक्ष्म सिंचाई के प्रति काफी उत्साह देखी गई।

शोध अध्ययनः भारतीय कृषि के क्षेत्र में आज काफी तरक्की हो चुकी है। आज कृषि के क्षेत्र में अनेक प्रकार के संसाधनों का विकास हो चुका है। आज कृषि की पैदावार में काफी बढ़ोतरी हुई है। आज कृषि में सभी फसलों की पैदावार अच्छी हो रही है। भारतीय कृषि क्षेत्र में पानी के संसाधनों के विकास को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैंः

1-स्वतंत्रता से पूर्व सिंचाई की व्यवस्थाः फसलों की सिंचाई के लिए देश की स्वतंत्रता से पूर्व पश्चिम उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के भारतीय किसानों के पानी के संसाधनों को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैंः

ऽपश्चिम उत्तर–प्रदेश राज्य में सिंचाई के संसाधनः– देश की आज़ादी से पहले पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसानों के द्वारा सिंचाई के संसाधनों का जो उपयोग किया जाता था वह कुछ इस प्रकार से हैंः

क)बोक्का (बोका)ः किसान को हम दुनिया का अन्नदाता कहते हैं। किसान सभी जीवों का पेट भरता है, इंसान हो चाहे जानवर सभी का किसान रक्षक है। किसान अपनी फसलों को तैयार करने में बहुत कड़ी मेहनत करते हैं। किसान का खेती करने का कोई समय नहीं होता है। किसान दिन और रात में लगातार फसलों को तैयार करने में लगे रहते हैं। पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसान फसलों की सिंचाई के लिए बोका का उपयोग किया करते थे। बोका का उपयोग उन खेतों में किया जाता था जो खेत पानी की सतह से ऊपर होते थे। बोका दो प्रकार के होते थे, जो निम्नलिखित हैंः

1-लोहे के पत्रे का बोक्काः लोहे के पत्रे या लोहे की चादर से एक आयातकार 20–30 लीटर की बाल्टी बनायीं जाती थी। इस बाल्टी में चारों कोनों पर कड़ी लगीं होती थी। उन चारों कड़ी में चार रस्सी बाँधी जाती थी। दो आदमी दो–दो रस्सी पकड़कर पानी में खड़े होकर पानी का बोका भरकर नीचे से ऊपर खेत में फेंकते रहते थे। यह प्रकिया तब तक चलती रहती थी जब तक वह खेत पानी से नहीं भर जाता था। लोहे का बोका बहुत कम किसानों के पास होता था।

2-चमड़े से बना बोक्काः चमड़े से बना बोका, किसी जानवर की खाल से चमड़ा तैयार करके बनाया जाता था। जैसे भैंस, बैल या बकरे आदि की खाल से तैयार किया जाता था। जब कोई जानवर मर जाता था तो जानवर की खाल उतार कर चमड़ा तैयार किया जाता था। फिर चमड़े की टोकरी, बाल्टी या ढोल के आकार का कूप बनाया जाता था और उसके चारों कोनों में रस्सी बांधकर ठीक लोहे के बोका की तरह ही दो लोगों द्वारा उपयोग किया जाता था।

[I)चरस (चमड़े की बाल्टी या टोकरी): चरस को हम चरसा, चमड़े का ढोल, चमड़े की बाल्टी या चमड़े का कूप आदि नामों से जान सकते हैं। चरस चमड़े से बनी एक बाल्टी होती थी। इस बाल्टी से कुएँ से पानी निकाल कर खेतों की सिंचाई की जाती थी। एक कुएँ के पास दो लकड़ियों को अलग–अलग कुछ दूरी पर गाढ़ा जाता था और उन दोनों लकड़ियों पर एक तीसरी लकड़ी बाँधी जाती थी। इस बँधी हुई तीसरी लकड़ी के ऊपर से एक लंबी रस्सी में चरस को बांधकर कुएँ में डाला जाता था। यह चरस लगभग 50–60 लीटर की क्षमता का होता था। अब इस चरस को दो बैलों के द्वारा खींचा जाता था। कुएँ से बहार पानी बैलों द्वारा निकाला जाता था और खेतों की सिंचाई की जाती थी।

चरसा का मतलब हिंदी मेंः चरसा संस्कृत ख्संज्ञा पुल्लिंग, 1- भैंस, बैल आदि का चमड़ा 2- चमड़े का बना बड़ा थैला जिससे पानी खींचकर खेत सींचा जाता था ; चरस ; पुरा ; मोट 3- ज़मीन का एक नाप। चरसा 2– संज्ञा पुलिंग खहिंदी चरस, चरस पक्षी। चरसा 1– संज्ञा पुलिंग खहिंदी चरस, 1- भैंस बैल आदि का चमड़ा । 2- चमड़े का बना हुआ थैला । 3- चरस । मोट । पुर । 4- भूमि का एक परिमाण । गोचर्म । विश्लेषण देशज शब्द देखें 'चरस' ।(संज्ञा पुलिंग) गाय, भैंस का चमड़ा। (बघेली शब्द) चमड़े का वह बड़ा डोल जिसके द्वारा बैलों की सहायता से खेतों की सिंचाई के लिए पानी खींचा जाता है। भैंस, बैल आदि का चमड़ा। ज़मीन का एक नाप। चमड़े का बना

बड़ा थैला जिससे पानी खींचकर खेत सींचा जाता था; चरस; पुरा; मोट। भैंस या बैल आदि के चमड़े का बना हुआ वह वबड़ा थैला जिसकी सहायता से खेत सींचने के लिए कुएँ से पानी निकाला जाता है। मड़े का बना हुआ कोई बड़ा थैला। चरस (पक्षी)

ग)रहट (अरहट): अरहट खेतों की सिंचाई करने की एक प्रकिया थी। इस प्रक्रिया के द्वारा एक लोहे के डब्बों की चैन बना कर एक गोलाकार घेरे के ऊपर से कुएँ में लटकाईं जाती थी। इस घेरे को जिस पर चैन लटकी हुई रहती थी एक अन्य घेरे के साथ जोड़ दिया जाता था। फिर इस घेरे को दो बैलों या एक ऊँट के द्वारा घुमाया जाता था। चैन घुमती रहती थी और पानी से भरे हुए डब्बे बहार सीधे आते थे फिर जब वह डिब्बे अंदर कुएँ में वापस जाते थे तो उनका मुँह नीचे हो जाता था तो पानी एक लोहे के साँचे में गिरता रहता था। एक डब्बे में 3–4 लीटर पानी आता था और एक चैन में डब्बों की संख्या लगभग 30–50 तक की होती थी।

(रहटः रहट या अरहट जिसे अंग्रेजों द्वारा पर्सियन व्हील नाम से संबोधित किया गया है, सिंचाई हेतु प्रयुक्त की जाने वाली एक विलक्षण मशीन थी, जो चेन तथा गीयर पर आधारित थी। मुगलकाल में लाहौर, दिपालपुर, तथा सरहिंद में इसका व्यापक प्रयोग होता था। सिंचाई की इस प्रक्रिया में बैलों के प्रयोग से मानव ऊर्जा की बचत होती थी। सिंचाई के लिए कुओं से पानी निकालने के लिए बनाए गए यंत्र विशेष को रहट, रंहट, रहटा, अरहट्ठ, चरखा, घाटीयंत्र, अरहट, अरघटक, पिरिया आदि नामों से भी जाना जाता है। वेदों में अरगराट (अरघट्ट) शब्द का प्रयोग जलयंत्र के रूप में हुआ है, जिसका अभिप्राय है कि ऐसा कुआ, जिस पर रहट से सिंचाई होती हो। दरअसल, जिस कुएं में सिंचाई के लिए रहट का प्रयोग होता है, उसी को रहटआला कुआं कहा जाता है। पक्के कुएं में ही रहट की स्थापना होती है।)

घ)नहरः नहर खेतों की सिंचाई के लिए सबसे सस्ती प्रणाली थीं और आज भी है। गाँव लुहारी में पहली नहर 1935–40 तथा दूसरी नहर 1941–45 के लगभग लायी गई थी। सिंचाई के लिए नहर जैसे–जैसे आगे बढ़ती है, वह पेड़ की शाखों की तरह छोटी होती जाती है। इसके विपरीत नदियाँ जैसे–जैसे आगे बढ़ती हैं, बड़ी होती जाती हैं और उनकी सहायक नदियाँ तथा नाले उनमें मिलते रहते हैं। शाखाओं से वितरण नहर और रबजहा (नहर से चौड़ाई में कम होते हैं) निकलते हैं।

ड)वर्षाः वह कृषि के क्षेत्र जहां पानी की कोई व्यवस्था नहीं होती थी वहाँ भगवान के भरोसे ही खेती की जाती थी। उस क्षेत्र में ऐसी फसलों को उगाया जाता था जो वर्षा के मौसम में ही होती थी।

II)महाराष्ट्र राज्य में सिंचाई के संसाधन

क)मोटः महाराष्ट्र में चरस को को मोट कहते थे। यह चरस के समान ही होता था। लेकिन महाराष्ट्र में मोट से पानी निकालने के लिए चार बैलों का उपयोग किया जाता था। (चमड़े का बड़ा थैला जिससे सिंचाई की जाती है। चरसा।) मोट को महाराष्ट्र के किसान दो प्रकार से बनवाते थे। जो निम्नलिखित थेः

1-चमड़े से बना मोट 2-लोहे के पत्रे से बना मोट

[ा)वर्षाः महाराष्ट्र के अनेक कृषि के क्षेत्र वर्षा के ऊपर ही निर्भर थे।

गुलामी काल व गुलामी काल का प्रभाव (वर्ष 1900 से वर्ष 1960 तक): 15 अगस्त 1947 में भारत से अंग्रेज़ तो चले गए लेकिन अंग्रेजी प्रशासन का प्रभाव कृषि के क्षेत्र में 1960 तक देखने को मिला। खेतों की सिंचाई के लिए संसाधनों की काफी कमी थी। एक गांव में इक्का–दुक्का ही रहट होते थे। अंग्रेजों के जाने से कुछ समय पहले ही नहरों का निर्माण हुआ। सिंचाई की व्यवस्था उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों में एक जैसी ही थी। बल्कि महाराष्ट्र में पानी के संसाधन उत्तर प्रदेश की तुलना में कम थे। अर्थात् यह कह सकते हैं कि 1960 से पहले सिंचाई के संसाधन नहीं के बराबर ही थे।

2-स्वतंत्रता के बाद सिंचाई की व्यवस्थाः स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक सिंचाई के लिए सुविधाएँ उपलब्ध होने लगी और आज इन क्षेत्रों में सिंचाई की कोई समस्या नहीं है।

प्द्धउत्तर–प्रदेश राज्य में सिंचाई के संसाधनः स्वतंत्रता के पश्चात पानी के संसाधनों का काफ़ी विकास हुआ है।

क) बोक्का (बोका): मेरे परिवार में 1985 तक लोहे का बोका था। लेकिन कभी–कभी यह बहुत ही कम खेतों में उपयोग किया जाता था। इस समय यह उस खेत में उपयोग किया जाता था जो खेत समतल नहीं होता था।

क)नहर और रबजहाः आज पश्चिम उत्तर प्रदेश में अनेक नहरें और रबजहों का निर्माण हो चुका है। पश्चिम उत्तर प्रदेश में पूर्व से पश्चिम में 20 किलोमीटर के दायरे में आज आठ नहरें चलती हैं।

[।)रहटः 1960 से 1965 के बीच खेतों की चकबंदी की गयी थी। चकबंदी होने के बाद जहाँ 1960 से पहले एक गांव में एक या दो रहट होते थे वही चकबंदी के बाद गांव में अनेक रहट किसानों ने अपने अपने खेतों में लगा लिए थे। यह व्यवस्था लगभग 1985 तक चली। उसके बाद यह व्यवस्था बंद हो गयी।

ग)नलकूपः पश्चिम उत्तर प्रदेश में 1980 के बाद नलकूप लगने का सिलसिला शुरू हो गया और लगभग सभी खेतों में नलकूप व्यवस्था सिंचाई के लिए उपयोग में लाई जाने लगी।

घ)समरवेलः समरवेल का प्रचलन वर्ष 2000 से काफ़ी बढ़ा है।समरवेल एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसमें मशीन के माध्यम से ज़मीन में सीधे पाइप पहुँचाए जाते हैं। आज वर्तमान में समरवैलों का प्रचलन आ गया है। सभी खेतों में चार इंच से लेकर आठ इंच तक के समरवेल लगाए जा रहे हैं। इन समरवेल की क्षमता बेहद ज्यादा है जो सैकड़ों बीघा जमीन को कुछ ही घंटों में शिक्षित कर देती है।

प्ध्द्बमहाराष्ट्र राज्य में सिंचाई के संसाधनः महाराष्ट्र में स्वतंत्रता के पश्चात अनेक पानी के संसाधनों का उपयोग किया जाने लगा है।

क)नलकूपः महाराष्ट्र में कुओं के अंदर पम्प लगाए जाने का सिलसिला शुरू हो गया था। इंजन के द्वारा पंप से पानी निकाला जाता था। यह प्रक्रिया 1970–1980 के दशक में शुरू हो चुकी थी।

।)समरवैलः महाराष्ट्र में समरवेल कॉल लगने का सिलसिला पिछले 20 सालों से अधिक हुआ है। महाराष्ट्र की पथरीली जमीन होने के कारण तालुका हवेली में आज समरवेल की भरमार है।

ग)नदियाँः नदियों से खेतों की सिंचाई पिछले 15 सालों से शुरू हो गई है। तालुका हवेली के किसान आज नदियों से पांच पांच किलोमीटर दूर से पाइपलाइन लाकर खेतों की सिंचाई कर रहे हैं।

घ)कैनल (पाइपलाइन)ः महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्रों में कैनल के द्वारा डेम और नदियों से पानी उन क्षेत्रों में पहुंचाया जा रहा है जहाँ पानी की कमी है।

आज़ादी काल व लोकतंत्र काल का प्रभाव (वर्ष 1961 से वर्ष 2020 तक)ः भारत की आजादी के वर्ष 1960 से लेकर 2020 तक आज खेती की सिंचाई के लिए अनेक

संसाधन उपलब्ध हैं। आज किसान खेतों की सिंचाई के लिए अपने संसाधनों के द्वारा तैयार हो गया है। आज अनेक प्रकार के सिंचाई के संसाधन किसानों के पास उपलब्ध है। सिंचाई के संसाधनों में देश की चकबंदी के बाद काफी बढ़ोतरी हुई है। आज इन दोनों क्षेत्रों में पानी की कोई कमी नहीं है।

निष्कर्षःपश्चिम उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के इन दोनों क्षेत्रों का आकलन करने पर यह मालूम होता है कि देश की आजादी से पहले सिंचाई के कुछ भी साधन किसानों के पास उपलब्ध नहीं थे। अंग्रेजों का प्रभाव 1960 तक खेती में दिखाई दिया है। 1960 के बाद भारत की सरकार के द्वारा चकबंदी व्यवस्था की गई। चकबंदी व्यवस्था के बाद खेतों में सिंचाई की व्यवस्था ने विकास करना शुरू कर दिया। आज हमारे इन दोनों क्षेत्रों में सिंचाई के लिए सभी साधन उपलब्ध है। देश की आजादी के बाद यानी 1960 के बाद बिजली व्यवस्था ने भी ज़ोर पकड़ा। आज लगभग सभी किसानों के पास बिजली व्यवस्था के द्वारा सिंचाई की जाती है।

संदर्भः 1.https://www.agriculturestudyy.com/2019/10/irrigation.html?m=1
2. 01-Jul-2017AAAhttps://www.kisansuvidha.com ›
3-https://www.rekhtadictionary.com/meaning-of-bokaa?lang=hi
4-एम डॉट जागरण डॉट कॉम।
5-https://m-hindi.indiawaterportal.org/content?slug=maugalakaalaina-karsaigata-takanaikai-vaisaisatataa-special-agricultural-techniques-used-during&type=content-type-page&id=53854&=1
6-साक्षात्कार (ग्रामीण लोगों के)।

14."रमणिका गुप्ता के साहित्य में अभिव्यक्त नारी चेतना"

—जिशुरानी चांगमाइ
एम.फिल शोधार्थी, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, असम

रमणिका गुप्ता हिन्दी साहित्य की अत्यंत सजग, सक्रिय, प्रभावशाली एवं प्रसिद्ध लेखिका रही है। हिन्दी साहित्य में शायद ही यह पहली ऐसी लेखिका रही है जो महिलाओं के प्रति किए गए अत्याचार, दलितों पर हो रहे शोषण, आदिवासियों पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध अत्यंत साहसिकता के साथ लड़ती है, तथा अपनी जीवन के अंतिम पर्याय तक अपना हौसला और जुनून बरकरार रख अपना संघर्ष जारी रखती हैं। रमणिका जी के साहित्य में आदिवासियों, दलितों के साथ ही साथ महिलाओं की मार्मिक समस्याओं को केंद्र में रखा गया है। आजकल के समाज में जैसे की महिलायें शिक्षित होने पर भी अपने को दोयम दर्जे का मानती है। शिक्षित होने के बावजूद भी जागरूकता का अभाव परिलक्षित होती दिखाई देती है, इस स्थिति में लेखिका अपनी लेखनी के द्वारा महिलाओं को अपने प्रति सजग एवं सक्रिय बनाने में प्रयासरत दिखाई देती है। उनके साहित्य में खास करके आदिवासी महिलाओं के शोषण की यथार्थ पूर्ण मार्मिक त्रासदी वर्णित हैं। उनका मकसद यह भी है कि ये महिलायें खुद अपने प्रति नजरिया बदले, इनमें आत्मसम्मान जगे, अपना नेतृत्व खुद करे, वे खुद उठे और परिवर्तन की मशाल अपनी हाथों से रोशन करे।

रमणिका गुप्ता के साहित्य में स्त्री अस्मिता की अनुगूँज बहुत ही प्रमुखता से उभरकर आया है। पंजाब में जन्म लेनेवाली यह लेखिका झारखंड के हजारीबाग अंचल में मजदूरों, दलितों तथा उन संघर्षरत आदिवासी महिलाओं की अधिकारों हेतु उनका आवाज बनती है। उनके चिंतन महिलाओं की सशक्तिकरण की एक अलग भावधारा विकसित करती है। अपनी प्रायः सभी रचनाओं में उन्होंने नारी चेतना को लेकर अपनी संवेदन शीलता को जाहीर करती हैं। उन्होंने प्रायः प्रत्येक रचनाओं में महिलाओं की संघर्षशीलता को खसकरके आदिवासी महिलाओं की जीवन त्रासदी अत्यंत सटीक, मार्मिक, तथा स्पष्ट रूप से उभारा हैं।

हिन्दी साहित्य के औजस्वी साहित्यकार तथा सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में रमणिका गुप्ता का नाम बहुत ही चर्चित हैं। रमणिका गुप्ता दलितों, आदिवासियों तथा खास करके महिलाओं के लिए एक मिशाल कायम करती नजर आती हैं। तीव्र संवेदनशील, साहसी, निडर एवं जिद्दी स्वभाव सम्पन्न यह लेखिका असहायों को अपना हक दिलाने हेतु कई लड़ाईयां लड़ती है और अंततः वे उस लड़ाई में जीत भी हासिल कर लेती है। उनके

रचनाओं को पढ़ते हुए उनके जीवन संघर्ष की तमाम हादसे के बारे में हमें पता चलता हैं। मजदूर वर्ग, आदिवासी, दलित तथा महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सजग एवं जागरूक बनाने के लिए वे दिन रात संघर्ष करती है। समाज में हाशिये पर जी रहे उन वंचित समूहों के लिए वे हमेशा चिंतित व कर्मशील दिखाई देती हैं।

लेखिका का मानना यह हैं कि **–"अपने परिवारों के लिए तो सभी लोग सब कुछ करते है जो दूसरों के लिए कुछ करे वही इंसान है।"**[1] रमणिका गुप्ता भी एक ऐसी लेखिका थी जो दलितों, आदिवासियों, महिलाओं को अपनी संघर्ष के द्वारा सही रास्ता चुनने में मदद करती थी। समाज में दबे कुचले वर्गों के लिए काम करके वे एक अलग ही संतुष्टि प्राप्त करती थी।

विद्रोह करने से पहले अपने मन में जिद्दी स्वभाव का उत्पन्न होना लाजमी हैं। रमणिका बहुत ही जिद्दी स्वभाव की थी जिस कारण वे क्रमानुसार विद्रोही भी बनती चली गई। विद्रोह की शुरुवात उनके जीवन को एक नया मोड़ प्रदान करती हैं। बचपन से ही उनके मन में प्रचलित परंपराओं के प्रति एक अलग प्रतिक्रियाँ जन्म लेती है। खासकरके महिलाओं को पारंपरिक रूप से जो भी बंधी बंधाई लीक से होकर गुजरना पड़ता हैं वे उसका साफ खिलाफ करती हैं। सामंती समाज में जन्म लेनेवाली रमणिका को भी उन सारी पारंपरिक मान्यताओं का सामना करना पड़ा परंतु वे इन सबके विरोध अपनी मर्जी चलाती थी। घर में जब लड़कियों को अपना मुह ढककर चलने के लिए बोला जाता है तो ये इसके विरोध में अपने माता पिता के साथ तर्क पर उतर आती थी। छुआछूत, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, लैंगिक भेदभाव आदि के विरोध में आवाज उठाती और अपना निर्णय खुद लेने में सामर्थ रखती थी।

सामाजिक व पारिवारिक पारंपरिक रूढ़ियों से नारी को दूर रख कर वे इनकी एक अलग परिभाषा का निर्माण करती हुई नजर आती है। महिलाओं को अपनी विश्वास के मुताबिक अपना निर्णय खुद लेने में साहस होनी चाहिए। लेखिका कहती है कि **"औरत को किसी निर्णय के लिए पति की इजाजत मांगना औरतों के अधिकार का हनन है। हाँ, आपस में राय की जा सकती है।"**[2] नारी केवल नारी नहीं बल्कि वे मनुष्य हैं, सामाजिक प्राणी है, जिसके लिए मनुष्य का दर्जा उन्हें देना जरूरी हैं। उन्होंने नारी को कभी भी दुर्वल नहीं माना और न ही कमजोर। उनकी रचनाओं में नारी दुर्वल नहीं है और न ही लाचार हैं, बल्कि वे अदम्य जीजीविषा सम्पन्न, विद्रोही एवं संघर्षशील है। वैसे तो समाज में आज भी नारी को दोयम दर्जे का माना जाता हैं हालाँकि काफी कुछ सुधार देखने को मिल

रही है परंतु प्रायः महिलायें आज भी दोयम दर्जे की स्थिति में ही जी रहे हैं। बिना अपराध के ही वे अपराध बोध की ग्रन्थि से गुजर रहे होते हैं, और जो अपराधी है वे मुक्त गगन के नीचे स्वच्छंद जीवन व्यतीत करते है। समाज की खोखली मानसिकता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते नारी की स्थिति इसप्रकार हीन से हीनतर होती जा रही हैं।

उन्होंने अपनी दो लघु उपन्यास 'सीता' और 'मौसी' में आदिवासी महिलाओं की संघर्षशीलता की कारुणिक चित्र खींचे है। आदिवासी महिलाओं की व्यथा कथा को चित्रित करते हुए उनके जीवन की विचित्र संघर्ष के बारें उन्होंने बहुत ही विस्तार पूर्वक चर्चा की हैं।

उनके उपन्यास 'सीता' में एक ऐसी नारी को प्रस्तुत की गई है जो प्राचीन परंपराओं से अलग अपना वजूद तैयार करती हैं। इस उपन्यास में सीता उस प्राचीनकालीन रामायण की सीता से भिन्न है। जो दिन रात परिश्रम करती है और अपनी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष करती है। रमणिका गुप्ता लिखती है– **"त्याग और तपस्या की प्रतीक सीता जब रामायण के युग से निकलकर आज के संघर्षों में भूख से जूझती हुई जवान होती है तो वह सर्वहारा वर्ग के लिए आधुनिक रावनों से लड़ती है।"**[3] ज्यादातर आदिवासी महिलाएँ गैर आदिवासियों के द्वारा शोषित एवं प्रतारित होती आ रही है। 'सीता' भी इसका अपवाद नहीं है। चूंकि आदिवासी समाज में महिलाओं को अपने जीवन साथी चुनने की आजादी होती है तो सीता अपनी पति की मृत्यु के बाद एक मुसलमान व्यक्ति से अपना संबंध स्थापित कर लेती हैं। सीता के पति भी उससे बहुत प्रेम करता है परंतु दिन ढलते ढलते उसका प्रेम समाप्त हो जाता है और वे दूसरी शादी कर लेता है। ऐसे में सीता बहुत ही अकेली पड़ जाती है परंतु वे अपने को हारा हुआ नहीं मानते है और न ही संघर्ष करना छोड़ देते है। इन सबके बावजूद भी वे खदानों में काम करती है और अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना सीख जाती है।

रमणिका जी लिखती है **–"अपनी अस्मिता बचाने हेतु स्त्रियाँ– विशेषकर आदिवासी स्त्रियाँ जोखिम पर जोखिम उठा कर जूझ रही थी– कहीं व्यक्तिगत स्तर पर तो कहीं सामूहिक स्तर पर या संगठन के माध्यम से तो कहीं अपना नियति मानकर सह रही थी।"**[4] 'मौसी' उपन्यास में मौसी एक ऐसी नायिका के रूप में उभरती है जो अपनी ही परिवारों से प्रतारित एवं शोषित है। पुरुषप्रधान समाज में वे अपने आपको सुरक्षित नहीं रख पाती है। 'मौसी' अपने विवाह के सपने तो देख रहे थे परंतु माता पिता की मृत्यु के बाद घर का सम्पूर्ण देखभाल उन्हें ही करना पड़ता है जिसके चलते उनकी शादी नहीं हो पाती है। माँ

बाप की मृत्यु के बाद अनाथ, असहाय मौसी अपना सम्पूर्ण जीवन भैया और भाभी के लिए समर्पित कर देती है। दिन रात भैया भाभी की सेवा में लगी रहती है। परंतु मौसी के जीवन की ओर किसी का ध्यान नही जाता।

'मौसी' को अपने जीवन में तीन अलग अलग व्यक्तियों से प्रेम होती है परंतु वे सभी से धोखा खा जाती है। एक भी पुरुष मौसी की भावनाओं को उनकी इच्छाओं को समझने की कोशिश नहीं की उन सबने मौसी को केवल स्वार्थ पूर्ति करने का साधन माना। पुरुष वर्ग की निकृष्ट मानसिकता एवं गलत प्रवृत्तियों का शिकार बनती मौसी अंततः अपनी भूल समझ पाती हैं। अंत में वे अकेले रहना सीख लेती है और अपना रास्ता स्वयं चुनती है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' और 'आपहुदरी' में उन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के साथ होनेवाली तमाम तरह की समस्याओं के बारे में उल्लेख किया है। वेश्याओं की समस्या, आदिवासी कामगार महिलाओं की समस्या, कोयला खदान में कर्मरत महिलाओं की शोषित पीड़ित कहानी का भी जिक्र किया है। उन्होंने अपनी सारी रचनाओं में नारी की मुकावले की कथा को स्थान दिया हैं। रमणिका जी अपनी संघर्ष के द्वारा नारी चिंतन को एक नया आयाम प्रदान करती हैं। उनके साहित्य में नारी पात्र अपनी जीवन में यातनाओं को झेलते हुए अंततः अपना हक हासील कर ही लेती हैं। यथार्थ कहानी पर आधारित उनके उपन्यास और कहानी को पढ़ते हुए नारी जीवन की गहरी पीड़ाओं को महसूस कर सकते है।

लेखिका स्वयंसिद्धा होने में विश्वास रखती है और अन्य महिलाओं को भी अपने ऊपर निर्भरशील होने के लिए प्रेरणा देती है। रमणिका जी ने महिलाओं को इस स्थिति तक समर्थ व सक्षम बनाया जहाँ वे अपनी आर्थिक सहायता के लिए किसी से हाथ न माँगनी पड़े। समाज में आज भी महिलाएँ अपनी आर्थिक मजबूरी के कारण शारीरिक – मानसिक यातनाएँ झेलती है। समाज में ऐसी महिलाओं को उनकी हौसला और जुनून को कायम रखने के लिए वे भारत सेवक समाज के तहत कई संस्थान खोल दिए थे। निम्न वर्ग की गृहिनियाँ तथा ग्रामीण महिलाओं की रोजगार हेतु 'महिला को आपरेटिव' के तहत सिलाई प्रशिक्षण केंद्र भी खोल दिए थे ताकि महिलाएँ अपनी आर्थिक पक्ष को मजबूत रख पाएं। इसके उपरांत महिलाओं को जागरूक करने हेतु कई सारे काम अपने हाथ लिए और बहुत ही गंभीर रूप से उसको कार्यान्वित करने में लगे रहे।

निष्कर्षः– रमणिका गुप्ता अपनी संघर्षशीलता के जरिए महिलाओं को जागरूक बनाने का हर संभव प्रयास किए। उनके समस्त साहित्य उनकी उदात्व चेतन्य व्यक्तित्व का परिचायक

है। स्त्री के प्रति उनकी क्रियाशीलता तथा सक्रियता को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। नारी के लिए चिंतित यह लेखिका हमेशा महिलाओं को प्रशिक्षित तथा आत्मनिर्भरशील बनाने की कोशिश में लगी रहती है। रमणिका गुप्ता समाज में फैली भ्रष्टाचार के प्रति, पूँजीपतियों तथा शोषकों के खिलाफ जितनी क्रूर एवं विद्रोही दिखाई देती है उतनी ही वंचित समूहों के प्रति अत्यंत संवेदनशील, सशक्त व निष्ठावान भी होती है। ऐसी परम निष्ठावान एवं प्रतिबद्ध लेखिका का संसार से विदा लेना हिन्दी साहित्य के लिए मानो अपार क्षति है परंतु उनकी कर्मराजी के द्वारा वे आज भी सभी के अंतर्मन पर विराजमान हैं और वे सदा के लिए अमर हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. रमणिका गुप्ता, हादसे, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005] पृष्ठ संख्या–27
2. वहीं , पृष्ठ –26
3. रमणिका गुप्ता, 'सीता–मौसी', ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–05
4. वहीं, पृष्ठ –01

15.आदिवासी समाज जीवन की समस्या

–डॉ.भगवान रामकिशन कदम
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय,औराद शहाजनी

कई सदियों से हषिए पर रहा आदिवासी समाज आज नक्सलवाद, ऑपरेशन 'उलगुलान', 'ग्रिनहंट' की त्रासदी के कारण संवेदनशील रचनाकारों, नेताओं, समाजसेवियों के बीच चर्चा और विमर्श का प्रमुख केंद्र बन गया है। यूँ तो आदिवासियों की हत्या करने, शोषण करने और खदेड़ने का कार्य अरसो–बरसों से जारी है। उन्हें एक सोची समझी साजिश के साथ दुर्गम जंगलों, पहाड़ों में सभ्यता से दूर आदिम जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया। यहाँ के तथाकथित प्रस्थापितों ने आदिवासियों पर अपना आतंक बनाए रखने के लिए न उनकी संस्कृति को विकसित होने दिया और न ही उन्हें मूल धारा में शामिल किया बल्कि इस समाज को दैत्य, राक्षस करार देकर उसके इतिहास और संस्कृति को बदनाम किया, फलस्वरूप इस समाज की सोच, विचार, भाषा, संस्कृति का विकास रूक गया और सभ्यता के दौड़ में वे पीछे पड़ते गये। यह लोग अन्य दुनिया से बेखबर, दुर्गम जंगलों, गुफाओं में अनेक मुसीबतों का सामना अपने कठिन परिश्रम और साहस के साथ कर उन्होंने अपना अस्तित्व ही नहीं बचाया तो अस्मितता, आस्था, परंपरा और संस्कृति को भी कायम रखकर अपनी विषिश्ट पहचान बनाए रखी। इस प्रकार प्रकृति की गोद में पैदा हुआ, पला और जवान हुआ यह आदिवासी प्रकृति की तरह ही सहनशीलता की सीमा तक अत्याचारों को सहने की क्षमता रखता है और उसके समाप्त होते ही प्रकृति की तरह ही ज्वालामुखी और दावाग्नि–सा रौद्र रूप धारण कर अन्यायी अत्याचारियों पर अपना पूरा क्रोध, असंतोष, तीरों, कुल्हाडियों, भालों और गुलेलों के पथरों से प्रतिकार जाहिर करता संघर्ष पर उतरता हैं।

सामान्यतः भारतीय आदिवासी समाज की समस्याएँ दो प्रकार की है। प्रथम प्रकार की समस्या स्वयं आदिवासियों की जीवन पध्दति से निर्माण हुई है, तो दूसरे प्रकार की समस्या आदिवासी समाज के संपर्क में अन्य समाज तथा संस्कृति के आने से निर्माण हुई हैं, इसीलिए आदिवासी समाज की समस्याएँ जितनी आसान एवं सहज है, ऐसा लगता है उतनी वे है नहीं अर्थात आदिवासियों की समस्याओं को पूर्णतः समझने के लिए उसका अध्ययन निम्न रूप से करना होगा।

सामाजिक समस्या :

ग्रामीण तथा नागरी समाज के संपर्क में आने से अलिप्त रहनेवाले आदिवासियों के सामाजिक जीवन में प्राकृत जीवन प्रणाली, भाषा, व्यसनाधीनता, वेष्यावृत्ति, गुप्तरोग, बालविवाह, दहेज प्रथा, समाज की अपेक्षा व्यक्ति की बढ़ती प्रतिष्ठा, मूल्य संक्रमण जैसी अनेक समस्याएँ निर्माण हुई है। आधुनिक समाज के संपर्क में आने से इस समाज में व्याप्त सामुहिकता की भावना समाप्त होकर, व्यक्तिवादी भावना बढ़ रही है। जिसके कारण इस समाज की सामाजिक एकता नश्ट होकर व्यक्तिगत राग–द्वेष निर्माण हो रहा है, परिणामतः अनेक नए प्रश्न इस समाज के सामने निर्माण हो रहे हैं। आद्यौगिक क्षेत्र में काम करनेवाली आदिवासी महिलाओं में वेष्या व्यवसाय पनपने लगा है, जिसके कारण इस समाज का सामाजिक स्वास्थ्य खतरें में आया हैं। एड्स जैसे गुप्त रोगों से आदिवासी स्त्री–पुरूष पीड़ित हो रहे है। अन्य समाज की अनिष्ट प्रथा, बालविवाह, दहेज प्रथा, अपराध, चोरी, डकैती, भीख माँगना, शराब पीना, उच्च–नीचता की भावना आदिवासियों में प्रवेश करने लगी है।

संथाल, मुंडा, ओराँव, लेप्चा, जारवा, आदि आदिवासी आज भी मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान से भी वंचित है। शिक्षा और स्वास्थ्य से यह इतने दूर है कि, कुछ कहने नहीं बनता। निरक्षरता के कारण इन्हें जादू, डायन, भूत–प्रेत संबंधी घनिष्ट विष्वास है। आदिवासी महिला का जीवन तो नरक के समान है। उसका जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक स्तरों पर शारिरीक, मानसिक और लैंगिक शोषण होता है। शिक्षित और अशिक्षित आदिवासी आज एक दूसरें को शक की नज़र से देखते हैं। परिणामतः आदिवासी समाज में आज व्यापक स्तर पर विघटन की प्रक्रिया हो रही हैं। हर आदिवासी समूह की सामाजिक समस्या अलग–अलग है। यह समाज अज्ञान, अंधकार, अंधविश्वास और कर्मकांड़ में भी लिप्त दिखाई देता है। नक्सलवाद और विस्थापन की समस्या ने तो आदिवासी समाज के अस्तित्व को ही खतरें में डाला हैं।

आर्थिक समस्या :

भारत के विभिन्न प्रदेशों में रहनेवाले अधिकतर आदिवासियों के जीविका का साधन जंगल, जमींन एवं मजदूरी है। अत्यधिक दरिद्रता यह उनकी प्रमुख आर्थिक समस्या है, जिसके चलते आदिवासियों को भरपेट खाना भी नहीं मिलता। जंगली फल, कंदमूल खाकर ही वे अपना गुजर–बसर करते हैं। भारत में अस्सी प्रतिशत आदिवासियों के पास जमींन नहीं है, सरकारी विकास योजना भी उन तक पहूँचती नहीं है अतः भूख से बेहाल आदिवासी नक्सलवादियों के जाल में अपने–आप फँस जाते हैं। पूर्णतः जंगलों पर निर्भर रहनेवाले इस

समाज को पहले अंग्रेज सरकार ने और सन 1952 में भारतीय सरकार ने 'राष्ट्रीय वननीति' के अंतर्गत कानून बनाकर उनका जंगल पर का अधिकार छीन लिया परंतु उनको पर्यायी अर्थार्जन का साधन उपलब्ध नही करा दिया। परिणामतः वनअधिकारी, ठेकेदार, पुलिस आदिवासियों का आर्थिक, मानसिक और लैंगिक शोषण करने लगे। वस्तुविनिमय पद्धति की प्रधानता वाले इस समाज को रूपये की अर्थनीति ने अनेक सवालों से घेर रखा है।

अपनी उत्सवधर्मिता और अत्यधिक व्यसनाधीनता के कारण आदिवासियों में ऋणग्रस्तता अधिक दिखाई देती हैं, इनके अज्ञानता का लाभ साहूकार, पूँजीपति लोग उठाकर उन पर कई प्रकार की शर्ते लादते रहते हैं। उनके शोषण से वे किसान से बंधुआ मजदूर बन जाते हैं। इतना ही नहीं तो यह साहूकार लोग अपने पैसे के बदले में उनके घर, जमींन, पशु आदि के साथ स्त्रियों को भी रिहान के रूप में अपने पास रख लेते हैं। आर्थिक विवषता से तंग आकर इस समाज की महिलाएँ वेश्या व्यवसाय की ओर आकर्शित हो रही है, जिसके कारण अनेक समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। औद्योगिक क्षेत्र में निवास करनेवाले संथाल जैसे आदिवासियों की अलग समस्याएँ हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर उनकी जमींन छीन ली जाती हैं, उसका योग्य मुआवजा भी उनको नहीं मिलता। चाय, बगीचों कोयला खदान आदि में मजदूरी करनेवालों का ठेकेदार आर्थिक षोशण करते हैं इस संदर्भ में डी. एन. मजुमदार ठीक लिखते हैं कि, ''आदिवासी गुरासारखे काम करतात व त्यांना वागणुक देखिल गुरांसारखीच दिली जाते. एखाद्या पशु प्रमाणे ते प्रदर्शनीय ठरतात. पशु प्रमाणेच त्यांना नियंत्रित ही केले जाते.''[1] देश में नए–नए बसनेवाले लोह, पोलाद, सिमेंट, बीजलीघर, बांध आदि योजना से आज तक लाखों आदिवासियों को विस्थापित होना पड़ा हैं, उनका उचित पुनर्वसन नहीं किया गया है। इस प्रकार दरिद्रता, कुपोषण, बेकारी, ऋणग्रस्तता, बंधुआ मजदूरी, घटते जंगल, विस्थापन आदि आदिवासियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ हैं।

राजनीतिक समस्या :

आदिवासी समाज की अपनी एक विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर ब्रिटिश काल तक अस्तित्व में थी। आदिवासियों की सभी समस्याओं को यहीं पर ही सुलझाया जाता था। हर जनजाति का प्रतिनिधि या नेता इस व्यवस्था का सदस्य रहता था किंतु स्वातंत्रोत्तर काल में इनकी राजकीय व्यवस्था का न्हास हो रहा है। भारतीय संविधान द्वारा प्रयुक्त चुनावी प्रक्रिया अज्ञानी आदिवासियों के लिए पूर्णतः नवीन है, जिसमें केवल रईसों, पूँजीपतियों और गुंड़ों का बोलबाला है, दूसरी ओर इस समाज को स्वयं के अधिकार,

कर्तव्य और वोट का मूल्य ज्ञात नहीं है जिसका लाभ उठाकर ऐसे लोग उनके अमूल्य वोट शराब आदि के बदले खरिद लेते हैं। परिणामतः इस समाज जीवन में जो परिवर्तन आना चाहिए था, वह नहीं आया। अपनी अविकसित परिस्थिति से तंग होकर आदिवासियों की नई पीढ़ी में विद्रोह की भावना तीव्र से तीव्रत्तर होती जा रही है। आदिवासी युवक–युवतियों के इस असंतोष का लाभ नक्सलवादी लेकर जंगली प्रदेशों में एक समांतर सरकार प्रस्थापित कर रहे हैं। उचित नेतृत्व के अभाव में आदिवासी बहुल प्रदेशों में भी आदिवासी आज तक सत्ता से दूर ही रहा हैं। सरकार आदिवासियों के विकास पर ध्यान देने की अपेक्षा नक्सलवाद को समाप्त करने का प्रयास कर रही है, जिससे यह संघर्ष अधिक तीव्र हो रहा है।

धार्मिक समस्या :

आदिवासी समाज का अपना एक विशिष्ट प्राकृत धर्म है। जैसे उराँव का 'सरणा धर्म' है। इनकी धार्मिक श्रद्धा में सर्वात्मवाद, जीववाद, बहुदेवतावाद, एकेष्वरवाद, जादू–टोना, प्रेतात्मा आदि का समावेष होता हैं। धर्म ही आदिवासी समाज के सामाजिक नियंत्रण का प्रभावी साधन है किंतु आदिवासी समाज की प्रमुख धार्मिक समस्या धर्मांतर की हैं। हजारों वर्शों से आदिवासियों को अपना धार्मिक अस्तित्व बचाने के लिए आर्य, ईसाई और मुसलमान धर्म से संघर्श करना पड़ा है, जो आज भी जारी है। इस्लामी आक्रमणकारियों ने तलवार के बल पर उनको मुसलमान बनाया तो "मुसलमान सूफियों ने दलितों के साथ आदिवासी क्षेत्रों में समता का प्रचार कर उनके खान–पान में सम्मिलित होकर उन्हें इस्लाम का अनुयायी बनाया हैं।"[2] भारत में आए ईसाईयों के सेवाभाव और मानवतावाद से प्रभावित होकर और हिंदू धर्म के राजाओं की मनमानी जमींदार के अत्याचार, शोषण, बेठबिगारी और आतंक से तंग आकर लाखों की संख्या में आदिवासी ईसाई बने उसमें भी अधिकतर आदिवासियों को अंग्रेजों ने छल और बल से ईसाई बनाया। आज आदिवासी क्षेत्र में अनेक हिंदू संघटन, धर्माचारी, मठाधिश, 'आदिवासियों की घर वापसी' के नाम पर उन्हें हिंदू बना रहे हैं, जो आदिवासियों की प्रमुख धार्मिक समस्या है किंतु हजारों सालों से धर्मांतर की प्रक्रिया में रहते हुए भी आदिवासियों के जीवन में कोई अंतर नहीं आया हैं, हाँ इतना जरूर हुआ है कि वे अपने मूल समूह से अलग हो गए हैं। धर्मांतर करनेवालों को उनका मूल समाज उपेक्षा के भाव से देखता है, जिससे आदिवासी समाज में सामुहिकता की भावना का अभाव, बढ़ता सामाजिक, धार्मिक तनाव जैसी अनेक समस्याएँ निर्माण हुई है।

सांस्कृतिक समस्या :

सभ्य समाज के संपर्क में आने से आदिवासी जीवन में अनेक सांस्कृतिक समस्याएँ निर्माण हुई है। ''नयी आदतें और अपरिचित जीवन नीति ग्रहण करने पर वे अपने को जनजाति बंधुओं से पृथक हुआ पाते हैं, लेकिन उन्हें उन लोगों के बराबर स्वीकार नहीं किया जाता जिनकी जीवन रीति का वह अनुकरण करते या उसे ग्रहण करते हैं।''[3] प्रगत समाज के संपर्क से आदिवासी समाज में रहन–सहन, वेषभूशा, आहार, नीति मूल्य आदि में परिवर्तन आने लगा है, परिणामतः आदिवासियों की जीवन पद्धति, भाषा और लोककलाओं का ऱ्हास हो रहा है। आदिवासियों के सामाजिक संघठन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करनेवाली उनकी संस्कृति एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था थी। इस समाज की एक सांस्कृतिक पहचान थी किंतु ख्रिश्चन, मुसलमान और हिंदू समाज के संपर्क से इसका व्यापक स्तर पर आज पतन हो रहा है तथा इसमें अनिष्ट प्रथाओं का समावेष होने से आदिवासी समाज की पारंपारिक, सांस्कृतिक विरासत ही आज खतरें में आ गई है। अन्य भाषा–भाषी समाज के संपर्क से तथा शिक्षा पद्धति के कारण आज आदिवासी अपनी मूल मातृभाषा से दूर जा रहा है। ''बिहार में मुंडा भाषाओं का स्थान धीरे–धीरे बिहारी बोलियाँ ले रही है और ऐसी जनजातियों की कमी नहीं है, जो बंगला भाषा समझती और बोलती है... बिहार के संथालों ने तो बंगला को अपना लिया है।''[4] इस प्रकार ख्रिचन धर्म स्वीकारने के कारण अनेक आदिवासी अंग्रेजी भाषी बने हैं। आदिवासियों की नई पीढ़ी का सुशिक्षित युवक वर्ग आज अपनी परंपरागत कला, चित्रकारी, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, बोलीभाषा, वेषभूषा आदि को भूलता जा रहा है, जो एक चिंता का विषय है। आज आदिवासी इलाकें में दिन–ब–दिन बढ़ते औद्योगिकरण, बांधयोजना आदि से विस्थापन एवं अन्य समाज के संपर्क से अपनी पारंपारिक विषुध्द सांस्कृतिक परंपराएँ जीवित रखना आदिवासियों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौति बन गयी है क्योंकि ऐसी जगह पर एक बहुमिश्रित संस्कृति पनप रही है, शिक्षित आदिवासियों में पारंपारिक आदिवासी धर्म जादू, टोटका, मेले आदि पर की श्रद्धा कम हो रही है। परिणामतः उत्सव और उत्साह प्रिय आदिवासी समाज आज नाउम्मीद और दुर्बल बनता जा रहा है, उनकी एकता की भावना नष्ट होकर परस्पर ईर्ष्या भाव बढ़ रहा है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्या :

आदिवासियों की स्वास्थ विषयक प्रमुख समस्या पोषण युक्त भरपेट अन्न का अभाव है। अधिकतर आदिवासी अन्न की खोज में जंगल–जंगल भटकते रहते हैं। दिन–ब–दिन कम होते जंगल और शिकार पर कानूनी प्रतिबंध के कारण अब उन्हें केवल जंगल से मिलनेवाले फल, कंदमूल आदि पर ही गुजारा करना पड़ता है परिणामतः अपने दरिद्रता और कुपोषण

के कारण वे अनेक रोगों का शिकार हो जाते हैं। आदिवासी बहुल इलाके दुर्गम स्थानों पर होने के कारण वहाँ स्वास्थ्य सुविधा केंद्र का अभाव होता है। उसमें भी अज्ञान, अंधविष्वास के कारण यह लोग अस्पताल में आने तथा डॉक्टर से घबराते हैं परिणामतः अनेक आदिवासी उचित इलाज के अभाव में मर जाते हैं। आदिवासी समाज प्रमुख रूप से रोटी, कपड़ा और मकान से ही दूर है स्वास्थ्य और शिक्षा से अभी–अभी उनका परिचय हो रहा है। इनके स्वास्थ्य विषयक समस्या का मूल कारण उनकी अशिक्षा, व्यसनाधीनता है, साथ ही शुद्ध और स्वच्छ पीने के पानी का अभाव होने से यह लोग टायॅफाईड, कॉलरा जैसी भयंकर बीमारी से ग्रस्त होते हैं। अस्वच्छता के कारण वे त्वचा रोग तथा गुप्त रोगों के शिकार होते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में निवास करनेवाले आदिवासी वहाँ के भयंकर प्रदूषण के कारण सर्दी, खाँसी, दमा, टी. बी. तथा फेफ़ड़े के रोगी बन जाते हैं। ''छोटानागपुर में खानों की कंपनियों ने पीछले दषकों में आदिवासियों के श्रम से असाधारण मुनाफा कमाया है किंतु श्रमिकों के लिए उन्होंने एक कुएँ या स्कूल तक का निर्माण नही किया। डॉक्टरी सहायता, सफाई और स्वास्थ्य सेवाओं का तो जिक्र ही क्या ?।''[5] इस प्रकार कुपोषण, दूषित पानी, शारीरिक अस्वच्छता, औद्योगिक प्रदूषण, अंधविश्वास, अज्ञान और आरोग्य सुविधाओं का अभाव के कारण आदिवासी समाज में अनेक में बिमारियों का प्रचलन बढ़ रहा है परिणामतः उनका स्वास्थ्य खतरें में आने लगा। उपरोक्त सभी समस्याएँ आदिवासी समाज की है, वे केवल आदिवासी पुरूषों की या महिलाओं की समस्या नहीं है तो कुल आदिवासी समाज ही प्रगत समाज से अनेक बिंदुओं पर हजारों साल पीछड़ा हुआ है, इसीलिए आदिवासी स्त्री या पुरूष ऐसा विचार यहाँ पर अपेक्षित नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार तथा राज्य सरकार अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व के अनुरूप आदिवासी समाज के विकास और उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रयास कर रहे है आवष्यकता हैं यह योजनाएँ पूरी तरह उन तक पहुँचाने की। इसके साथ ही आदिम जाति सेवक संघ, वनवासी कल्याण आश्रम, भील सेवा मंडल, प्रकाश आमटे, अभय बंग, स्वामी अग्निवेश, मेधा पाटकर, रमणिका गुप्ता, के. आर. शहा जैसे अनेक आदिवासी तथा गैर आदिवासी स्वयंसेवी संस्थान–व्यक्ति आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक उन्नति के लिए कार्यरत है, जिससे आदिवासियों का यथायोग्य विकास होकर वह राष्ट्र की मुख्य धारा में आने की आशा की जा सकती है।

संदर्भ सूची–

1 डॉ. डी. एम. मजुमदार/टी. एन. मदन, सामाजिक मानववंषषास्त्र का परिचय, पृ.सं. 174

2 सं. के. आर. षहा, पत्रिका मासिक आदिवासी सत्ता, जुलाई 2010 पृ.सं., 19

3 डॉ. डी. एन. मजुमदार, भारत की जनसंस्कृति, पृ.सं. 115

4वही, पृ.सं. 110

5 वही, पृ.सं. 122

16.शैलेश मटियानी कृत 'नागवल्लरी' उपन्यास में दलित चेतना

—प्रा.कल्याण शिवाजीराव पाटील
के.आर. एम. महिला महाविद्यालय,नांदेड.

शैलेश मटियानी कृत नागवल्लरी उपन्यास में उत्तराखंड के गॉवों के दलित परिवेश को लेखक ने चित्रित किया है। उसमें भोगांव नामक कस्बे के चमार, शिल्पकार, बाल्मीकि आदि वर्ग के नवयुवक यह तय करते हैं कि आगे से वे लोग भूखें मर जाएंगे परन्तु ऐसे गर्हित कार्यों को न करेंगे जिनके कारण उन्हें शूद्र समझा जाता हैं। फलतः वे मरे ढोर का शिकार खाना बन्द कर देते हैं तथा मरे ढोर को खींचकर गॉव के बाहर ले जाने के कार्य को भी बन्द कर देते हैं। गॉव के एक पंडित के यहॉ भैंस मर जाती है तब बिरादरी द्वारा लिए गये निर्णय के कारण कोई भी चमार उसे उठाने के लिए आगे नहीं आता। गॉव में अभी कुछ पुराने विचार के वृध्द हैं जो यह कार्य करना चाहते हैं परन्तु बिरादरी के डर के कारण वे भी आगे नहीं आते। डिगरराम नामक एक वयोवृध्द व्यक्ति अन्ततः तैयार होता है और अन्धेरा होने पर चुपचाप भैंस को बाहर ढा ले जाने का अपना तथाकथित कर्तव्य निभाता है परन्तु उसी में वह दम तोड़ देता है। यहॉ भोगॉव के दलित वर्ग के नवयुवकों की जो चेतना है उसे हम 'दलित चेतना' का नाम दे सकते हैं।

'नागवल्लरी' शेलेश मटियानी का वह उपन्यास है जिसमें कुमाउँ के ग्रामीण अंचल के दलित जीवन का सांगोपांग चित्रण मिलता है। लेखक ने पहले 'सर्पगंधा' नामक उपन्यास लिखा था, उसका परिवर्तित और संशोधित संस्करण ही 'नागवल्लरी' है। हमारे समाज में डोम, अछूत, भंगी, चमार आदि जातियों के प्रति एक घोर अवमानना और प्रताड़ना के इन बर्बर प्रतीकों का सिलसिला इतिहास में कब से प्रारंभ हुआ यह एक खोज का विषय है। 'नागवल्लरी' में इसके कतिपय पक्षों को उजागर करने का प्रयत्न लेखक ने किया है। इसमें लेखक ने अपने दृष्टिकोण से यह बताने का प्रयत्न किया है कि गाँधीजी का हरिजन ''सत्ता की राजनीति के दुश्चक्रों में फँसता हुआ राजनीतिक सौदेबाजियों और इस प्रकार राजनीतिक इस्तेमाल की वस्तु बन गया है। संवेदना की जगह राजनैतिक तात्कालिक लाभ प्रणाली से हरिजन समस्या को हल कर दिखाने की कूटनीति घाव को नासूर बनाती गई है। 'नागवल्लरी' इस त्रासदी का एक छोटा सा दृष्टान्त है।''1

स्वातं0योत्त्र भारतीय लेखक वैयक्तिक कला के पक्षधर होते गए हैं। कहीं लोग उन्हें प्रचारक न मान बैठें इस भय से वे हमारी समसामायिक समस्याओं से कतराते हैं। किंन्तु लेखक के पास अपयश को पचाने की भी शक्ति होनी चाहिए । जब हमारा समाज व

देश अनेक समस्याओं की विभीषिका से गुजर रहा हैं, तब उसके प्रति लेखक की उदासीनता स्वस्थता का परिचायक नहीं है। नोबल पुरस्कार विजेता चैक कवि जारोस्लाव सैईफर्त के इन शब्दों का उललेख यहॉ अप्रासंगिक न होगा–"यदि सामान्य मनुष्य ऐसे समय में मौन रहता तो उसमें उसकी कोई योजना हो सकती है, किन्तु ऐसे समय में यदि लेखक मौन रहता है, तो वह झूठ बोल रहा है।"2

अपने युग–सत्यों से जूझना भी लेखक का एक बहुत बड़ा दायित्व है, जिसका यत्किंचित पालन लेखक ने इस उपन्यास में किया है। उपन्यास के केन्द्र में हैं रायछीना कस्बे के भोगॉव नामक गॉव के कृष्णा मास्टर। जाति से शूद्र पर कर्म ब्राह्मण कृष्णा मास्टर प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। लेखक के चिंतन व विचारों का पल्लवन इनके द्वारा हुआ है। मलयालम के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार एम.टी. नायर कहते है।–"द प्रिलिमिनरी ट्रस्ट ऑफ ए राइटर इज़ टु मेरिमेइन ए राइटर, आई डू नाट प्रीच इन माय नोवेल्स।"3 परंतु इतना तो है ही कि लेखक ऐसे पात्रों का निर्वाह कर सकता है और उनके द्वारा अभीष्ट चिंतन का पथ प्रशस्त कर सकता है। कृष्णा मास्टर एक ऐसा ही पात्र है।

हरिरामजी उनके बारे में बताते हुए कहते है–"महानुभावों हाथी के पॉव में सबका पॉव कहा गया है। किसन हमारी वाचा है। प्रयाग की धरती से आया यह ज्ञान–कुंभ हमारी बहुत बड़ी धरोहर है। हमारे भोगाँव के कई बड़े–बड़े अफसर हैं। सीताराम जी के जँवाई, तिलकरामजी अभी हाल तक यहीं डी.एम. थे। और भी बहुत से छोटे–बड़े अफसर हैं, धन–संपदा वाले हैं.. मगर महानुभावों, कोई बाहर का आया हुआ अगर मुझसे यह पूछेगा कि इस गॉव की संपदा क्या है, तो मेरे मुँह से यही निकलेगा– किसन राम।"4

कृष्णा मास्टर के प्रभावशाली व्यक्तित्व, विद्वता एवं चरित्र से आकर्षित होकर विधवा ठकुराइन गाय़त्री देवी उनसे विवाह तो कर लेती है, परंतु वह उनके समूचे परिवेश को नहीं अपना पाती। तिलकराम जैसे 'सवर्ण' हरिजनों की भॉति वह भी, 'डूमियोल' से घिनाती है। गरीबी और गंदगी–बाहय और आंतरिक–का चोली–दामन का साथ होता है। चूँकि डोम, शूद्र प्रभृति जाति के लोग अत्यंत गरीब अवस्था में सहस्त्राधिक वर्षों से रहते आये हैं, अतः उनके कुछ जातिगत संस्कार बने हुए हैं। गंदगी भी उनके संस्कार का एक अंग है। गायत्री देवी की घिन का आधार यही है। गायत्री देवी द्वारा बरती जाती छुआछूत के कारण स्वयं कृष्णा मास्टर को भी लांछित होना पड़ता है। एक स्थान पर सेवाराम कहता है।–"जो औरत हम शिल्पकारों की बिरादरी में शामिल होकर भी हमारे हाथों का छुआ

खाने को तैयार नहीं वह ठकुरानी साहिबा नहीं, ब्राम्हणी साहिबा हो– ऐसी हरिजन–विरोधी औरत के हाथों का हम भी नहीं खा सकते।''5

कृष्णा मास्टर उपन्यास का एक आदर्शवादी चरित्र है। वह सरकार द्वारा प्रबोधित अनुदानजीवी परंपरा, आरक्षण तथा 'हरिजन कोटा' आदि के विरोधी हैं। ''वे सोचते हैं कि हरिजनों को अपने परिश्रम तथा स्वाध्याय एवं अथक अध्यवसाय से आगे आना चाहिए । वाल्मीकि उनके आदर्श हैं। हरिजनों के उद्धार का मार्ग उन्हें वाचा जगजीवनराम नहीं, वाचा आम्बेडकर सही प्रतीत होता है।''6

उनके अनुसार आज हामारे देश की जो हालत है, हमारे समाज में जो विद्वेष, घृणा आदि को माहौल बढ़ता जा रहा है। इनके पीछे जातियॉ नहीं किन्तु जातियों की ठेकेदारी हथियाकर अपनी राजनीतिक गोटी फिट करने वाले चालाक 'पोलिटिशियन' और 'माय मरे तो हलवा–हलवा, बाप मरे तो हलवा–हलवा' कहने वाले सामन्त, जमींदार और पूॅजीपति लोग हैं। रिजर्व कोटे के नाम पर नालायकों को भी चुन लिए जाने की गारंटी नेता लोग हमें न दें। हमें चंद आई.ए.एस., पी.सी.एस. या इसी तरह के दूसरे अफसरों के बदले में एक व्यापक समाज की नफरत मोल नहीं लेना है। अगर राज्य के द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की सहायता की योजना बिना जाति–भेद के बनाई जाए, तो ज्यादा लाभ सवर्ण जातियों की तुलना में खुद–ब–खुद हमें मिल जाएगा। क्योंकि गरीबी का अनुपात हम लोगां में ज्यादा है।''7

यहॉ कृष्णा मास्टर लेखक के प्रवक्ता के रूप में आए हैं। उपन्यास में जगह–जगह जो चिंतन आया है, उससे उनके आदर्शवादी चरित्र का उद्घाटन होता है। परंतु कुछ अन्तर्विरोध भी है। जिन आम्बेडकर जी का वे हवाला देते हैं, उन्होंने स्वयं ही हमारे संविधान में पिछड़ी जातियों के आरक्षण की व्यवस्था दी है। दुसरे जो प्रश्न उन्होंने पिछड़ी जातियों की गुणवत्ता पर उठाया है तो क्या सवर्ण जातियों की गुणवत्ता को लेकर वैसा ही प्रश्न नहीं उठाया जा सकता? तीसरे आर्थिक आधार के बन जाने पर 'चित्त भी मेरी, पट्ट भी मेरी' वाली संकीर्ण मनोवृत्ती की और कदाचित उनका ध्यान नहीं गया है। जहॉ सहस्0ाधिक वर्षो से प्रभू–सत्ताओं पर कुछ अल्पवर्ग के लोग बैठे हुए हों, वहॉ इस प्रकार के आदर्शवादी युटोपिया का सफल हो जाना कुछ संदिग्ध ही प्रतित होता है। हालांकि इस विवाद को अलग रखकर, उपन्यास को देखा जाय तो वह एक पठनीय सामाजिक उपन्यास है।

कल्याण ठाकुर की चर्चा के बिना उपन्यास की समीक्षा अपूर्ण ही रह जायेगी। कल्याण ठाकूर कृष्णा मास्टर के विलोम हैं। राजनीतिक अवसरवादिता, हर परिस्थिति को

अपने हक में भुनाने की प्रवृत्ती, सामाजिक दोहन–वृत्ति, आयाराम–गयाराम की गिरगिटी मनोवृत्ति एक भारतीय राजनीतिक नेता का चरित्र है, जो करीब–करीब वर्गगत (टाइप्ड) हो गया है, जो यहॉ कल्याण ठाकुर के रुप में प्रतिफलित हुआ है। उसका बेटा यशवंत स्वयं एक लकड़ी का ठेकेदार है, परंतु 'चिपको आन्दोलन' के तहत जब छात्र नेता मनोहर सिंह के नेतृत्व में 'जंगल बचाओ' आन्दोलन छिड़ता है, तो तुरन्त उसकी अगुआई के लिए तैयार हो जाते हैं और कहते हैं कि मैंने तो अपने बेटे तक को कह दिया है कि 'पहाड़ द्रोही' व्यवसाय को छोड़ दे।''8

नारायण कृष्णा मास्टर का ही प्रतिरुप है। अपने पिता डिगरराम की मौत छाना गॉव के जमना दत्त पुरोहित की मरी हुई भैंस खींचते हुए, रीढ़ में चसक पड़ जाने से हुई थी। जमुनादतत जी जब बहुत आग्रह करके उसे पॉच सौ रुपये देते हैं, तब वह उन सारे रुपयों को स्कूल के फण्ड में दान कर देता है। जिसके यहॉ खाने के लाले पड़े हों और जो स्वयं मजदूरी करके अपना पेट पालता हो, उसका ऐसा व्यवहार श्लाघनीय ही कहा जायेगा। कुल मिलाकर एक यह यथार्थ– परिवेश पर आधृत आदर्शवादी उपन्यास है। जब समग्र शिक्षा जगत में मूल्यों का अभाव पीड़ित कर रहा हो, ऐसे में कृष्णा मास्टर जैसे अध्यापक का होना मरुभूमि के रणद्वीप के समान है।

उपन्यास के शीर्षक के सन्दर्भ में गायत्री देवी के चरित्र को केन्द्र में रखा गया है–''वह सचमुच में नागवल्लरी है। जल में होने वाली एक बेल जो पत्थर से लिपटने के लिए अभिशप्त है।''9

संदर्भ सूची –

1.नागवल्लरी–प्रकाशकीय वक्तव्य से

2.साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास – डॉ. पारुकान्त देसाई, भूमिका से, पृ.5

3.सी, टाइम्स ऑफ इन्डिया, 20.7.71

4.नागवल्लरी, पृ. 180.81

5.वही, पृ.182

6.वही, पृ. 185

7.वही पृ. 187

8.नागवल्लरी, पृ. 223

9.वही, पृ. 69.

17.संजीव के उपन्यासों में आदिवासियों के लोक जीवन का चित्रण

–[1]मंजू कुमारी[2]प्रो.सुचित्रा मलिक
[1]शोध छात्रा,गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार उत्तराखंड
[2]शोध निर्देशिका,गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार उत्तराखंड

हिंदी साहित्य के समकालीन कथाकारों में संजीव एक बहुचर्चित नाम है। संजीव के उपन्यासों में ग्रामीण आंचलिक मेहनतकश मजदूर वर्ग पिछड़े तथा शोषित वर्ग की पीड़ा और दमन का वर्णन संजीव ने अपने लेखन में प्रस्तुत किया है। संजीव का लेखन अधिकांशत आदिवासी जनजतीय लोगों की सामाजिक,सांस्कृतिक,आर्थिक,मानसिक समस्याओं तथा उनके पिछड़ेपन को केंद्र में रखकर किया गया है। भारत विविधता में एकता का देश है। सदियों से भारतीय समाज में अनेक जातियों धर्म तथा समुदाय के लोग रहते हैं। भारत में अनेक जातियों के साथ अनेक जनजातियों के लोग भी निवास करते हैं। इस प्रकार भारत में लगभग करोड़ो आदिवासी अपनी अलग सामाजिक,सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ भारत के विभिन्न हिस्सों में निवास करते हैं। भारत की किसी क्षेत्र में आदिवासियों की जनसंख्या अधिक है। तो किसी क्षेत्र में इनकी जनसंख्या बहुत कम है ।संजीव के कथा साहित्य में भारत के मध्य भारत में स्थित संथाल, थारु, हो, मुंडा, बोड़ा, उराँव आदि जनजातियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। संजीव ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों एवं सामाजिक,सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ उनमें पाई जाने वाली रूढ़ परंपराओं और अंधविश्वासों के साथ सांस्कृतिक चेतना का निष्पक्ष रूप से वर्णन किया है। आजादी के बाद भी आदिवासी समाज विस्थापन, भुखमरी,बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्या से जूझ रहा है। संजीव ने अपने कथा साहित्य में विस्थापन और उसके कारण उपजी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान के संकट का मार्मिक चित्रण किया है। विस्थापन के कारण उनकी सामूहिकता में पली–बढ़ी सामाजिक व्यवस्था नष्ट हो जाती है। इन सब के चलते हुये भी उनकी एक अलग पहचान है आदिवासी समाज की अपनी धार्मिक मान्यताएँ,उत्सव, पर्व एवं त्यौहार, लोक–नृत्य,लोक–गीत,मनोरंजन,देवी–देवता मेले हाट–बजार,ओझा–गुनी,डायन,तंत्र–मंत्र एवं अंधविश्वास आदि संस्कृति के विविध आयाम है विशिष्ट उपादानों की वजह से आदिवासियों की एक अलग पहचानहै। संजीव ने भी विविध आयाम को अपने उपन्यासों में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

संजीव के उपन्यासों में लोक जीवन के विविध आयाम–आदिवासी पर्व एवं उत्सवों पर मात्र प्राकृति को प्रसन्न करने के लिए उसकी पूजा करते हैं। गीत–संगीत और नृत्य के द्वारा उसे प्रसन्न करने का आयोजन करते हैं।" आदिवासी प्राकृति पूजक होते हैं । प्राकृति उनका परिवेश भी है ,आलबंन भी है ,उद्दीपन भी। प्राकृति से वे अनाज और ओषधि तो ग्रहण करते ही हैं ,श्रृंगार के उपकरण और त्यौहार भी लेते हैं। प्राकृति अभी अर्थो में आदिम जातियों की सहचरी बनी हुई है ।उनके नृत्य संगीत गृह सजा,मनोरंजन और कलाभिरुचि को संवारने का काम भी प्राकृति ही करती है। स्वाभाविक है कि उनके त्यौहार भी प्राकृति से जुड़े हैं।"1 मनुष्य संस्कृति के द्वारा सब कुछ सीखता है।आदिवासी समाज संस्कृति प्रिय होता है।आदिवासी समाज प्रकृति की गोद में निवास करता है।लेकिन अभाव और शोषण ने मानो लोक संस्कृति का रस चूसकर उसे अपाहिज बनाया है।'धार' उपन्यास में लेखक ने लोक संस्कृति पर हो रहे हमले और उनके अस्तित्व पर चिंता प्रकट की है आदिवासी संस्कृति के विषय में संजीव कहते हैं–" आदिवासी संस्कृति तो–––– आर्य संस्कृति से बेहतर थी भले ही वे साँवले हो और आर्य गौरे,हमारे पास जो कुछ भी है उसका ज्यादातर भाग आदिवासी संस्कृति से लिया हुआ है।"2 आदिवासी जातियों को सभ्य समाज की उन्नति शीलता एवं प्रगतिशीलता बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर सकी है।

लोक विश्वास–आदिवासी समाज अज्ञानी अनपढ़ अनु और आधुनिक सभ्यता से दूर जंगलों में रहने के कारण इनमें लोक विश्वास की मान्यता है। लोक विश्वास को आदिवासी और ग्राम समाज में बहुत महत्व दिया जाता है। डॉ सुरेश बाबर कहते हैं "लोकविश्वास और लोक रुढ़ियाँ भी सांस्कृति के अंग है।"3 'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में थारु जनजाति का विश्वास है कि गाय का दूध पीने से लेरु की आत्मा कलपती है इस कारण थारू लोग गाय का दूध नहीं पीते ।थारूओं का विश्वास है कि हिरण का मांस खाने से हैजा फैलता है इसी कारण वे हिरण का मांस नहीं खाते है ।थारु जनजाति का काली डाकू कुमार से कहता है कि–" थारु गाय का दूध नहीं पीते थारु हिरन का मांस नहीं खा सकते।" 4

धाँगड जनजाति में सूअर को गाय से भी श्रेष्ठ माना गया है इस जनजाति का लोक विश्वास है कि मुगल काल में मुसलमानों की डिमांड था कि कोई भी दुल्हन हो पहली रात उनके साथ बितानी पड़ेगी। सभी जनजातियों ने इस शर्त को माना लेकिन धाँगड नहीं माने और जंगलों में भाग गए ।जंगल में रहने लगे जब मुगलों की फौज आई तो धाँगडों ने सूअर का हाड फेंककर उसको भागने पर मजबूर कर दिया क्योंकि सूअर

बादशाह को हराम था। सो धाँगडों को छोड़ दिया गया।एक धाँगड आदिवासी युवक ने इस बारे में कहा है–" सो सूअर तो हमारा गाय –भैस से बढ़कर है दुलहिन आती है बाप के घर से तो अचराँ में छौना देकर विदा करते हैं। दुल्हन का ताग–पाट उसी हाड़ का होता है।"5 संथालों में पुरुष की मौत हो जाने पर श्राद्ध भोज दिया जाता है।' धार' उपनयास में मैना की पति की मृत्यु पर लेखक कहता है कि–"कुल बीस गांवों में मंगर के श्राद्ध भोज का न्योता बँटा ।बीस गांव के लोग बांसगड़ा आये। स्त्री–पुरुष,जवान, बुड्ढे बच्चे सब !यह एक अजब भोज था जिसमें सभी आने वालों की लायी सामग्री को एक ही जगह राँधा गया। भोज के पहले मैना ने अपनी सूनी माँग,सूनी कलाई और सफेद साड़ी में बिरादरी को हाथ जोड़कर अरज किया।"6 इस प्रकार सभी जनजातियों के अपने लोग विश्वास की प्रथा है।

लोक नृत्य –गीत मनोरंजन–अधिकांश भारतीय जनजातियों ने किसी ना किसी तरह के सामूहिक नृत्य का विकास किया है। इन नृत्यों में गीत–संगीत का भी समावेश होता है। जनजातीय समाज में अनेक लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं।अधिकतर लोक कथाएं मनोरंजक है। झारखंड में चैत्र महीने से आदिवासी फसलों की अच्छी पैदावार के लिए नृत्य के द्वारा अपने देवी देवताओं की आराधना करते हैं। सुंदर लय–ताल के साथ यह नृत्य एकल एवं सामूहिक दोनों प्रकार से प्रदर्शित किया जाता है।संथाल जनजाति में झूमर नृत्य का प्रचलन है तथा गीत भी गाया जाता है ।'धार' उपन्यास लेखक संथालों नृत्य एवं गीत के विषय में लिखता हैं–" कोई बाजा बज उठा है धितिक धींग ! इसी ताल पर एक 'झूमर' यहाँ शुरू हो गया है––नृत्य भी गीत भी।"7थारु जनजाति के लोग झमटा नाच नाचते हैं। लेखक लिखता है–" इधर शाम गहराई उधर दोमाट और महाजोगनि गांव की लड़कियों का झमटा शुरू।–––सभी नए रंग–बिरंगी साड़ियों में 'न कोई साज,न कोई घुंघरू फिर भी झमक चला है झमटा।"8

जनजातीय लोग प्रकृति से गहरा जुड़ाव रखते हैं।आदिवासी लोग प्रत्येक अवसर पर गीत गाते हैं।' सावधान !नीचे आग है' उपन्यास में संजीव ने छठ मैया की पूजा पर गाए जाने वाले गीत का वर्णन इस प्रकार किया है–"काँचे ही बाँस की बहँगिया,/बँहगी लचकत जाय।/बनह बड़का बाबा सहइया,/दौरा वहाँ पहुँचाय।/आँखि के अँधारे बटोहिया,/दौरा सुरूज देव के जाय।"9/मेझिया गाँव के लोगों का गीत इस प्रकार से हैं–/"ओलोक पाड़हाक जेल ते,/आलो पे मेनां जुई दो।" 10थारु जनजाति में एक सहोदरा मेले का आयोजन किया जाता है।और थारु बालाओं के द्वारा गीतों को गाया जाता

है संजीव ने उपन्यास 'जंगल जहां से शुरु होता है' मे इनका वर्णन किया है–के जइहें हाजीपुर,के जइहें पटना/से के जइहें–––/अरे के जइहें,अरे बेतिया नोकरिया/के जइहें–––––/बाबा जइहें हाजीपुर भइया जइहें/पटना,/कि भइया जइहें पटना/हो भइया जइहें पटना/से सइहों जइहें उहे बेतिया नौकरिया/सइहाँ जइहें––।"11'धार'उपनयास में भी संजीव ने संथालों के लोक जीवन को चित्रित करते हुए संथालों के लोकगीतों का भी वर्णन किया है । संथाल का पारंपरिक गीत कुछ इस प्रकार है–"लेयाड गाड़ा धारे रे,हमन हमन दारे/काहाउ आकान पेड़ा नाइ,वाहा थारे थारे/वाहा लागिं हायरे मने,जिउंग आखान।"12

'धार' उपनयास में संजीव जी ने संथाल जनजाति के जागरण गीत का भी बहुत रमणीय वर्णन प्रस्तुत किया है –"दे वाहा बिरिट पे–ए लगन विरिट पे–ए/जपित रे दो आदो वोया वन वन ताहे ना/लुदानिदा पारो सेना मासली सेटा सेटेरना/नाउवा बेड़ा हिड़ी–झिरी कुवरे राका वेन/माझरा–माझरा रामकाताते आदो वनवन भूलोया,/बुलकाते आदो वोया वनवन ताहे ना ।"13किसी भी संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक विभिन्न संस्कारों में विभिन्न त्योहारों में एवं कृषि से संबंधित विभिन्न क्रिया कलापों में गायन की एक समृद्ध एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। जो वहाँ कि संस्कृति के लोक– गीतों में लोक जीवन की अति सुंदर झाँकी प्रस्तुत करती है। लोक– गीतों की उपेक्षा करके लोक जीवन की संपूर्णता को न तो समझा जा सकता है और न ही चित्रित किया जा सकता है।संजीव के साहित्य में जो लोकगीत तथा संगीत का चित्रण प्रस्तुत किया गया है इसमें न केवल लोक जीवन अपनी संपूर्णता में चित्रित हुआ है बलिक कथा का परिवेश जीवंत विश्वास और विश्वसनीय हो रहा है अंधविश्वास की लोक प्रथा–आदिवासी समाज अनपढ़ ,अज्ञानी तथा आधुनिक सभ्यता से दूर जंगलों पहाड़ों में निवास करता है।आदिवासी लोग अनेक रूढियों,रीति–रिवाजों एवं परंपराओं के अपनाने के लिए विवश होते हैं। क्योंकि उन सब के पीछे उनका अंधविश्वास रहता है। अंधविश्वास के कारण आदिवासी समाज में आने कुप्रथाएँ जन्म लेती हैं और अनेक कुप्रथाएँ देखने को मिलती है ।जैसे गांव में कोई अशुभ घटना होती है। या कोई बीमार पड़ता है तो उसके निवारण के लिए देवी देवताओं की बलि चढ़ाना आदि। कथाकार संजीव के साहित्य में भी अंधविश्वास की लोक प्रथाओं का यथार्थ दृष्टिगत होता है।'जंगल जहां शुरू होता है'उपनयास में सहोदरा माई के मेले में विराम की बहू अपने कष्टों को दूर करने के लिए कबूतर की बलि देती है ।लेखक कहता है–"बीन

बटोकर कैसे–कैसे तो पाँच रुपयों में उसने कबूतर खरीदा था, जिसकी बलि दे चुकी थी ।देवी से कुछ छुपा हुआ नहीं है वे सब की 'सरधा' और औकात जानती है।"14

आदिवासी लोग ओझा (जानगुरू)पर अधिक विश्वास करते हैं।ओझा द्वारा कही हर बात का पालन आंख बंद करके करते हैं।ओझा की बात न मानना या उस का अनादर करना देवताओं को रुष्ट करने के बराबर मानते हैं।'धार' उपन्यास में मैना को ओझा द्वारा डायन बता दिया जाता है तो मैना इसका विरोध करती है और ओझा की गर्दन पकड़कर उसे जाहिर थान तथा मारा बुरु एवं बधना देवी की कसम खाने को कहती है। और उसे कहती है कि बता तूने महेंद्र बाबू के द्वारा रिश्वत नहीं खाई। हमको डायन घोषित करने के लिए ऐसा सुनकर ओझा का चेहरा पीला पड़ जाता है और वह अपनी बात से मुकर जाता है ।इस घटना के बाद लोगों को डर सताने लगता है कि–"जो कुछ हुआ ठीक नहीं हुआ देवता जरूर रुष्ट हो गए होंगे, जाने क्या अनहोनी होने वाली है।"15 इस सब के बाद तीसरे दिन ही मैना का बच्चा कोयला खदान में दबकर मर जाता है तो गाँव वाले इसे देवी–देवता का शाप मानते हैं और कहते हैं कि–"अच्छा नहीं किया मैना ने देवता को जाएं तो जान लेकर ही छोड़ते हैं।"16 इसी कारण मैना की बच्चे की मृत्यु हुई है। इसी तरह से 'सूत्रधार' उपन्यास में संजीव ने इस अंधविश्वास के विषय में लिखा है–" सुबह–सुबह ही सँपेरे (साँप काविष झाड़ने वाले) के पास पीली सरसो और बालू––झड़वाकर लाते तो पीली सरसों पीसी जाती। फिर उसे उस बालू और गोबर में सानकर पूरे घर को गोढ़ा जाता,ताकि साँप न आ सके।"17

निष्कर्ष संजीव के उपन्यासों में वर्णित जनजातीय एवं निम्न, पिछड़ा समाज की अपनी सामाजिक,सांस्कृतिक मान्यताओं ,परंपराओं और अंधविश्वासों का भी निष्पक्ष रुप से वर्णन किया गया है। संजीव इन परंपराओं और अंधविश्वास पर गहरी चोट करते हैं और उन्हें समाप्त करने का सुझाव रखते हैं ।संजीव के कथा साहित्य में गीत संगीत आदिवासी समाज के विविध आयामों को जीवंत करते हैं।गीत संगीत के माध्यम से आदिवासी समाज के सुख, दुख–दर्द,चित्रित होते हैं।इनकी सांस्कृतिक अरणयमुखी संस्कृति है और इनका समाज प्रकृति पूजक है। जनजातियों में ओझा गुनी के प्रति अगाध श्रद्धा होती है पर्व त्यौहार तंत्र–मंत्र डायन लोक विश्वास अंधविश्वास संबंधी मान्यताएं और कहीं कहीं देवी देवताओं को बलि चढ़ाना जनजातियों में एक सामान्य से बात है। समूह में रहकर अपने मन के भाव को मूल रूप से नृत्य–गीत के माध्यम से अभिव्यक्ति देना इनका स्वभाव होता है। इन सभी विविधताओं के साथ आदिवासी समाज की अपनी एक मूल संस्कृति है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची– (1)विद्याभूषण, झारखंड समाज संस्कृति और विकास ,पृष्ठ– 22 (2) संजीव ,धार , पृष्ठ–39(3) डॉ सुरेश बाबर, भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन, पृष्ठ–85(4) संजीव ,जंगल जहाँ शुरू होता है, पृष्ठ– 137(5) संजीव ,जंगल जहां शुरू होता है,पृष्ठ–188(6) संजीव ,धार,पृष्ठ–136(7) संजीव,धार,पृष्ठ–173(8) संजीव, जंगल जहां शुरू होता है,पृष्ठ–16–17(9) संजीव ,सावधान! नीचे आग है,पृष्ठ–144(10) संजीव, पाँव तले की दूब,पृष्ठ–106(11) संजीव ,जंगल जहां शुरू होता है,पृष्ठ–17(12) संजीव, धार,पृष्ठ–162(13) संजीव, धार,पृष्ठ–166(14) संजीव, जंगल जहां शुरू होता है,पृष्ठ–15(15) संजीव, धार,पृष्ठ–123(16) संजीव, धार,पृष्ठ–123(17) संजीव, सूत्रधार,पृष्ठ–168

18.वृद्धावस्था और अग्निपंखी

–सोलंकी केतनकुमार. वी
पीएच.डी शोधार्थी
सरदार पटेल विश्व विधालय, विविवनगर फतेपुर टाइवाड़ा रबारी चकला, बोरसद

जीवन का उत्तरार्द्ध ही वृद्धावस्था है. वस्तुतः वर्तमान के भागदौड़, आपाधापी, अर्थ प्रधानता व नवीन चिन्तन तथा मान्यताओं के युग में जिन अनेक विकृतियों, विसंगतियों व प्रतिकूलताओं ने जन्म लिया है, उन्हीं में से एक है युवाओं द्वारा वृद्धों की उपेक्षा. वस्तुतः वृद्धावस्था तो वैसे भी अनेक शारीरिक व्याधियों, मानसिक तनावों और अन्यान्य व्यथाओं को लेकर आगमित होता है और अगर उस पर परिवार के सदस्य भी परिवार के बुजुर्गों / वृद्धों को अपमानित करें, उनका ध्यान न रखें या उन्हें मानसिक संताप पहुँचाएं, तो स्वाभाविक है कि वृद्ध के लिए वृद्धावस्था अभिशाप बन जाती है. इसीलिए तो मनुस्मृति में कहा गया है कि –"जब मनुष्य यह देखे कि उसके शरीर की त्वचा शिथिल या ढीली पड़ गई है, बाल पक गए हैं, पुत्र के भी पुत्र हो गए हैं, तब उसे सांसारिक सुखों को छोड़कर वन का आश्रय ले लेना चाहिए] क्योंकि वहीं वह अपने को मोक्ष – प्राप्ति के लिए तैयार कर सकता है." आश्रम व्यवस्था समाप्त हो जाने के फलस्वरूप शनैः शनैः परिवार में वृद्धों के महत्व का ह्रास होने लगा. उन्होंने भी वानप्रस्थ/संन्यास सभी व्यवस्थाओं को त्यागकर अपने को महज सांसारिक जीवन तक समेट लिया. इसीलिए उनकी स्थिति व सम्मान में और गिरावट आई. वस्तुतः वैयक्तिक एवं सांसारिक दोनों दृष्टियों से वानप्रस्थ अवस्था का महत्व था, इसीलिए वर्तमान में वृद्धों की अवस्था में कुछ अधिक ही जटिलता का समावेश हुआ है और रही – सही कसर पूरी हो गई है, भौतिकवादी पाश्चात्यी तौर – तरीकों से आप्लावित इस वर्तमान की नवीन जीवन शैली से हैं ।

मनुष्य के जीवन में साहित्य का विशेष स्थान है । साहित्य समाज की वास्तविकता का चित्रण करता है । साहित्य के माध्यम से ही हमेशा समाज में व्याप्त घटनाओं एवं परिस्थितियों आदि को चित्रित किया जा सकता है । साहित्य समाज में प्रचलित परंपरा तथा समस्याओं पर हमें विमर्श की और आकर्षित करता है । हिन्दी साहित्य में दलित – विमर्श, स्त्री – विमर्श, आदिवासी – विमर्श, किन्नर – विमर्श के बाद अब वृद्ध विमर्श की ज्यादा बोलबाला है । आजकल समाज में युवा पीढ़ी वह वृद्ध को नकारा, निठला एवं बेकार समझती है इसलिए समाज के इस वर्ग का यह वर्ग अछूता बनता जा रहा हैं

इसलिए वृद्धा विमर्श को देखना अत्यंत आवश्यक बन पड़ा हैं, उनकी उपेक्षा होने लगी है जिससे वृद्ध विमर्श की बात करना उचित है ।

सूर्याबाला का उपन्यास 'अंग्निपंखी' 1984 में लिखा गया है । इस उपन्यास परिवारजनों द्वारा पाली गई भ्रामक धारणाओं को लेकर लिखा गया है । 'अंग्निपंखी' उपन्यास का नायक जयशंकर गाँव से शहर आकार सुखी संप्पन जीवन बिताने का स्वप्न देखने वाला अर्धशिक्षित अभाँगा युवक हैं । गाँव गवार के संयुक्त कुटुंबी यह समझते है कि वे शहर में ऐशो – आराम की ज़िंदगी जीता हुआ पैसा हलोर रहा है और उन्हें यथेष्ट नहीं भेज रहा । जयशंकर भी उन्हें इसी भ्रम में जीते रहने देना चाहता हैं । अपनी फटेहाली न उजागर हो जाने का एक दयनीय सुख पाता है, इस उपन्यास में महा नगरीय के जीवन की आवास समस्या को बड़े तीखेपन से चित्रित किया गया है 'नगर और महानगर का जीवन बहुत तेज ओर संघर्षपूर्ण है, वहाँ गति ही जीवन हैं । रुकने का अर्थ पिछड़ापन है ।

'अंग्निपंखी' का नायक रोजी – रोटी की जिस उम्मीद की पोटली लिए अर्धशिक्षित बेरोजगार, जयशंकर गाँव से महानगर में विस्थापित होने के लिए अभिशप्त है वही पोटली अपनी लालसाओं, उच्च संभावनाओं की तलाश में विदेश जाने वाले महत्वाकांक्षी युवाओं के आयातकार सुटकेसों में तब्दील हो गई है, कारण अलग हो सकते है, किन्तु जयशंकर को गाँव पूरा नहीं पड़ता इन युवकों को देश, शिखर, समृद्धि का सपना लेकर आने वाले प्रवासी युवक सुविधा – संपन्न होने के बावजूद न विदेश से जुड़ पाते है, न स्वदेश को छोड़ पाते हैं, महत्वकांक्षा और सुविधाएँ इन्हें विदेश से जोड़े रखती है, भावनाएँ स्वदेश से हो या कहीं के नहीं रह पाते । और यह कहीं न कहीं पाने की उदासी, अवसाद किसी न किसी रूप में घर विस्थापित की नियति होती हैं । देश – परदेश और अब विदेश तक, हर कही उभयनिष्ठ है यह एक लाचारी, जो आत्माभिमानी जयशंकर को शहर के मशीनी जीवन में भी व पत्नी के साथ आर्थिक चुनौतियों तथा अभावों से जुडते दिखाया गया हैं ।

उपन्यास में जयशंकर की माँ का चित्रण बड़ा ही मर्मस्पर्शी है । एक ऐसी नारी जिसका आधे से अधिक जीवन गाँव के खुले वातावरण में गुजारा हो बुढ़ापा शहर के तंग, भागदौड़ ओर भीड़ भरे वातावरण में, लेखिका ऐसी माँ की द्रीर्धापूर्ण स्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है, जो अपने बेटे को अफसर बनाने के अलावा और कुछ नहीं चाहती जब उसे पता चलता है कि उसका बेटा अफसर नहीं बल्कि एक मजदूर

हैं ओर झौपड़िनुमा कोठरी में रहता है, ऐसी मार्मिक मनःस्थितियों का बड़े ही स्वाभाविक ढंग से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । "वृद्धावस्था एक धीरे – धीरे आने वाली अवस्था है जो कि स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना हैं का शाब्दिक अर्थ – पका हुआ, परिपक्व होता है ।"---01

सूर्यबाला ने 'अग्निपंखी' उपन्यास में संयुक्त परिवार का चित्रण किया हैं । जयशंकर संयुक्त परिवार का एक सदस्य है । उसके पिता की मृत्यु के बाद चाचा, ताऊ उसे पढ़ते है । अब शहर में नौकरी करता है । संयुक्त परिवार में उसका दम घुटता है । वह सिर्फ अपनी पत्नी को लेकर शहर में रहना चाहता है । परंतु उसकी माँ अपने बेटे – बहू के साथ रहना चाहती हैं । माँ परिवार का पूरा काम – काज संभालती हैं, अपने बेटे के लिए अपनी जेठानी, छोटी सभी के ताने सुनती है । जब जयशंकर की माँ शहर से वापस लौटी है तो परिवार में झगड़े शुरू हो जाते है, उस समय छोटको कहती है – "येल्लो, दो आँख तो नहीं करती, पर पक्की कोठरी उठती देखते ही कलेजे में जलन होने लगी । जयशंकर पढे – लेखे शहरवाले हुए । गाँव में कहाँ टिकेंगे । फिर उन्हें जैसा बनवाया हो, आये, देखे, बनवाए ।"---02 जयशंकर की माँ बीमार हो जाने पर परिवार के लोगों को उसकी सेवा करनी पड़ेगी, इसलिए वे उसे संभालना नहीं चाहते है । जब वह ठीक हो जाएगी तभी उसे संभालने की बात करते हैं । जयशंकर की माँ ग्रामीण जीवन में पाली है । उसकी सनातनी मान्यताएँ शहर की नारियों को देखकर बौखला उठती है तब उसकी वह बहू से कहती है – "वाह रे तुम्हारे दस । औरत के लाज – धरम से, सिर – माथा ठोककर चलने से हँसी उड़ती है और रंडी पतुरियों की तरह पेट – पीठ उघाड़कर चलने से इज्जत बनती है ।" --- 03 सास की सेवा के बाजाय उसे खाने के लिए भी बुलाना बोज समझा जाता है । माँ अपने बहू – बेटे के साथ रहना चाहती है । परंतु बेटा उसे शहर नहीं ले जाता है । एक बार वह शहर जाती है तब बहू नाराज हो जाती है । बीमार माँ की सेवा के बाजाय वह अपने पति से सास की करतूतों को सुनाती हैं । जयशंकर और उसकी माँ के बीच में पीढि+यों का अंतर भी देखने को मिलता है । जयशंकर शहरवासी बनाकर रहना चाहता है तो माँ उसे पुराने विचारों से चलने को कहती है । माँ और बेटे में पीढ़ीगत मान्यता के कारण संघर्ष भी दिखाई पड़ता है । इस प्रसंग को देखते ही प्रेमचंद याद आ जाते है उनके द्वारा लिखी कहानी "बेटों वाली विधवा' में बताया हैं कि – किस प्रकार पंडित अयोध्यानाथ के निधन बाद विधवा फूलमती के साथ उसके

पुत्र व पुत्र वधुएँ प्रतिपल दुव्यवहार करते है । जयशंकर की माँ त्रिलोकी ठाकुर के साथ रिश्ता निभाना चाहती हैं । माँ बीमार रहती है तब त्रिलोकी ठाकुर उसे मिलने आते हैं । जयशंकर को यह अच्छा नहीं लगता और वह कहता हैं – "डॉक्टर ने सक्त मना हियादत दी है कि लोग हर समय जमघट न लगाये रहा करें । इससे दिमाग पर और भी बुरा असर पड़ेगा ।"––––04 बेटा उन्हें पराया समझता है । उसी प्रकार सास – बहू में भी पीढ़ीगत मान्यता के कारण संघर्ष होता है । सास – बहू को घर के बारें में सिक्ख – सिखावन देना चाहती है । परंतु बहू माँ की बात मनाने के लिए तैयार नहीं होती है । शहर में घूमते समय बहू को सास की धोती की लज्जा आती है । इसी कारण झगड़ा भी करती है ।

जयशंकर शहर में छ; बाय छ; फुट की एक कोठरी में रहता है । उसमें जवान बहू बेटे के साथ बूढ़ी माँ का रहना दुर्भर हो जाता है । जयशंकर विवश होकर कोठरी में एक गहरे नीले रंग साड़ी का पर्दा टाँग देता है और दूसरी तरफ एक खटिया ड़ाल देता है । लेखिका इस कोठरी में रहने की दुविधा को यहाँ प्रकट करती है कि – "वही बेटा वही बहू वही माँ ... उसी में दुनिया के सारे धंधे । सोचते भी पाप लगे ।"–––05 माँ को शहरी वातावरण का कुतूहल जरा भी रास नहीं आता । जब गाँव में रहती थी तो वह शहर के स्वप्न देखती अब उसे अपना गाँव याद आ रहा हैं, शहर का रहन – सहन देखकर वह सोच में पड़ जाती है – "शहर से इस ज़िंदगी का ठिकाना नहीं लगनेवाला हैं । गाँव घर देता है, शहर चूसताँ हैं ।"–––06 ये सोचती वह अपने गाँव चली जाती है मगर गाँव में रहती तो उसकी सेहत अच्छी न रहकर वह बीमार हो जाती हैं, तो उसका बेटा उसे शहर लें आता है उसके इलाज के लिए, मगर गाँव की वो अबला गाँव एवं शहर के माहौल के बीच वातावरण में अपनी ज़िंदगी को घसीटती हुऐ लड़ती दिखाई पड़ती हैं । जयशंकर की माँ जब शहर से गाँव लौटी है । शहरी जीवन से ऊबकर वापस आनेवाली माँ की अवस्था इस प्रकार है – "शहर से इस ज़िंदगी का ठिकाना नहीं लगनेवाला शहर से ऊबकर गाँव आने पर उनको अपनी कोठरी भी नहीं मिलती क्योंकि उसके जाने के बाद श्याम किशोर के माँ – बाप उसकी कोठरी को तोड़कर वहाँ अलग दो कमरे अपने लिए बनाई थी । अब माँ वहाँ के घर काम करके जीवन बिताने लगी ।"––– 07 जयशंकर को अपनी झूठी शहर की लालसा हैं की उसकी माँ गाँव जाकर वह सबको उसकी परिस्थिति के बारे में बता देगी, तब वह अपनी माँ पर गुस्सा करता है वह अपनी

माँ को कहता है – "सारी कोठरी भट्टे की तरह खोलकर नुमाइश लगा रही हो ? शक्ल देखी है अपनी ? यह फटी लुगरी, धोती बाहर बैठने लायक हैं ? यह हालत रही, तो कुएँ में कूदकर जन दे दूंगा किसी दिन ।" यानि अपने शहर के झौपड़ी की बात वह गाँव में किसी से नहीं करे जिससे वह अपनी बूढ़ी माँ को धमकी देता है । जयशंकर की माँ बीमार होती है । उसको वह अस्पताल में ले जाता है । उसी समय डॉक्टर दूसरे के पास एक्स – रे लेने भेजते है । उसके बाद खून, पेशाब, दट्टी की जांच शुरू होती है । डॉक्टर दावा पुर्जे पर लिख देते हैं और ऊपर से कहते हैं – "वह तो सब आप बाद में दिमाग के डॉक्टर को बताएगा । मै तो बस बेहोशी और बुखार की दवा दे रहा हूँ । लगातार भीगने से निमोनिया तो होना ही था । बेहोशी दूर होने पर भी बुखार की तेजी में बड़बड़ा सकती हैं । पर घबराने की कोई बात नहीं । दिमाग के मरीजों को जल्द जान का खतरा नहीं होता ।"––––08 यहाँ पर जयशंकर बाद में बहुत दवाई का खर्च नही उठा पा रहा जिससे बाद में एक सामान्य वैध से अपनी माँ का इलाज करवाता है ।

अब माँ भी गाँव में थी, उसकी पत्नी भी मायके थी तो अब उसने शांति से जीना सीखा । अब उसे ज्यादा काम भी मिलता था और उसे ज्यादा समय काम भी मिलने से ज्यादा पैसे भी मिलने लगे थे और उसके यहाँ अब एक पुत्री का भी जन्म होता है जिससे अब वह ज्यादा खुश रहता दिखाई पड़ता है, अब वह उसे काम से मिले ज्यादा पैसों को भी बचाना चाहता है मगर जब वह काम से घर लौटता है तो उसकों दों चिट्ठीयाँ प्राप्त होती है जिसमें लिखा था कि उसकी पत्नी कल लौट रही है और दूसरी में लिखा था कि माँ को दस्त हो गए है जिससे आज उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता हैं । फिर वह अपने गाँव जाकर अपनी माँ को शहर में ले आता हैं । तथा अपने भाईओं से झगड़ा भी करता है जितना हक तुम्हारा गाँव के घर पर है उतना हक उसका भी हैं । अब उसने जो पैसे ज्यादा ओवरटाइम करके बचाएँ थे अब माँ के इलाज मे खर्च हो जाते है सारे पैसे डॉक्टर को दे देगा तो बीबी और बच्चो के साथ फिर से वह फुटपार्थ पर आ जाएँगा । और डॉक्टर से पैसे बचाकर वह एक सामान्य वैध से उनका इलाज करवाता है और डॉक्टर की बची फीस से वह अपनी बच्ची के लिए मिल्क पाउडर का डिब्बा लाता हैं । पैसा न बचने के कारण वह अपना सारा गुस्सा अपनी पत्नी पर उतारता है, उसकी पत्नी उसकों सहन करती हुई जयशंकर की माँ की सेवा भी करती है मगर कितने दिनों गुस्सा सहन होता एक दिन वह अपने पति के सामने भी हो जाती है । यह सब देखकर माँ बहुत ही चिंतित रहती है और गाँव जाने की जिद्द करती दिखाई देती हैं ।

पर इस सब का जिम्मेदार जयशंकर खुद था, और वह अपनी माँ पर भी गुस्सा हो जाता है मगर माँ उसकी आंखे खोली पड़ी – पड़ी अपने गाँव से बेहद वातावरण को याद करती है । माँ फिर गाँव जाने का आग्रह प्रकट करती है । लेकिन जयशंकर को गाँव का नाम लेना तक पसंद नही हैं । इसका चित्र इस प्रकार लेखिका ने किया है – "जियोगी तो यही, मारोगी भी तो यही, और मरजाओगी तो तुम्हारी मिट्टी भी वहाँ नहीं जा सकती ।"–––09 जब अपनी माँ को देखकर वह अचानक आश्किंत हो गया तो उसका दिल जोरों से धक – धक कर रहा था । यह धड़कन "पता नहीं की किस आशंका, मृत्यु की, जीवन की ?"––10 इस पंक्ति के द्वारा सूर्यबाला जी ने इस उपन्यास का अंतिम स्वरूप दिया है । इस उपन्यास को पढ़कर निशा माथुर के शब्द याद आते है –

"चढ़ता दरिया बनकर और उफन के
गर पाना चाहे मंजिल कोई
देकर मशविरा तहजीब का,
एक तजुर्बा बन जाते है हमारे बुजुर्ग
जब ये एहतराम होता हैं कि
कोई हमारा साथी, रहनुमा भी नही
[ुशियों की ज़िंदगी में तब फलसफे बन जाते हैं
हमारे बुजुर्ग ।"

ऐसा ही एक उपन्यास मेने पढ़ा 'लालटीन की छत' की पात्र काया अकेलेपन के कारण डरती भी है और अकेले में बड़बड़ाती भी रहती है – "दिनभर का अकेलापन, गुस्सा, हताशा आपस में गूँथ कर एक धुंध का गोला सा बन जाते, जो न इतना कोमल कोटा कि आँसूओं में पिघलकर बाहर आ सके, और न इतना सख्त कि वह उसकी पकड़ में आकार किसी सूझ, किसी समझदारी की सांत्वना में बादल सके ।"––11 इसके अतिरिक्त यह टकराहट ही अलगावपन एवं बेगानापन जैसी मनःस्थितियों का कारण बनती है जिसके चलते अंतर्द्वंद उत्पन्न होता है और एक समय के पश्चयत यह वृद्धा अपने वृद्धावस्था से तंग आकार मृत्यु की राह जोहता – फिरता है । आज की इस वर्तमान परिस्थिति को देखे तो – "भारत के सबसे शिक्षित और आधुनिक राज्य केरल में भी वृद्ध लोगों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वहाँ के उच्च न्यायालय ने उनके कष्टहीन

आत्महत्या को कानूनी मान्यता देने की अपील की गई हैं ।" साहित्य और समाज के परस्पर संबंध को हम भली – भाँति जानते हैं। जीवन की इस आपा – धापी में साहित्य संवेदनाओं को जगाकर उनकी महक को ठीक से उद्बुध करता है। जिस प्रकार वर्षाकाल की पहली बारिश की बूँदे गिरते ही मिट्टी की सौंधी महक उद्बुध हो जाती है। समय की अपनी चुनौतियाँ होती है और ये प्रत्येक चुनौतियाँ काल – सापेक्ष होती है। प्रत्येक काल में वे चुनौतियां बदलती रहती है। किसी दौर में हम बाहरी ताकतों के गुलाम थे तो उस समय की सबसे बडी चुनौती उन बाहरी ताकतों से देश को आजाद कराने की थी। आजादी के बाद की चुनौतियाँ कुछ अलग थीं। आधुनिक बनने की अंधी दौड में हम इस कदर भागने लगे कि हम अपनी सभ्यता, संस्कृति और परम्परा भूलने लगे। वैश्वीकरण के बढते प्रभाव ने हम पर अपना प्रभाव डाला और फलस्वरूप हमारी सोच व जीवन प्रणाली में अंतर आने लगा। संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा, गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढा, खेत – खलिहानों के स्थान पर सीमेंट और रेत की फसलें लहलहाने लगीं। खेत कम होते गए, कारखाने बढते गए, घर छोटे होते गए और साथ ही दिल भी। वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया कि हम पाश्चात्य जीवन प्रणाली और एकल परिवार को ही सबकुछ मान बैठे। जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी ऊँगली पकड कर चलना सिखाया, हम उनकी बुढापे की लाठी बनने की अपेक्षा उन्हें बोझ समझने लगे। धीरे – धीरे शहरों में वृद्धाश्रम खुलने लगे। यह हमारी सोच और स्वार्थी जीवन प्रणाली को दर्शाने लगा। वृद्धों की जगह घर न होकर वृद्धाश्रम होने लगे।

निष्कर्ष के रूप में देखा जाये तो, यह नई पीढ़ी, परिजनों और समाज का नैतिक दायित्व है कि वह वृद्धों के प्रति स्वस्थ व सकारात्मक भाव व दृष्टिकोण रखे और उन्हें वेदना, कष्ट व संताप से सुरक्षित रखने हेतु सार्थक पहल करे. वास्तव में भारतीय संस्कृति तो बुजुर्गों को सदैव सिर–आँखों पर बिठाने और सम्मानित करने की सीख देती आई है. अगर परिवार के वृद्ध कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं, रुग्णावस्था में बिस्तर पर पड़े कराह रहे हैं, भरण पोषण को तरस रहे हैं, तो यह हमारे लिए लज्जा का विषय है. वृद्धों को ठुकराना, तरसाना, सताना, भर्त्सनीय भी है और अक्षम्य अपराध भी. सामाजिक मर्यादा, मानवीय उद्घोष व नैतिक चेतना सभी हमें वृद्धों के प्रति आदर, संवेदना व सहानुभूति–प्रदाय की शिक्षा देते हैं. यथार्थ तो यह है कि वृद्ध समाज, परिवार और राष्ट्र का गौरव है. वृद्धावस्था बड़ी मुश्किल से आती है. पचास प्रतिशत व्यक्ति पचास वर्ष की अवस्था

तक परलोकवासी बन जाते हैं. जो पचास वर्ष की आयु – सीमा पार करना चाहते हैं, उनको विशेष रूप से वृद्धजन के प्रति अपने दायित्व को समझना चाहिए ।

संदर्भ सूची –

1- डॉ. हरदेव बाहरी, लोकभारती राजभाषा शब्दकोश, लोकभारती प्रकाशन, पृ . 466

2- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 50

3- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 09

4- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 44

5- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 39

6- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 52

7- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 56

8- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 61

9- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 78

10- सूर्यबाला, अग्निपंखी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011 – पृ. 82

11- निर्मल वर्मा, लालटीने की छत, – राजकमल, प्रकाशन, दिल्ली – 2006 पृ. 35

19.नारायण सुर्वे यांच्या काव्यातील जीवनमूल्ये

–डॉ. ल. ना. वाघमारे
मराठी विभाग, शंकरराव चव्हाण महाविद्यालय,
अर्धापूर, ता.अर्धापूर जि.नांदेड
मो.नं.9763010450

प्रस्तावना :

साठोत्तरी कालखंडातील अत्यंत महत्त्वाचे कवी म्हणून नारायण सुर्वे यांचे स्थान आहे. महाराष्ट्रातील श्रमिक वर्गाचा जीवनानुभव घेणारे कवी म्हणून त्यांची ओळख आहे. साम्यवादावर त्यांची प्रखर निष्ठा आहे. ते स्वतः कम्युनिष्ठ पक्षाचे सक्रिय कार्यकर्ते असल्यामुळे त्यांच्या काव्यलेखनाला एक वेगळा आयाम प्राप्त झाला आहे. जॉर्ज ऑर्वेल या जगप्रसिद्ध लेखकाने Why I wright? 1946 साली लेख लिहिला. त्यात लेखक का लिहितो? याची ऑर्वेल यांनी चार कारणे सांगितलेली आहेत. ती अशी–

Sheer egoism, Aesthetic enthusainsm, Historical impulse and political purpose.

म्हणजेच जॉर्ज ऑर्वेल यांनी लेखकाला राजकीय भूमिका, निष्ठा नसते, नसावी असा युक्तिवाद ते करत असतात. नारायण सुर्वे मात्र या बाबतीत वेगळे वाटतात. त्यांचे लेखनही 'राजकीय दृष्टीकोन' व्यक्त करणारे आहे. तेच स्वतः लिहितात,

"सर्व माणसांविषयी कृतज्ञता व्यक्त करण्यासाठी मी लेखन करतो. व्यक्तिगत जीवनापासून तो सर्व समष्टीपर्यंतचा आलेख मला काढायचा आहे. माणसातले सौंदर्य व त्यांच्या बावन्न कला मला चित्रित करायच्या असतात. मी चित्रित केलेला माणूस पराभूत किंवा क्षणभर निराश जरी वाटला तरी तो पुन्हा नव्या संघर्षातही उभा राहणारा, ताठ पोलादी मानेचा आहे. पराभव हा मानवी इतिहासाचा एक भाग असला तरी प्रगतीचाही तो मोठा वाटेकरी आहे, हे विसरता येत नाही. माणसातले केवळ हरलेपण दाखवण्यापेक्षा त्याचे लढलेपण दाखवणे मला मोलाचे वाटते ते यासाठी माझे लेखनसुद्धा याचसाठी असते."

नारायण सुर्वे यांच्या काव्यलेखनातील जीवनमूल्ये शोधणे हा माझ्या शोधनिबंधाचा उद्देश आहे. त्यासाठी त्यांनी लिहिलेल्या काव्यरचनेचा आधार घेतलेला आहे.

शोधनिबंधाचा उद्देश :

1.नारायण सुर्वे यांच्या काव्यातील जीवनमूल्ये शोधणे.

2.नारायण सुर्वे यांचा जीवनप्रवास आणि त्यांचे काव्यलेखन यामधील अनुबंध शोधणे.

संशोधन सामुग्री :

दुय्यम संदर्भ साधनांचा संशोधनासाठी वापर करण्यात आलेला आहे. त्यामध्ये संदर्भग्रंथ, नियतकालिके, इंटरनेट आदींचा समावेश आहे.

जीवनप्रवास :

कोणत्याही कवींच्या काव्यलेखनातील जीवनमूल्ये शोधण्यासाठी त्या–त्या कवीचा जीवनप्रवास अभ्यासणे अनिवार्य आहे. नारायण सुर्वे यांच्या काव्यलेखनातील जीवनमूल्ये शोधत असताना त्यांचा जीवनप्रवास अभ्यासणे आवश्यक आहे. नारायण सुर्वे यांचा जन्म 15 ऑक्टोबर 1926 रोजी झाला. त्यांच्या जन्मानंतर जन्मदात्रीने त्यावेळी नवजात अर्भक असलेल्या नारायणास सोडून दिले. मुंबईच्या इंडिया वुलन मिलमध्ये कामगार म्हणून नौकरी करणारे गंगाराम कुशाजी सुर्वे व त्यांची पत्नी काशीबाई यांनी अनाथ असलेल्या नारायणास मातापित्याचे छत्र दिले. गंगाराम सुर्वे इंडिया वुलन मिलच्या स्पिनिंग खात्यात साचेवाल्याचे काम करत, तर काशीबाई त्याच गिरणीच्या बाइडिंग खात्यात कामगार म्हणून नौकरीला होत्या. गंगाराम सुर्वे यांनी जन्मापासूनच त्यांचा सांभाळ केला. त्यामुळे नारायण गंगाराम सुर्वे हे नाव त्यांनी धारण केले. बालवयातच उपहारगृहात कामगार व कापड गिरणीत बिगारी म्हणून काम केले. प्राथमिक शाळेत शिपायाचेही काम केले. अशा परिस्थितीमध्ये सातवीपर्यंतचे शिक्षण पूर्ण केले. कालांतराने प्राथमिक शाळेत शिक्षक म्हणून त्यांनी नौकरी केली. हिंदी आणि उर्दू भाषा उत्तमरित्या अवगत करून घेतल्या. पुढे कृष्णा साळुंके यांच्याशी विवाहबद्ध झाले. 14–15 व्या वर्षी कवी नारायण सुर्वे यांनी 'भारत छोडो' आंदोलनात सहभाग घेतला. 1946 च्या आर्मी बंडातही त्यांचा सहभाग होता.

साहित्यलेखन :ऐसा गा मी ब्रम्ह (1962), माझे विद्यपीठ (1966), जाहीनामा (1975), नव्या माणसाचे आगमन (1975).

अनुवाद :कृष्ण चंदर यांच्या उर्दू कथांचा अनुवाद 'तीन गुंड सात कथा' या नावाने (1966).

इंग्रजी अनुवाद :'ऑन द पेव्हमेंट्स ऑफ लाईफ' या शीर्षकाने 1973 साली प्रसिद्ध.

नारायण सुर्वे यांच्या काव्यातील जीवनमूल्ये :

अनाथ म्हणून जन्माला आलेल्या नारायण सुर्वे यांचे पालनपोषण एका गिरणी कामगार असलेल्या गंगाराम सुर्वे यांनी केले. तिथूनच त्यांचा खडतर जीवनप्रवास सुरू होतो. सुर्व्यांचं लेखन तेच जगण्याची आणि बोलण्याची भाषा म्हणून त्यांच्या प्रत्येक कवनात त्यांचे थोडे–थोडे आत्मचरित्र आलेले जाणवते; परंतु सुर्व्यांनी त्यांच्या अनाथपणाचं कधीच भांडवल केले नाही. कामगार वस्तीत ते लहानाचे मोठे झाले. गिरणी कामगाराचे जीवन अनुभवले. तोच जीवनानुभव काव्यात उतरविला,

कामगार आहे मी, तळपती तलवार आहे
रोजीचा रोटीचा सवाल रोजचाच आहे
कधी फाटका बाहेर कधी फाटका आत आहे
कामगार आहे मी, तळपती तलवार आहे
सारस्वतांनो! थोडासा गुन्हा करणार आहे

इथे प्रस्थापित समाजव्यवस्था असल्याने कामगारांच्या आयुष्याबद्दल कोणी लेखन केले नव्हते. सुर्वे यांनी पहिल्यांदा कामगारांविषयी काव्यलेखन केले. त्यांचे काव्यलेखन म्हणजे सर्वहारावर्गाच्या जीवनाचे प्रतिबिंब. जेव्हा त्यांना 'जनस्थान पुरस्कार' प्रदान करण्यात आला त्यावेळी 'सह्याद्री' या वाहिनीवर स्वाती पाटणकर यांनी त्यांची मुलाखत घेतली. त्यावेळी ते म्हणाले,

"लेखनासाठी संवेदनक्षमता आणि प्रतिभेची जात लागते. इतर वाङ्मय प्रकारापेक्षा कवितेवर अधिक चर्चा होते. आतला हुंकार म्हणजे कविता, जगणं म्हणजेच वाङ्मय."

प्रत्येक यशस्वी पुरुषाच्या पाठीमागे त्यांच्या अर्धांगिणीचा सिंहाचा वाटा असतो. स्वतः सावली बनून सोबत असते. म्हणून खडतर प्रवासही सुखकर होतो. सुर्वे यांनाही तोच अनुभव आला. संयुक्त महाराष्ट्र उभारणीच्या काळात नारायण सुर्वे लिहू लागले. हा काळ म्हणजे व्दैभाषिक प्रश्न, मुंबईतील जातीय दंगली. अशा परिस्थितीमध्ये लेखन करत असताना त्यांच्या सहचारिणीने त्यांना साथ दिली. म्हणून जीवनाच्या प्रत्येक वळणावर सहचारिणीने त्यांना दिलेली साथ त्यांच्या काव्यलेखनातून स्फुरते,

"हरलो कैकदा झुंजीत, तूच पदराचे शीड उभारलेस
हताश होऊन गोठलो, तूच पाठीवर हात ठेवलेस"

नारायण सुर्वे माणसाविषयी कृतज्ञता व्यक्त करण्यासाठी लिहितात. त्यांना माणसामधले हरलेपण दाखवायचे नाही. त्याचे लढलेपण त्यांना महत्त्वाचे वाटते. त्यांच्या आयुष्याची ससेहोलपट झाली तरी देखील त्यांचा आयुष्यावर प्रचंड विश्वास आहे. ते लिहितात,

जीवनापासून पळून जावे तर कुठे?
आकाशीच्या बापाशी पहिल्यापासूनच वैर होते
बोंब मारून बोलवावा असा स्वर्ग आहे कुठे?
ज्याच्यासाठी आमचे आतडे तिळतिळ तुटत होते
उठ तेवढी ती कोपऱ्यातली तलवार शोधून ठेव

एकेकाळी तिच्यावर मी माझे नशीब घासले होते

'माझे विद्यापीठ' ही कविता सुर्वे यांच्या जीवनाचा आलेख शब्दबद्ध करते; नव्हे कामगार जीवनविश्व साकारते. शब्दाशब्दांमधून सारखी वेदना स्पष्ट होते. नारायण सुर्वेच म्हणतात,

ना घर होते, ना गणगोत
चालेन तेवढी पायाखालची जमीन होती
दुकानाचे आडोसे होते,
मोफत नगरपालिकेची फुटपाथ खुलीच होती

सुर्व्यांच्या कवितेमध्ये 'मी' आणि 'आम्ही' असे स्वतःविषयीचे शब्द येतात; परंतु त्यात आत्मप्रौढीपणा नसतो, तर जगत आलेल्यांचा स्वर असतो. स्वतःच्या जगण्यातला संघर्ष अनेकांच्याही जगण्यात आहे. महाराष्ट्रातल्या ज्या भागात एसटी, वीज पोहोचलेली नाही अशा ठिकाणीही सुर्वे पोहोचलेले आहेत. ते म्हणत,

"मी मार्क्सवादी आहे, मी डावा आहे, परिवर्तनवादी आहे... मला ज्ञानेश्वर आवडतो, केशवसुत, कुसुमाग्रज आवडतात."

सुर्व्यांचे काव्यलेखन व्यवस्थेवर भाष्य करणारे आहे. त्यांची भाषा साधी, सोपी आणि सरळ आहे. जसे,

दोन दिवस वाट पाहण्यात गेले, दोन दिवस दुःखात गेले, हिशोब करतो आहे आता किती राहिलेत डोईवर उन्हाळे, शेकडो वेळा चंद्र आला, तारे फुलले, रात्र धुंद झाली भाकरीचा चंद्र शोधण्यातच जिंदगी बर्बाद झाली

निष्कर्ष :1.नारायण सुर्वे स्वतः अनाथ म्हणून जगल्यामुळे त्यांच्या काव्यात श्रमिकांचे, कष्टकऱ्यांचे लढलेपण अभिव्यक्त झाले आहे. 2.सुर्व्यांच्या काव्यलेखनातून माणसाबद्दल कृ तज्ञता व्यक्त झाली आहे.3.जीवन वेदनामय, संघर्षमय असले तरी सुर्व्यांचा आयुष्यावर प्रचंड विश्वास असल्याचे त्यांच्या काव्यातून जाणवते.4.नारायण सुर्व्यांच्या काव्यातील भाषा साधी, सरळ आणि सोपी असल्याचे स्पष्ट होते.5.सुर्व्यांच्या काव्यात आत्मचरित्राचा भाग आलेला असला तरी त्यांची कविता समूहाची आहे.

संदर्भग्रंथ :1.सुर्वे नारायण, 'माझे विद्यापीठ', पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई 2.शिरवाडकर वि.वा., 'निवडक नारायण सुर्वे', लोकवाङ्मयगृह प्रकाशन, मुंबई 3.इंटरनेट 4.तायडे मनोज, 'नारायण सुर्वे यांची कविता आणि काव्यदृष्टी' 5.नियतकालिके, वर्तमानपत्र

20.नाला सोपारा : किन्नर जीवन का जीवंत दस्तावेज

–डॉ. मनोरमा गौतम
नई दिल्ली

नाला सोपारा चित्रा मुद्‌गल का बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है। ' नाला सोपारा ' न केवल एक उपन्यास है बल्कि किन्नर जीवन की गाथा है। इसमें लेखिका ने किन्नर जीवन की पीड़ा तथा व्यथा को बहुत ही बेबाकी से व्यक्त किया है। व्यक्ति के न चाहते हुए भी किन्नर बनाए जाने की बेबसी उपन्यास में स्पष्ट झलकती है। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस तरह किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके परिवार से दूर कर हिजड़ों के हांथो सौंप दिया जाता है और किस तरह उसे हिजड़ों के साथ रहकर हिजड़ों की तरह जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। उपन्यास का नायक विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली भी सामाजिक प्रतिष्ठा के चलते अपने परिवार द्वारा हिजड़ों को सौंप दिया जाता है तथा हिजड़ों की तरह जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है जिसके लिए उसे तमाम तरह की शारीरिक प्रताड़नाऐ भी झेलनी पडती है।

विनोद उर्फ़ बिन्नी का बिमली बनने तक का सफर बहुत पीड़ादायक रहा है। विनोद जोकि एक अच्छे सम्पन्न परिवार से सम्बन्धित है। वह पढने – लिखने में भी बहुत होशियार है। उसके बड़े – बड़े सपने हैं। वह पढ़ – लिखकर एक बड़ा गणितज्ञ बनना चाहता है। अन्य सामान्य बच्चों की तरह उसका रहन – सहन तथा उठना बैठना है। उसके शारीरिक डील – डौल से कोई नही कह सकता कि वो असामान्य है। देखने में वो सामान्य लड़के की भांति ही दिखाई देता है। बस एक शारीरिक अक्षमता या फिर शरीर के एक अंग की अपूर्णता के कारण उसे सामान्य लडके की तरह जीवन जीने को नही मिलता। उससे उसके वो सारे अधिकार छीन लिए जाते हैं जो एक सामान्य बच्चे या फिर व्यक्ति को मिलते हैं। इतना ही नही उसके परिवार वाले भी सामाजिक लोक – लाज की वजह से उसका परित्याग कर देते हैं। इससे पता चलता है कि किन्नरों को लेकर समाज की मानसिकता कितनी ओछी है। एक बच्चा जिसे यह तक नही पता कि वो किस योनी में जन्म ले रहा है , जिसे यह तक भी नही पता कि किन्नर जैसी भी कोई एक अलग प्रजाति होती है जिसकी अपनी ही एक अलग दुनिया होती है। जिसे औरत और मर्द के बीच का फर्क ही नही पता उसे किस तरह परिवार तथा समाज से बहिष्कृत कर टिस – टिस कर जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है। यह समाज की विडम्बना नही तो और क्या है

? परिवार द्वारा किन्नरों के सरदार को दिए जाने के बाद विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली को जो जीवन जीना पड़ता है उसके बारे में अपनी बा को पत्र में लिखते हुए विनोद बताता है कि – " जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे , वह एक अंधा कुंआ है , जिसमें सिर्फ सांप – बिच्छू रहते हैं। सांप – बिच्छू बनकर वह पैदा नही हुए होंगे। बस इस कुंऐ ने उन्हें आदमी नही रहने दिया। "1

क्या मनुष्य अपने जन्म से पहले यह तय करके आता है कि उसे दुनिया में किस रूप में जाना है या फिर किस योनि में जन्म लेना है ? जब जन्म लेना और दुनिया में किस रूप में आना उनके हांथ में नही तो उन्हें उनके किस जुर्म की सज़ा दी जाती है। औरत , मर्द और किन्नर तीनों ही हांड – मांस के मानव है तीनो ही मानवीय संताने हैं इन तीनों में से किसी एक को श्रेष्ठ मानना और दूसरे को हीन मानकर उसे तिरष्कृत करना क्या मानवीयता के धरातल पर उचित है ? स्त्री , पुरुष और किन्नर इन तीनों में किन्नर को समाज में एक अलग ही प्रजाति मानी जाती है जिसके कारण उनको लेकर सामाजिक की मानसिकता भी सही नही है। समाज के कुछ लोग तो किन्नर को मानव तक नही मानते। वे उन्हें एक जीव मात्र मानते हैं जोकि समाज के मनोरंजन के लिए पैदा हुए हैं। सोंचने का विषय ये है कि मात्र शरीर के एक अंग के नही होने या फिर एक अंग की अपूर्णता के कारण से एक मानव मानव नही हो सकता उसे स्त्री या फिर पुरुष के रूप में जीवन जीने नही दिया जा सकता। एक अंग की कमी के कारण एक व्यक्ति अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार तथा अपनी शारीरिक प्रतिक्रियाओं के अनुसार स्त्रीनुमा या फिर पुरुषनुमा जीवन क्यूं नही जी सकता ? वो चाहे तो अपनी इच्छानुसार किसी एक रूप में जीवन जी सकता है। समाज को कोई हक नही है कि उसे किन्नर बनकर ही जीवन जीने के लिए बाध्य करे। जरुरी नही है कि किन्नर प्रजाति में जन्म लेने के कारण किसी को न चाहते हुए भी उसकी इच्छा के विरुद्ध हिजड़ा बनकर ही तथा नाच – गाकर जीवन जीना पड़े। बिना हिजड़ा बने भी बिना नाचे गाये भी कोई किन्नर सम्मानजनक जीवन जी सकता है। क्या किन्नर सभ्य सामाजिक मानव की भांति नही जी सकता ? विनोद अपनी इस पीड़ा को पत्र में लिखते हुए कहता है कि – " जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है , लेकिन इतना बड़ा भी नही कि तुम मान लो कि तुम धड का मात्र वही निचला हिस्सा हो। मस्तिष्क नही हो , दिल नही हो धडकन नही हो। तुम्हारे हांथ – पैर नही है। है , है , है , सब वैसे ही है। जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने देने में वंचित हो , तुम वात्सल्य सुख से नही। "2

मनुष्य योनि में जन्म लेने के नाते किन्नर को भी अधिकार है कि वो स्त्री या पुरुष की भांति अपने अनुसार अपना जीवन जी सकता है। अपने जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित कर सकता है। अपने जीवन को नया मोड़ दे सकता है। सामान्य मानव की भांति कोई इज्जतदार नौकरी कर प्रतिष्ठापूर्वक जीवन जी सकता है। अन्य किन्नर तथा हिजड़ों के लिए एक मिशाल बन सकता है। समाज के नजरिये को बदलने में अहम भूमिका निभा सकता है। लेकिन ऐसा नही हो पाता है या फिर ऐसा होने ही नही दिया जाता है। क्योंकि सभ्य समाज के सभ्य मानव किन्नर को कभी भी अपनी बराबरी पर नही आने देना चाहते हैं और न ही आने देंगे। सभ्य समाज के ये सभ्य मानव किन्नर कि परिकल्पना ही रंग – बिरंगी चटकीले कपड़े पहने , लाली – लिपस्टिक लगाए , क्रीम – पाउडर से पुते मुंह वाली सडको , गलियारों , चौपालों , रेड लाइट पर ताली पीटकर मर्दों को रिझाते पैसे मांगते , नाचते – गाते ही करते हैं। उनके लिए किन्नर मनोरंजन के साधन से अधिक और कुछ नही है। सभ्य मानव कभी भी किन्नर को सामान्य जीवन देने के पक्ष में ही नही है। जब भी कोई किन्नर सामान्य मानव की भांति नौकरी आदि करके सामान्य तथा इज्जत का जीवन जीना चाहता है तो ये सभ्य मानव उसका उपहास उड़ाते हैं , उस पर हँसते हैं , उसका मजाक बनाते हैं , उस पर फब्तियां कसते हैं , उसके मार्ग को अवरुद्ध करते हैं , उसे उसकी शारीरिक कमी याद दिला उसे हिजड़ो की तरह ही जीवन जीने के लिए विवश करते हैं। इतना ही नही वो किन्नर को समाज का एक ऐसा सडा अंग मानते हैं जिसका समाज से अलग रहना ही उचित है। विनोद किन्नर के प्रति समाज की इस तरह की मानसिकता के बारे में अपनी बा को पत्र में लिखता है – " मनुष्य होकर भी वे मनुष्य कर्म और सामाजिकता से बहिष्कृत है। अपशकुन है – उनका जन्म कलंक है। मात्र इसलिए वे लिंग दोषी हैं। "3

समाज में किन्नरों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है – हिजड़ा , ख्वाजा , खुसरा , जनखा , छक्का , ट्रांसजेंडर , थर्ड जेंडर , आदि। किन्नर का नाम सुनते ही लोगों के मन में उनकी अजीब सी तस्वीर तथा छवि उभरती है। उनके बारे में बात करते समय लोग एक व्यंग्यात्मक हंसी हंसने लगते हैं और भद्दी – भद्दी बातें करने लगते हैं। औरते उन्हें अपने सामने देखते ही नाक – भौं सिकोड़ने लगती हैं। समाज के लोग उनके साथ खड़े होने में तथा बात करने में अपना अपमान समझते हैं। इतना ही नही वे उन्हें देखना भी पाप समझते हैं। इनकी जिल्लतभरी जिंदगी तथा इनकी दुर्दशा को देखकर भी इन पर दया तक नही करते। उनकी नजरों में किन्नर और कीड़े – मकौडों में ज्यादा अंतर

नही होता। वे किन्नर शब्द को समाज के लिए एक गाली मात्र समझते हैं। समाज में यदि किसी व्यक्ति की दुर्बलता को दिखाना या बताना हो तो उसे किन्नर जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। मतलब कि समाज में किन्नर की स्थिति गाली से अधिक और कुछ नही है। विनोद अपनी इसी स्थिति को व्यक्त करते हुए पत्र में लिखता है कि – " सुनने में किन्नर शब्द भले गाली न लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर और मर्मान्तक है , जितना हिजड़ा। किन्नर की सफेदपोशी में लिपटा चला आता है , उसकी ध्वन्यात्मकता में रचा – बसा। कोई भूले तो कैसे भूले ?....जिस दिन चम्पाबाई के सुपुर्द कर दिया गया , कसाईखाने के कपाट खुल गये। गाली हो गया मैं। हिजड़ा , हिजड़ा , हिजड़ा ! गालियों की गाली। किन्नर कह देने भर से नासूर छटक जाएंगे देह से ? "4

किन्नर बच्चे के जन्म लेने के बाद जब किन्नर समुदाय उन्हें अपने साथ लेकर अपने में शामिल कर लेते हैं तब वो अपने पारम्परिक धंधे को अपनाने के लिए विवश करते हैं। यदि कोई किन्नर उनके पारम्परिक धंधे जैसे कि नाच – गा कर कमाने से इंकार कर देता है तो किन्नर समुदाय द्वारा उन्हें प्रताड़ित किया जाता है , उन्हें तरह – तरह की शारीरिक और मानसिक चोंटें दी जाती है। उपन्यास के नायक विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली के साथ भी ऐसा ही होता है। जब वो अपने माता – पिता द्वारा किन्नरों को सुपुर्द कर दिया जाता है तब किन्नर समुदाय का सरदार भी उसे हिजड़ा बनाकर नाचने – गाने और इसी धंधे में रहकर पैसे कमाने के लिए मजबूर करता है जिसके लिए उसे मारा – पीटा जाता है तथा उसके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। विनोद अपने साथ होने वाले इस अमानवीय अत्याचार के बारे में अपनी बा को बताते हुए पत्र में लिखता है – " उनके लात , घूसे , थप्पड़ और कानो में गर्म तेल सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक – मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ , न सलमे – सितारे वाली साड़ियाँ लपेटे लिपस्टिक लगा कानो में बुंदें लटकाने को... .बहुत कुछ अविश्वसनीय वह हरकते भी , जिसने मुझे बहुत तोड़ने की कोशिश की और जिनका जिक्र मैं बा , तुझसे कैसे कर सकता हूँ। "5

विनोद किन्नर प्रजाति में जन्मा भले है किन्तु वो किन्नर समुदाय की तरह जीवन नही जीना चाहता है। वो अपनी अस्मिता के साथ गरिमापूर्ण जीवन जीना चाहता है। वो सामान्य व्यक्ति की तरह ही सम्मानजनक जीवन जीना चाहता है। वो किन्नर के पारम्परिक धंधे को नही अपनाना चाहता और न ही स्वांग रचकर मर्दों को रिझाकर पैसे कमाना चाहता है। वो पढ़ – लिखकर एक सामान्य मनुष्य की भांति कोई अच्छी सी नौकरी

करके अपना जीवन बसर करना चाहता है। वो अन्य हिजड़ों की तरह गलियों , सडकों , चौराहों पर तालियाँ पीट – पीटकर भीख नही मांगना चाहता है। विनोद एक समझदार , सुलझा हुआ व्यक्ति है जो किसी भी कीमत पर स्वयं के वजूद को बचाए रखना चाहता है , स्वयं के आत्मसम्मान को बचाए रखने के लिए वो कुछ भी कर सकता है। वो हर हालत में एक साधारण मानव की भांति जीना चाहता है न कि हिजड़ों की भांति। किन्नर समुदाय के सरदार द्वारा वो बहुत प्रताड़ित किया जाता है , उसे बहुत चोटें दी जाती है किन्तु वह फिर भी हिम्मत नही हारता अपने सपने को नही मरने देता। अपने इस जिजीविषा के बारे में बा को बताते हुए विनोद कहता है कि – " मर नही पाया तो इसलिए कि जीना चाहता था मैं सामान्य मनुष्य की भांति , उन्हीं के बीच सिर उठाकर जो नही जानते सिर उठाकर जीना। "6

सामान्य मनुष्य की भांति विवाह करके घर बसाने की लालसा किन्नरों में भी होती है। पुरुष का रूप लेकर जन्मे विनोद की इच्छा पुरुष के रूप में ही जीने की है। विनोद में भी सामान्य मनुष्य जैसे पुरुषनुमा गुण है। उसका हृदय भी सामान्य पुरुष की तरह ही सोचता है। उसकी भावनाएं भी सामान्य मर्दों जैसी ही है बस गुप्तांग की अपूर्णता उसे मर्द नही बनने देती। विनोद का भी सपना है कि वो अन्य पुरुषो की भांति अपने मन चाही लड़की से विवाह करे तथा एक सुखी वैवाहिक जीवन जिए। वो भी सामान्य पुरुष की भांति भरे – पूरे परिवार की कल्पना करता है। वो भी चाहता है कि उसके भी घर आंगन बच्चों की किलकारियां गूंजे। वो अपने इस सपने के विषय में अपनी बा से कहता है – " तब मुझे समझ नही थी न बा। ज्योत्सना के काबिल नही हूँ न मैं। मुझे लगता है बा , मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरुर करता। सब कुछ बता देता उसे। कह देता , तू मुझसे फेरे भर ले ले। अपनी इच्छाऐ जीने के लिए तू स्वतंत्र है। बच्चा हम गोंद ले लेंगे। गोंद नही लेना चाहती तो जिससे मर्जी हो बच्चा पैदा कर ले। ख़ुशी – ख़ुशी मैं उसे अपना नाम दूंगा। वे सारे सुख दूंगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है। "7

विनोद का सपना है सामान्य मनुष्य की भांति गरिमापूर्ण जीवन जीने की। इसके लिए वो अथक प्रयास भी करता है। वो किन्नरों की टोली में रहने के बावजूद भी उनके परम्परागत पेशे को नही अपनाता है। वो मेहनत करता है , लोगों की गाडियां साफ करता है , कम्प्यूटर आदि चलाकर पैसे कमाता है। उसका सपना है कि वो अपनी पढाई किसी भी तरह पूरा करके कहीं अच्छी जगह नौकरी करने की। उसको बार – बार महसूस होता है कि यदि वो सामान्य होता तो उसके पिता उसे पढने देते इस तरह बीच में ही

उसकी पढ़ाई छुडवाकर किन्नर समुदाय के हवाले न कर देते। अपने अविकसित लिंग के कारण परिवार व समाज से बहिष्कृत विनोद अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करता है। वह किन्नरों के पारम्परिक पेशे भीख मांगने , नेग मांगने के बिल्कुल भी पक्ष में नही है। वह किन्नर गुरु के अत्याचारों , मार – पिटाई के बावजूद भी यह सब काम न करके अपनी पढाई जारी रखता है। किन्नरों के बीच में रहकर भी वो अपने स्वाभिमान को जिन्दा रखता है। वो किन्नरों के बीच रहते हुए अपनी स्थिति के बारे में अपनी बा को बताते हुए लिखता है कि – " समझ गए हैं। गाली – गलौज और धौंस – पट्टी से वह मुझसे मनचाहा काम नही करवा सकते। धोती उठाकर मैं उनकी भांति लम्बी गाड़ी वालों से भीख तो मांग सकता नही।...कोशिश में हूं बा। उनसे छिपकर कोई बड़ा काम सीख सकूं ताकि किसी भी रूप में उन पर निर्भर न रहूं। अधूरी शिक्षा आड़े आ जाती है। गाडियां मजबूरी में धोता हूं। कहीं और भाग सकता नही। "8

समाज में यदि किसी के घर में किन्नर बच्चा जन्म लेता है तो लोग उसे कलंक समझते हैं , उस बच्चे को अपनी सामाजिक मान – मर्यादा पर एक गाली समझते हैं जिससे जल्द से जल्द वो मुक्त होना चाहते हैं। माता – पिता तो अपनी झूठी शान के आगे आकर अपनी किन्नर औलाद को खुद से अलग कर देते हैं और उसके बाद उसकी खबर तक नही लेते हैं। लेकिन किन्नर बच्चे के मन में अपने माता – पिता , भाई – बहिनों तथा परिवार के प्रति हूक उठती है। वो उनसे मिलने के लिए तड़पता रहता है। उसका भी मन होता है कि वो अपने परिवार के बीच रहे। उसे भी अपने माता – पिता का वात्सल्य तथा भाई – बहिनों का स्नेह मिले। लेकिन उसकी ये इच्छा कभी पूरी नही होती। वो अपने इन्ही अधूरे सपनो के साथ जीता है और एक दिन अकेले ही ऐसे मर जाता है। उपन्यास में जब विनोद किन्नरों के समूह में भाषण दे रहा होता है उसी बीच एक बूढा किन्नर अपनी इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहता है – " मन हुलसा। चला गया बाप से मिलने। बेमुरब्बत ने डंडा लेकर दौड़ा लिया गांव के बाहर। सरापने लगा। तेरी जगह साबूत बेटा पैदा हुआ होता तो इस उमर में सहारा बनता करमजला तू किस काम का हमारे लिए। जा , जाके डूब जा किसी गड़ही में। खबरदार , पलटकर मुंह न दिखाना। वरना बिन ब्याही बेटियों को घर बैठना पड़ेगा कलंकी। "9 किन्नरों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार का जिम्मेदार जितना अधिक समाज है उससे कही अधिक वो माता – पिता जिम्मेदार हैं जो किन्नर बच्चे को जन्म देकर उनका परित्याग कर देते हैं। जो अपने बच्चे को अपना नाम तक नही देते। उनसे उनकी पहचान छीन लेते हैं। ठेल देते हैं उन्हें नर्क में

एक गुमनाम तथा जिल्लतभरी जिंदगी जीने के लिए। यदि माता – पिता चाहे तो अपने किन्नर बच्चे को अपनाकर , उन्हें पढ़ा – लिखाकर एक इज्जत भरी जिन्दगी दे सकते हैं लेकिन वो ऐसा नही करते। विनोद इस नारकीय जीवन का भुग्तभोगी है। विनोद अपनी इस स्थिति का जिम्मेदार अपने माता – पिता को मानता है। उसके मन में बार – बार यह प्रश्न उठता है कि क्या उसके माता पिता उसे अपने साथ अपने घर में नही रख सकते थे ? क्या जननांग विकलांगता इतना बड़ा दोष है कि इस तरह के बच्चे को घर से ही निकाल दिया जाए ? क्या सिर्फ इसी एक दोष के कारण एक किन्नर बच्चे को घर – परिवार , रिश्ते – नातों से दूर होकर नरक की जिंदगी जीनी पड़े ? परिवार से बिछुड़ने के बाद एक किन्नर बच्चे को किस तरह की जिंदगी मिलती है , उसे किन – किन समस्याओं एवं पीडाओं से होकर गुजरना पड़ता है , क्या इसका आभास भी है किसी को ? शायद नही ! क्योंकि परिवार वाले तो उसे एक बार अपने घर से निकाल कर सदा के लिए अपने जीवन के उस कलंक से मुक्त हो जाते हैं , लेकिन उन्हें यह तक नही पता उसके बाद उस बच्चे की क्या स्थिति हो जाती है। परिवार द्वारा त्यागा गया बच्चा समाज के लिए पायदान हो जाता है जिस पर जो आये पैर रगड़ कर चला जाए। जब पिता – भाई जैसे आत्मीय रिश्ते भी ऐसे बच्चे के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं , उसे अस्वीकारते है तो समाज से कैसे इसकी उम्मीद की जा सकती है। विनोद अपने मन की व्यथा को अपनी बा को बताते हुए कहता है कि – " तूने मेरी बा तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हांथ मासूम बकरी – सा सौंप दिया। मेरे सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्यवाही क्यों नही की ? क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने , जिसके लिए मैं दोषी नही था। "10

समाज के अन्य वर्ग तथा समुदाय की भांति किन्नर भी अपना एक संगठित समुदाय बनाकर रहना चाहते हैं। वो भी समाज के अन्य वर्ग की भांति समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहते हैं। इसके पीछे कहीं न कही असुरक्षा का भाव छुपा हुआ है। उन्हें डर है कि समाज का अन्य वर्ग उन्हें सम्मान से जीने नही देगा क्योंकि समाज उन्हें इसी रूप में देखना चाहता है। और खुद किन्नरों को भी लगता है कि अपने समुदाय से कटकर जीवन और दूभर हो जाएगा। यहाँ पर उनकी अपनी एक अलग ही दुनिया है , जहाँ पर उनके ही जैसे लोग हैं , यहाँ पर उन पर हंसने वाला या फब्तियां कसने वाला कोई नही है , यहाँ अपने लोगों के बीच में वो सुरक्षित है। बाहर तो कोई उन्हें अपनाने वाला भी नही है। यहाँ कम से कम उनका अपना एक सामुदायिक परिवार तो है जो उनके सुख – दुःख में उनके साथ बराबर खड़ा रहता है। विनोद किन्नर की इस स्थिति के बारे

में अपनी बा को पत्र में लिखते हुए कहता है – " जिन्होंने अपने मानसिक अनुकूलन को ही अपनी नियति मान लिया और हाशिए के उस नरक की शर्तों को अपने जीवन का पर्याय।....यह भीतर से खोखले और डरे हुए लोगों की जमाते हैं। ये चाहते हैं जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है उसी रूप में ही सही , उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने , उनकी ताकत में इजाफा हो। "11

परिवार , समाज , के साथ – साथ खुद किन्नर या थर्ड जेंडर भी अपनी दुर्दशा का जिम्मेदार है। वह खुद भी इस नर्क से निकलना नही चाहता। वो इसे ही अपनी नियति मान इसी तरह जीवन जीना चाहता है। इसे किन्नर जीवन की विडम्बना कहे या फिर उसकी त्रासदी कि यदि एक बार कोई किन्नर , किन्नर समुदाय में शामिल हो जाता है तो आजीवन उसे उसी में ही रहना पड़ता है। उसे न चाहते हुए भी उसी माहौल में घुट – घुटकर जीना पड़ता है। यदि कोई किन्नर उस बदनाम गलियारे से निकलना भी चाहे तो उसे निकलने नही दिया जाता है। उपन्यास के नायक विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली के साथ भी ऐसा ही होता है। जब वो किन्नर समुदाय के व्यवसाय को ठुकराकर , उनके समुदाय से अलग होकर इज्जतभरी जिंदगी जीना चाहता है और अपने घर वापिस लौटकर पारिवारिक जीवन जीना चाहता है तो उसे किन्नर समूह के सरदारों या किन्नर गुरुओं द्वारा मरवा दिया जाता है। उन्यास के अंत में विनोद की मौत इस मानसिकता का जीता जागता सबूत है। यह सिर्फ विनोद की मौत नही है बल्कि एक विचारधारा की मौत है जो किन्नर समाज को एक नया मार्ग दिखा रही थी – " मुम्बई 27 दिसम्बर। कुर्ला , कालीन काम्प्लेक्स से लगी हुई मिठी नदी में पुलिस ने एक किन्नर की फूली लाश बरामद की है। शव की शिनाख्त नही हो पाई है। सिर बुरी तरह कुचला हुआ। पुलिस इस वारदात को आपसी रंजिस का नतीजा मान रही है। उसका अनुमान है , हत्या का सम्बन्ध अंडरवर्ल्ड में इन दिनों सक्रिय ' मुन्ना भाई ' किन्नर गिरोह से हो सकता है। "12

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस उन्यास में चित्रा मुद्गल ने समाज की मुख्य धारा से अलग किन्नर समुदाय की संवेदनाओं को दिखाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में किन्नरों के दुःख – दर्द , पीड़ा , तथा उनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार का यथार्थ चित्रण किया गया है। किन्नरों को लेकर मुख्यधारा के लोगों की जो मानसिकता रही है लेखिका ने इसमें लोगों की उस मानसिकता को बदलने , किन्नरों को भी अपने ही जैसा सामान्य मानव मानने तथा उनके प्रति सहज मानवीय संवेदना रखने का संदेश दिया

है। अतः कहा जा सकता है कि किन्नरों की सामाजिक स्थिति सुधारने में यह उन्यास मील का पत्थर साबित हो सकता है।

संदर्भ : –

(पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्‌गल)

1 % नाला सोपारा : चित्रा मुद्‌गल : पृष्ठ – 11

2 % वही : वही : पृष्ठ – 50

3 % वही : वही : पृष्ठ – 185

4 % वही : वही : पृष्ठ – 42

5 % वही : वही : पृष्ठ – 9

6 % वही : वही : पृष्ठ – 157

7 % वही : वही : पृष्ठ – 30

8 % वही : वही : पृष्ठ – 25 – 26

9 % वही : वही : पृष्ठ – 194

10% वही : वही : पृष्ठ – 11

11% वही : वही : पृष्ठ – 50

12% वही : वही : पृष्ठ – 224

21.स्त्री विमर्श

–डॉ.मेधा वि.देशपांडे
प्रोफेसर, गृहअर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, श्रीमती सु.रा.मो.म.म.खामगांव

प्रस्तावना –

गर्भातल्या मुलीला छळण्यास सज्ज झाले
काही घरात तेथे सारेच कंस झाले
जन्मली आदिमाया स्त्री ची विराट ख्याती
तरी मुली घरी त्या शिळेच रोज खाती
मुलास रोज छान आराम तुप रोटी
मुलीस छळ फार कामाची रोज दाटी

या कवितेच्या ओळी मा. श्रीपाद वैद्य यांच्या आहेत. या ओळी स्त्री विषयक विचार मंथन करायला भाग पाडतात.

स्त्री विमर्श याचा अर्थ माझ्या मते स्त्री विषयीचा आढावा, पुरुष प्रधान संस्कृतीत दीर्घकाळ स्त्री ला पुरुषाचे दास्यत्व करावे लागल्याचे व लागत असल्याचे अनेक दाखले मिळतात. त्यामुळे अशा वेळी स्त्रीच्या अधिकारांविषयी पुन्हा एकदा नव्याने केलेली चर्चा म्हणजे स्त्री विमर्श होय.

स्त्री जीवनाविषयी प्रचीन युग काळ, मध्ययुगीन व आधुनिक युग काळ ह्या तिन्ही काळात डोकावणे आवश्यक ठरते.

उद्दिष्टये –

- स्त्री जीवनाविषयी प्राचीन, मध्ययुग व आधुनिक काळाचा आढावा घेणे.
- स्त्रीयां विषयी विचारमंथन करणे

अ) प्राचीन काळातील स्त्री जीवन

प्राचीन भारतीय इतिहासाने स्त्रियांना पवित्र ईश्वरी दर्जा प्रदान केला आहे. लक्ष्मी, दुर्गा व सरस्वती ह्या तिघींना अनुक्रमे समृध्दी, शक्ती व बुध्दिमत्तेच्या प्रतिकात्मक देवता मानल्या गेल्या ज्या ठिकाणी स्त्री ची पुजा होते त्या ठिकाणी परमेश्वर वास करतो. असा उल्लेख प्राचीन धर्मग्रंथात सापडतो.

'यत्र नार्यस्तु पुज्यंते,
रमन्ते तत्र देवता'.

स्त्रीच्य ा समाजातील स्थानाच्या अनुषंगाने वैदिक युगाला 'सुवर्णकाळ' असे म्हणता येईल. कारण या काळात स्त्री ची अत्यंत प्रगत अवस्था होती. वैदिक काळातही पितृसत्ताक पध्दतीमुळे पुत्रजन्माला विशेष महत्व दिल्या जात होते तरी मुलींना मुलांप्रमाणे सर्व सुविधा प्राप्त करुन दिल्या जात असत. याचा संदर्भ आढळुन येतो. जसे : ऋषी शांडिल्य यांची कन्या 'श्रावंती' त्या काळी एक अद्वितीय तपस्विनी साध्वी होती.

तर 'सुलभा' नावाच्या विदुषी ऋषीकन्येने बहुज्ञानी राजा जनकाला आपल्या विद्वत्ता व शास्त्रातील ज्ञानामुळे चकीत केले.

वेदांमध्ये स्त्रीचे शील, गुण, शिक्षण, कर्तव्य तथा अधिकाराच्या बाबतीत विस्तृत वर्णन केलेले दिसुन येते. वैदिक साहित्या वरुन असे दिसुन येते की, आपल्या देशात स्त्रियांना मोठे गौरवपुर्ण स्थान देण्यात येत होते. स्त्रियांच्या शिक्षण आणि दिशेसाठी उत्तम व्यवस्था होती आणि स्त्रिया राजनैतिक, सामाजिक तसेच प्रशासनात्मक कार्यात अतिशय महत्वपुर्ण भुमिका पार पाडत असत.

प्राचीन काळी भारतात प्रामुख्याने वैदिक काळात स्त्रियांना शिक्षणाचे अधिकार पुरुषांप्रमाणेच होते. इला वेदकाळात प्रसिध्द विदुषी व धर्मप्रमुख होती तिच्या विद्वत्तेवर अनेक विद्वान प्रभावित झाल्याचे दाखले आढळुन येतात.

महर्षी वसिष्ठांच्या आश्रमात राहुन 'शक्ति ही ऋषीकन्या इतकी प्रवीण झाली की तिच्या तोडीचा पती शोधणे कठीण होवुन बसले होते. स्वयं इंद्राने या कन्येला राजमहिर्षी करण्याची इच्छा प्रगट केली. हिच कन्या पुढे इंद्राणी झाली. वैदिक काळात स्त्रियांची स्थिती मानाची होती सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रात स्त्रियांनी महत्वाचे कार्य केले. लोपामुद्रेने ऋग्वेदाचे अध्यापन कार्य केले. गांधर्व गृहिता हिने धर्मशास्त्रावर व्याख्याने दिली. मात्र हळुहळु बदल होत असलेले दिसु लागले. आणि स्त्रियांना विवाहा व्यतिरीक्त कुठल्याही धार्मिक संस्कारात वेदमंत्राचा उच्चार वर्जित करण्यात आला होता. याच काळात सदैव पुरुषांच्या आधीन राहण्यासाठी नियमावली तयार करण्यात आली.

मध्ययुगीन काळ

वैदिक काळ स्त्रियांच्या बाबतीत अतिशय चांगली गेला तर उतरती कळा मात्र मध्ययुगापासुन आरंभ झाली. पुरुष प्रधान संस्कृती ने डोके वर काढले त्यामुळे मुलींच्या बालविवाहाला प्राधान्य दिले जाऊ लागले. विधवा विवाह पुर्णपणे बंद झाले. सतीप्रथेला उत आला. स्त्रियांना जन्मापासुन मृत्युपर्यंत पुरुषाचे आधीन करुन त्यांचे समस्त अधिकार व स्वतंत्रता काढुन घेण्यात आली. या काळात मोगल साम्राज्याची स्थापना झाल्यामुळे उपरोक्त

सर्व बाबी जसे सतीप्रथा बालविवाह पडदाप्रथा इ. वर्णीलेल्या जास्तीत जास्त फोफावत चालल्या होत्या.

सोळाव्या शतकात राम चरीतमानस मध्ये संत तुलसीदास ह्यांनी

'ढोल गवॉर, शुद्र, पशु, नारी,
सकल ताडना के अधिकारी'

असे 'अवधी' भाषेत लिहिले. पुरुषप्रधान संस्कृतीने या चौपाई चा स्वतःच्या सोईचा अर्थ लावला जसे : स्त्री ला मारल्यावरच ती व्यवस्थित वागते व राहते अन्यथा डोक्यावर मीरे वाटते.

मध्ययुगीन काळात स्त्री ने फक्त चुल व मुल च सांभाळायचे. स्त्रियांना अक्कलच नसते, स्त्री ही पायातली वाहण पायातच राहिली पाहिजे, कुठलेही निर्णय घेण्याची क्षमता स्त्री मध्ये असुच शकत नाही. स्त्रियांना शिक्षण नकोच. स्त्रियांनी घराच्या बाहेर पडायचे नाही, मोठ्याने बोलायचे नाही,पडद्यात राहायचे, गाणे शिकायचे नाही. नृत्य तर फारच दुर राहिले.

- स्वतःचे वर्चस्व टिकविण्याकरीता पुरुषप्रधान व्यवस्थेने अशा सर्व भ्रामक कल्पनांना खतपाणी घातले.
- स्त्री ही केवळ उपभोग्य वस्तु, स्त्री ने कबाडकष्ट करायचे, राबराब राबायचे परंतु एक 'ब्र' अक्षर ही तोंडातुन बाहेर येता कामा नये. अशा जाचक अटी पण स्त्री वर लादल्या जायच्या तसेच एकदा मुलीचे लग्न करुन दिल्यावर तिचा सासरी किती ही छळ होत असला तरी तिची अंत्ययात्रा त्याच घरातुन निघेल हे तिच्यावर लहान पणापासुन बिंबवले जायचे. त्यामुळे स्त्रिच्या जवळ छळ सहन करण्याशिवाय पर्याय नसायचा.

याचाच अर्थ मध्ययुगीन काळातील पुरुषप्रधान समाजात स्त्रियांना मानाचे स्थान नव्हते.

परंतु कुटूंब , समाज, राष्ट्र तथा प्रशासनाच्या योग्य कार्यासाठी महिलांना शिक्षीत करणे अत्यावश्यक असण्यावर भर महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, रमाबाई पंडित, स्वामी दयानंद. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर इ. थोर पुरुषांनी दिला

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर हे केवळ दलितांचे कैवारी नव्हते तर प्रथम स्त्री कैवारी होते. स्त्रियांना पुरुषांप्रमाणे समान हक्क मिळण्यासाठी त्यांनी अनेक चळवळी केल्या. भारतीय स्त्रिया कायदेशिर, समाजिक व राजकीय दर्जा वाढण्याच्या दृष्टिने बाबासाहेबांनी 1927 ते 1956 दरम्यान सातत्याने प्रयत्न केला व संविधान तयार करुन त्यात स्त्री विषयक कलमे टाकली.

आधुनिक युग –

15 ऑगस्ट 1947 साली भारताला स्वातंत्र्य मिळाले म्हणजेच ब्रिटीशांच्या गुलामगिरीतुन भारत देश सुटला. या आधुनिक युगात स्त्रियांची स्थिती मध्ययुगापेक्षा चांगली असणे गरजेचे होते कारण भारताला स्वातंत्र्य मिळाले. परंतु वास्तविकता काही वेगळेच दर्शविते.

राज्य घटनेच्या तरतुदीनुसार डॉ.बाबासाहेबांनी समाजातील अनिष्ट चालीरीती दुर केल्या विशेषतः कलम 14 व कलम 18 मध्ये स्त्री व पुरुष यांच्यात कोणताही भेद न करता समानता मानली आहे. प्रत्यक्षात मात्र कूटूंबात स्वतःच्या दोन अपत्यामध्ये आईवडीलच भेद करतांना आढळुन येतात. अपत्ये एक मुलगा व एक मुलगी असल्यास उपरोक्त कवितेतील ओळीनुसार मुलीला शिळे पाके तर मुलाला चांगले चुंगले पौष्टिक खायला दिले जाते.

प्रत्यक्षात 21 व्या शतकाच्या उंबरठ्यावर गर्भलिंग परीक्षण करुन मुलगी असल्यास गर्भपात केला जायचा. दि. 26 नोव्हेंबर 2021 च्या लोकसत्तेच्या अग्रलेखात 2019–20 सालचा केंद्रीय आरोग्य मंत्रालयाकडुन प्रस्तुत केलेल्या अहवालाबद्दल उल्लेख आहे. त्यातील आकडेवारीनुसार प्रथमच महिलांचे जन्मप्रमाण पुरुषांपेक्षा अधिक असल्याचे दिसते म्हणजेच स्त्रीभृण हत्येसारखा गलिच्छ दुर्दैवी प्रकार काही प्रमाणात का असेना कमी होवु लागला आहे ही अत्यंत समाधानाची बाब आहे. पण त्याचबरोबर आपल्या देशातील एकुण महिलांतील निम्म्यापेक्षा अधिक महिला या कुपोषित किंवा अशक्त आहे आणि एक चतुर्थांश महिला स्थुलत्वग्रस्त आहेत ही बाब निश्चीतच खेदजनक आहे.

मध्ययुगीन काळापेक्षा स्त्रियांच्या शिक्षणाचे प्रमाण तर वाढलेच त्याचबरोबर पुरुषांच्या तुलनेत प्रमाण तर वाढलेच त्याचबरोबर पुरुषांच्या तुलनेत स्त्रिया कुठल्याही क्षेत्रात मागे नाही.

जसे : वैमानिक अंतराळवीर, डॉक्टर, इंजिनिअर, ब्|ए शास्त्रज्ञ, शिक्षीका, उद्योजक इ.इ. स्त्रियांनी कितीही गगन भरारी घेतली तरी, कुटूंबाच्या अर्थार्जनासाठी बाहेर पडली तरी तिला घर व बाहेरचे दोन्ही जबाबदाऱ्या पार पाडाव्या लागतात. पुरुष मात्र बाहेरुन आल्यावर थकतो.

स्त्री ने–घरी आल्यावर भांडी, धुणी, स्वयंपाक आला गेला पै पाहुणा सारेच बघायचे पण पुरुषाने मात्र घरातील कामाला हात लावल्यास त्याला स्वतःलाही व त्याच्या पालकांनाही चालणारे नसते, घरचे काम करण्यात 'स्व' आडवा येतो , कमीपणा वाटतो.

स्त्रियांना राजकीय दृष्ट्या सक्षम बनविण्यासाठी स्व. पंतप्रधान श्री. राजीव गांधी यांनी पंचायतराज व्यवस्थेत महिलांसाठी 33ः आरक्षण ठेवण्याची योजना तयार केली त्यामुळे स्त्रीया घराबाहेर पडुन ग्रामीण भागात सरपंच होवु लागल्या पण तिचा पती फक्त तिच्या सही घेवुन सर्व कारभार स्वतःच्या हाती घेतो तिला कोणताही निर्णय घेवु देत नाही. हे आधुनिक युगाचे विदारक सत्य होय.

कायद्याने कागदावर खुप गोष्टी बंद आहेत परंतु प्रत्यक्षात हुंडा पध्दती अप्रत्यक्षरीत्या सुरु आहे. मुलीच्या आईवडिलांना लग्न चांगले लावुन द्या. सगळ्यांचे डोळे दिपले पाहिजेत. व सालंकृत कन्यादान 'करा' एवढेच म्हणणे आहे बाकी काही नाही असे सांगितले जाते.

कायद्यानुसार वडिलांच्या संपत्तीत मुलीचा देखील मुलाच्या बरोबरीचा वाटा असतो पण किती मुलींना खरोखरच हा वाटा मिळतो. हे प्रश्नचिन्ह आहे.

वंशाला दिवा असायलाच हवा म्हणुन तळहातावर पोट असुन देखील स्त्री च्या आरोग्याचा विचार न करता पाच सहा मुलींच्या पाठीवर मुलगा होण्यासाठी स्त्री वर गर्भारपण लादले जाते.

बालविवाह प्रतिबंधक कायदा असुन देखील न जुमानता मुलींची लग्न 15–16 व्या वर्षीच केली जातात व तिच्यावर लैगिक अवयव परीपक्वतेपुर्वीच 'मातृत्व' लादले जाते.

स्त्री पुरुष एक समान काम करीत असतील उदा. शेतमजुरी. पुरुष शेतमजुराला स्त्री पेक्षा मजुरी जास्त मिळते.

स्त्री जरी भक्कम पगाराची नोकरी करीत असुन उच्च पदावर जरी असली व तिच्या आई वडिलांसाठी पैसे खर्च करायची वेळ आली तर नवऱ्याची परवानगी घ्यावी लागते. पण पुरुष मात्र पत्नीला विचारात न घेता पैसा स्वतःच्या आईवडिलांवर खर्च करीत असतो.

इतकेच काय लग्नाआधी स्त्री नोकरी करीत असल्यास तिच्या पैशावर वडील व भाऊ कमाईवर हक्क सांगतात व लग्नानंतर पती.

एवढेच नव्हे तर कुटूंब नियोजन करायचे असल्यास वापरावयाची साधने स्त्रियांनाच. कुटूंब नियोजनाचे ऑपरेशन स्त्रिनेच करावे ही पतीची अपेक्षा कारण त्याचे स्वतःचे आरोग्य उत्तम राहिले पाहिजे.

भारताला स्वातंत्र्य मिळुन 75 वे वर्ष सुरु आहे तरी स्त्री मात्र पारतंत्र्यातच असल्याचे आढळुन येते.

आपल्याच देशात तिला रात्रीच एकटं फिरणे कठीण होवुन बसले आहे कारण काही पुरुषातील पुरुषी विकृती, अहंकार, स्त्रीकडे बघण्याची उपभोग्य वृत्ती यामुळे दिवसेंदिवस बलात्कारा सारख्या घटनांमध्ये वाढ होतांना दिसुन येते.

निष्कर्ष –

- प्राचीन वैदिक काळात स्त्रियांची स्थिती उत्तम होती जिला पुरुषाच्या बरोबरीने शिक्षणाने वेदमंत्र उच्चारण्याचे अधिकार असल्याचे दिसुन येते.
- मध्ययुगीन काळात मात्र स्त्रियांना अजिबात मानाचे स्थान नसल्याचे दिसुन येते.
- आधुनिक काळात सर्व प्रकारचे कायदे स्त्रियांच्या बाजुचे आहेत परंतु ते कागदावरच त्या कायद्यांचे उपयोजन योग्य त्या प्रमाणात होत नसल्याचे आढळुन येते.

उपाययोजना –

- गर्भलिंग निदानावर पुर्णपणे बंदी घातली गेली पाहिजे.
- बालविवाह प्रतिबंधक कायद्याची कडक अमलबजावणी व्हायला हवी.
- पुरुष नसबंदीला प्रोत्साहन दिले गेले पाहिजे.
- लहान कुंटूब संकल्पना अमलात आणली गेली पाहिजे.
- स्त्री पुरुषांना समान काम समान वेतन असावे.
- प्रत्येक कूटूंबात लहानपणापासुनच मुलींच्या बरोबरीने मुलांना पण सर्व कामे करण्याची सवय लावायला हवी.
- लहानपणापासुन मुलांची वर्चस्वयुक्त मानसिकता बदलायला हवी. पितृसत्ताक पध्दतीचे भुत मुलांच्या मानगुटीवरुन उतरविणे गरजेचे ठरते.
- मुल व मुली दोघांनाही औपचारीक शिक्षणाबरोबर लैगिक शिक्षणही दिले जायला हवे.

उपरोक्त उपाययोजनांची अंमलबजावणी योग्यरीत्या केल्या गेल्यास पुरुष विमर्श या विषयावर चर्चासत्रे, लेख कधीही वाचनात येत नाही तसेच 'स्त्री विमर्श' या विषयावर सुध्दा भाष्य करावे लागणार नाही हे निर्विवाद सत्य आहे.

संदर्भसुचि–

• ह्युमन राईटस समाचार (2000) भाग 7, अंक

1 जनवरी 2000
राष्ट्रीय मानव अधिकार
आयोग, नई दिल्ली

- प्रा.लोखंडे, अरुणा (2006) 'डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांचे
स्त्रीविषयक विचार'
वसुंधरा,देशोन्नती
दि.14/04/2006

- श्रीवास्तव रमेशचंद्र (2001) 'महिलाओंकी स्थिती और
विकास' समाज कल्याण,
जुलाई

- प्रा.टेकाडे, कल्पना (2006) 'महिलांचे राजकीय
सशक्तीकरण' वसुंधरा,
देशोन्नती
दि.24/03/2006

22. 21वीं सदी के उपन्यासों में वृद्ध विमर्श

–मोक्षदा जोहारी

अभिवादनशीलस्य नित्यंवृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम।।

भारतीय संस्कृति में वृद्धों का सम्मान हमेंशा से किया जाता रहा है, वे प्रकाश पुंज और हमारी परंपरा के प्रतीक हैंवे अनुभव की खान और हमारी धरोहर हैं ।जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सदैव जमीन पर टिकी रहती है और उसकी टहनिया आकाश में स्वच्छंद विचरण करती रहती है , टहनियों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है, उसी प्रकार बुजुर्ग भी हमारी नींव है तथा सभ्यता संस्कृति से गहराई से जुड़े हैं, जो संस्कार हमें किताबों के अध्ययन से नहीं मिलता वह संस्कार हमें अपने बड़े बुजुर्गों से मिलता है इनके बिना भावी पीढ़ी के चरित्र निर्मा.ा की कल्पना नहीं की जा सकती ।साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, साहित्य का मनुष्य के जीवन में विशेष स्थान है, समाज में व्याप्त घटनाओं,प्रवृत्तियों, परिस्थितियों को साहित्य में चित्रित किया जाता है, साहित्य ही समाज की समस्याओं पर विमर्श करने की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

21वीं सदी में हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, मीडियाविमर्श आदि अनेक विषयों पर विमर्श जारी है, वर्तमान में समाज में युवा पीढ़ी का वर्चस्व है और उसे देखते हुए वृद्ध विमर्श करना उचित ही है–
वृद्ध का शाब्दिक अर्थ पका हुआ या परिपक्व होता है और वृद्धावस्था एक धीरे–धीरे आने वाली अवस्था है जो कि एक स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना है,

विमर्श शब्द को साधारण अर्थ में विचार,विवेचन, परीक्षण के रूप में लिया जाता है। इस प्रकार वृद्ध विमर्श का अर्थ है वृद्धावस्था की परिस्थितियों घटनाओं आदि का चिंतन करना उनकी समस्याओं को समझ कर उनके लिए उचित समाधान करना। देखा जाए तो प्राचीन काल से ही वृद्ध विमर्श को साहित्यमेंस्थान मिला है – रामायण में राम ने अपने वृद्ध पिता के कहने मात्र से वन गमन किया महाभारत में

चंद्रवंशी राजा नहुष के पुत्र ययाति द्वारापुत्रपुरूका यौवन प्राप्त कर उसे अपनी वृद्धावस्था देना। महाभारत में ही एक तरफ भीष्म पितामह,द्रोणाचार्य,कृपाचार्य, विदुर जैसे अनुभवी,ज्ञानी,तपवेत्ता हैंतो दूसरी और अहंकारी दुर्योधन, दुशासन, कर्ण आदि जैसे युवा, जिन्होंने वृद्धों के परामर्श को अनदेखा कर युद्ध का मार्ग अपनाया जिसका परिणाम आप सब जानते ही हैं – महाविनाश हुआ। वहीं इच्छा मृत्यु का वरदानपाए वृद्ध पितामह मृत्युशैया पर पड़े युधिष्ठिर को नीति,शांति,अहिंसा, राजधर्म का उपदेश देते हैं। हिंदी साहित्य जगत में आज अनेक रचनाकार वृद्धावस्था की समस्या को केंद्र में रखकर सहिसत्य रचना कर रहे हैं, इसका आरंभ प्रेमचंद की बूढ़ीकाकी कहानी से हुआ जिसमें यथार्थ का मार्मिक चित्रण हुआ है, प्रेमचंद जी की अन्य कहानियों – बेटों वाली विधवा, पंच –परमेश्वर, ईदगाह, अलगोजा, नमक का दरोगा आदि में भी वृद्धों की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है, उनके उपरांत यह एक परंपरा से चल पड़ी जिसमें चीफ की दावत,वापसी,बीच बहस में, फोटो का सच,यह क्या जगह है दोस्तों,पेंशन,बुढ़िया, आदि कहानियों के अलावा समकालीन हिंदी उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई एक दर्जन उपन्यास हमें बुजुर्ग पीढ़ी के असंतोष उनकी समस्याओं का जिक्र करते मिलते हैं जिसमें मस्तराम कपूर का–विषयपुरुष,पंकज बिष्ट – उसचिड़िया का नाम, काशीनाथ सिंह– रेहन पर रग्घू, चित्रा मुद्गलका–गिलिगडूनिर्मल वर्मा का अंतिम अरण्य,हृदयेशका– चार दरवेश, अज्ञेय का अपने अपने अजनबी, कृष्णा सोबती का समय–सरगम, ममता कालिया का दौड़, रविंद्र वर्मा का पत्थर ऊपर पानी, आखरी मंजिल, विजय शंकर राही– जीने की राह, सूरज सिंह नेगी के उपन्यास वसीयत, रिश्तों की आंच नियति चक्र, यह कैसा रिश्ता है आदि।

पंकज बिष्ट का उपन्यास उसचिड़िया का नाम आधुनिकता और परंपरा के टकराव को चित्रित करता है उपन्यास में एक अवकाश प्राप्त पिता की बीमारी और फिर उनकी मृत्यु के बाद उनके अंतिम संस्कार के लिए शहर से गांव पहुंचे भाई बहन की कथा के माध्यम से सामाजिक पारिवारिक संबंधों की सच्चाई को उजागर करता उपन्यास है

काशीनाथ सिंह का उपन्यास रेहन पर रग्घू एक वृद्ध पिता के परिवार से मोहभंग की दास्तान है परिवार का बिखरना बूढ़े रघुनाथ का अकेलापन बेटों से दूरी जमीन जायदाद के झगड़े और अंततः रघुनाथ का अपहरण।

चित्रा मुद्गल का गिलीगडु उपन्यास बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी दो पात्रों को केंद्र में रख वृद्धावस्था की कारुणाक अवस्था को अत्यंत संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। वृद्धावस्था में शारीरिक परेशानियां, अकेलापन, पारिवारिक त्रास,तिरस्कार, नई पीढ़ी और बच्चों की अत्याधुनिक व्यवस्त्ताओं के चलते नाती–पोतों के साथ अपने अरमानों को पूरा न कर पाने की विवशता आदि का सशक्त चित्रण किया है।दूसरे पात्र कर्नल स्वामी की स्थिति और भी बदतर है जो जीवन भर दुनिया के सामने झूठा काल्पनिक प्रपंच रचते रहते हैं कि वे भरे–पूरे परिवार में बहुत सुखी जीवन जी रहे हैं पर वास्तविकता दिल दहला देने वाली है, क्रुद्ध श्रीनारायण ने पिता पर हाथ उठा दिया, कर्नल स्वामी के रोने चीखने का आर्तस्वर सुनकर मिस्टर एंड मिसेज श्रीवास्तव का दिल दहल उठा। श्रीनारायण से उन्होंने दरवाजा खोल देने की चिरौरी की, श्रीनारायण ने भीतर से ही उनको आपसी मामले में दखल न देने की धमकी दी घबराए श्रीवास्तव जी ने डायल हंड्रेड कर पुलिस सहायता बुला ली, पुलिस ने दरवाजा खुलवाया, लहूलुहान कर्नल स्वामी को अस्पताल ले जाया गया।

चार दरवेश 4 बुजुर्गों रामप्रसाद, शिवशंकर, दिलीपचंद और चिंताशरण की कथा है यह चारों एक जैसे ना होकर अपनी प्रकृति और मिजाज में एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं, अलग–अलग जीवन स्थितियों में रहते हुए भी उनकी नियति एक है –

रामप्रसाद अपने घर में बेटी दामाद के साथ रहते हैं धीरे–धीरे स्थिति यह हो जाती है कि वह अपने ही घर में निर्वासित और उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हैंअपनी छोटी–छोटी इच्छाओं की पूर्ति ना होना उनकी त्रासदी है, कुत्ते के काटने से अंततः एक दिन उनकी मौत हो जाती है।

शिवशंकर बेटे के कहने पर अपना घर बार बेचकर अपना अच्छा खासा सामाजिक जीवन छोड़कर उनके यहां रहना स्वीकार कर लेते हैं उनकी असल त्रासदी यहीं से शुरू होती है वह अपने जीवन के एकाकीपन और शहर के अजनबी माहौल में लगातार घुट रहे थे उपेक्षित और अकेला जीवन जीते–जीते वेकालकवलित हो गए ।

तीसरे वृद्ध *दिलीपचंद* की कथा कारुनिक है, शादी तो हो जाती है लेकिन उनकी उनका वैवाहिक जीवन शुरू ही नहीं हो पाता, पत्नी कहती है कि वह किसी और से प्रेम करती है और उसके पास जाना चाहती है,वे इजाजत दे देते हैं और स्वयं जीवन भर अविवाहित रहते हैं। बुढ़ापे में अपनी मौसी के साथ हैं जो स्वयं अपने बेटे से प्रताड़ित होकर उनके पास आ गई हैमूल्यहीनता के इस दौर में वे आत्महत्या की ओर अग्रसर होते हैं ।

उपन्यास के चौथे पात्र *चिंताशरण* अधिक जीवंत है वे समय के दांव– पेंच को समझते हैं और बहुत हद तक अपनी मर्जी से जीवन जीने की कोशिश भी करते हैं लेकिन एक दिन उनका अपहरण हो जाता है और उनके बेटे उन्हें छुड़ाने में कोई रुचि नहीं दिखाते ।

पूंजी से संचालित समाज की क्रूरता, भयावहता और मूल्यहीनता को इस कृति के माध्यम से ह्रदयेश ने बखूबी उकेरा है इन 70 पार 4 बुजुर्गों के माध्यम सेह्रदयेश ने भारतीय समाज में हो रहे बदलावोंको रेखांकित करने की कोशिश की है ।

रविंद्र वर्मा के उपन्यास आखरी मंजिल में वृद्धावस्था को कथ्य नहीं बनाया गया है किंतु वृद्धमाधव दयाल के अकेलेपन और खालीपन के चित्र उपन्यास में दर्शाए गए हैं।

भूमंडलीकरण और बाजारवाद की पृष्ठभूमि पर लिखे गए ममता कालिया केदौड़ उपन्यास के माता–पिता आधुनिक है लेकिन बेटे–पवन, बहू– स्टेला की उत्तर आधुनिकता और स्वाधीनता उनके वजूद को बौना साबित कर देती है, यहां दो पीढ़ी के बीच मूल्यों का संघर्ष मुखर हो उठताहै, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी करने वाले पवन और उसकी पीढ़ी के लोग परंपरागत रूप से चले आ रहे वैयक्तिकपारिवारिक,सामाजिक,साहित्यिक–सांस्कृतिक,धार्मिक, मूल्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन चाहते हैं वे स्वतंत्रता सेस्वच्छन्दता की ओर बढ़ते जाते हैं हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज के सबसे गहरे सांस्कृतिक संकट का आख्यान है दौड़।

गोविंद मिश्र के उपन्यास *शाम* की *झिलमिल* में बुढ़ापे में अकेले हो जाने पर भी जीने की उद्धमलालसा को बखूबी साकार किया है ।

तिनके– *तिनके* पास उपन्यास में अनामिका ने दिखाया है कि बुढ़ापे में जब वृद्धअपनी जमीन छोड़कर बच्चों के पास शहरों में आ जाते हैं तब अनेक सुविधाओं के बाद भी वह खुशी का अनुभव नहीं कर पाते हैं।

डॉ.सूरजसिंह नेगी के *वसीयत* उपन्यास का नायक विश्वनाथ अपने बेटे राजकुमार की राह देखते– देखते थक जाता है, बेटा विदेश में डॉक्टर है। विश्वनाथ जब अपने पिताजी की डायरी पड़ता है तो उसे एहसास होता है कि उसने अपने पिता के साथ कितना अन्याय किया है पिताजी की डायरी पढ़कर विश्वनाथ को नया रास्ता मिलता है, वह अपने गांव में जाकर सभी लोगों को इकट्ठा करकेकई काम करता है अंत में बेटा भी लौट आता है उपन्यास में रिश्तों की पेचीदा, जटिल और विकट समस्या को उजागर किया गया है ।

रिश्तों की*आंच* डॉ. सूरजसिंह नेगी के उपन्यास में वृद्धावस्था में वृद्ध हमेंशा कैसे अपने बच्चों के बारे में सोचते हैं इसका परिचय हमें मिलता है। उपन्यास में लेखक ने युवा पीढ़ी के मन में जीवन–मूल्यों और संस्कारों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है।

सूरजसिंह नेगी के ही एक अन्य उपन्यास *नियति–चक्र* में पिता वात्सल्य और प्रेम के वशीभूत होकर अपना सबकुछ पुत्र के सुपुर्द कर देता है, उसे बेघर होना पड़ता है और अपनी पहचान तकछुपाना पड़ती है, ताकि दुनिया उसके बेटे को ताने ना दें।*नियति–चक्र* घूमता है बेटा अर्श से फर्श पर आ जाता है, उसे अपनी भूल का अहसास होता है, कि जिस चकाचौंध में वह जी रहा था वह सब पिता के आशीर्वाद से ही था।

—".ा सोबती के उपन्यास *समय–सरगम* की केंद्रीय संवेदना बूढ़ोंका संसार है, उपन्यास के दो वृद्ध पात्र अरण्याऔर ईशान एक ही फ्लैट के 2 ब्लॉकों में अकेलेपन की जिंदगी काट रहे हैं,अरण्याअविवाहित है औरईशान विधुर ।इनकेमाध्यम से लेखिका कुछ और बूढ़ी जिंदगियों में प्रवेश करती है जहां विघटित पारिवारिक मूल्य हैं ।संपन्न घर परिवार वाली विधवा दमयंती पुत्रों की संवेदनहीनता झेलती हुई रहस्यमय मौत मर जाती है। अविवाहित कामिनी के भाई उसकी संपत्ति हड़पने के लिए घिनौने षड्यंत्र करते हैं ।प्रभुदयाल सफल उद्यमी है बेटों की जिंदगी सवार गुमनाम रहस्यमय मौत मर जाते हैं।

ईशान और अरण्याको ये अनुभव हिला देने वाले हैं,वे अपनी भावनात्मक आत्मनिर्भरता को मजबूत करने के लिए एक दूसरे के साथ रहना चुनते हैं । अरण्याऔर ईशानदोनों मिलकर जैसा जीवन जीते हैं वह रचनाकार की कल्पना की दुनिया भले ही हो पर आदर्श व वृद्ध जीवन की झांकी है और भारतीय परंपरा को एक नई दिशा मिलती है, अन्यथा वृद्धावस्था मौत का इंतजार करने का दूसरा नाम रहा है ।

निर्मल वर्मा के *अंतिमअरण्य* उपन्यास में दार्शनिक अंदाज में वृद्धावस्था की बेबसियों, एकाकीपन और उदासी को अभिव्यक्त किया गया है ।

उपरोक्त सभी उपन्यासों में दृष्टांतों की सहायता से प्रकाश डाला गया है और याद दिलाया गया है कि तिरस्कृत,अभावग्रस्त, निर्वासित और निराश्रित जैसा जीवन बिताता हुआ वृद्ध भी मनुष्य ही है ।वृद्धों की यथार्थ एवं मार्मिक स्थिति को दर्शाते हुए ये उपन्यास युवा पीढ़ी को आईना दिखाने का प्रयास करते हैं इनमें उन सभी परिस्थितियों को हमारे समक्ष रखा जो हमारे हृदय को अंतस्थल तक जोड़ने की काबिलियत रखती है इन उपन्यासों में वृद्ध एवं युवा पीढ़ी की सकारात्मकता एवं नकारात्मकता दोनों पहलुओं को दर्शाया है एक ओर जहां दुर्बलता को दिखाया है वहीं दूसरी ओर सुधार की संभावना को भी दर्शाया गया है।

भूमंडलीकरण,आधुनिकीकरण,व्यक्तिवादीता, व्यवसायिक–व्यस्तता और एकल परिवार व्यवस्था के कारण दुनिया से कुर्ती और से बढ़ती जा रही है सामाजिक रिश्ते नाते और संस्कारों के अर्थ बदल गए हैं हम पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित वादी विचारधारा की परिधि से निकलकर विकास हो रहे हैं किंतु उन मूल्यों और संस्कारों को भूलते जा रहे हैं जो हमारे चरित्र निर्माण में सहायक है जिसका अतीत संस्कृति में मातृ देवो भव पितृ देवो भव ऐसी अवधारणा सर्वोपरि रही है उस भारतवर्ष में आज बुजुर्गों की गई एवं असामान्य स्थिति हो गई है जो आज की युवा पीढ़ी के लिए चिंतनीय विषय है यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हम अपने बुजुर्गों के गानों को अगली पीढ़ी में हस्तांतरित करने में असफल हो रहे हैं

भौतिक वादी और व्यावसायिक व्यस्तता के युग में नई पीढ़ी के पास पुरानी पीढ़ी के लिए समय नहीं है नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच खाई बढ़ती जा रही

है बची कुची कमी को सोशल मीडिया ने कर दिया है आज बच्चे युवा और बुजुर्गों इसके प्रभाव से नहीं बच पाया अमूमन हर घर में यह दृश्य देखने को मिल जाएगा तीनों ही पीढ़ी हाथ में मोबाइल था मैं अपने काल्पनिक दुनिया में मस्त है अंतर्जाल के इस मकड़जाल में हम बुरी तरह फस चुके हैं इससे बाहर निकलने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को परिवार के सदस्य को समय देना होगा

आज वृद्धावस्था को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है जिसमें बुजुर्गों के प्रति आदर और सम्मान का भाव आज जरूरत है युवा पीढ़ी को अपनी परिधि से बाहर आने की और वृक्ष की जड़ को सहारा देने की जिस से निर्मित है युवा समाज सुधारक और भविष्य निर्माता है ऐसे में यदि विवेक हो जाए तो सामाजिक स्वाभाविक है अपनों को देना चाहिए जिससे वृद्ध आश्रम खोलने की जरूरत ना पड़े सभी बुजुर्ग एवं अधिकार के साथ अपने घर में घरों में रह सके इस तरह की और राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि वृद्धावस्था में अपने को किसी उद्देश्य से संबंधित रखने, किसी कार्य में स्वयं को व्यस्त रखने से ही वृद्ध व्यक्ति का भविष्य प्रकाशमय हो सकता है, वरना वह किसी बीमारी का शिकार हो सकता है, या अवसाद ग्रस्त हो सकता है जैसे *समयसरगम* की नायिका अरण्या लेखिका है तथा अपने को व्यस्त रखे हुए हैं *तिनके–तिनके* पास की भगवंती बुआ स्वाभिमानी और स्वावलंबी ढंग से जीवन जीने के लिए कृत संकल्पित है। परिवार की मुख्यधारा में बने रहने के लिए वृद्धजन जब तक समर्थ है सक्षम है तब तक क्रियाशील रहे क्योंकि ठहरना या रुकना जीवन का अंत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. चित्रा मुद्गल,गिलीगड्डू ,2019] सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली
2. रविंद्रवर्मा,2009 आखरी मंजिल, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
3. डॉ. वीके अब्दुल जलील, समकालीन हिंदी उपन्यास समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
4. डॉ.सूरज सिंह नेगी, वसीयत,2018 साहित्यगार प्रकाशन जयपुर संस्करण

5. डॉ.सूरज सिंह नेगी, नियति चक्र, 2018 सनातन प्रकाशन जयपुर
6. डॉ.सूरज सिंह नेगी,यह कैसा रिश्ता,2020 हिंदी साहित्य निकेतन बिजनौर
7. डॉ.सूरज सिंह नेगी, रिश्तों कीआंच,2016नवजीवनपब्लिकेशननिवाई
8. साहित्य इतिहास में वृद्ध विमर्श संपादक शिवचंद्र सिंह दिशा इंटरनेशनल पब्लिकेशन हाउस ग्रेटर नोएडा प्रथम संस्करण 2017
9. वृद्धावस्था विमर्श संपादक चंद्रमौलेश्वर प्रसाद परिवेश प्रकाशन नजीबाबाद प्रथम संस्करण 2016
10. 21वीं सदी का हिंदी साहित्य नव विमर्श संपादक डॉ.एस.वाय.होंणगेकर, डॉ.आरिफ महात ए.बी.एस. पब्लिकेशन वाराणसी
11. उषा प्रियंवदा,वापसी, भारत दर्शन हिंदी साहित्य पत्रिका
12. सोबती, समय सरगम
13. रमेशचंदमीणा, वृद्धों की दुनिया

23.आदिवासी साहित्य में सामाजिक–आर्थिक संदर्भ एवं संघर्ष

–डॉ.पवन कुमार,
प्रोफेसर

भूमिका

साहित्य में यथार्थवाद को लेकर लम्बी बहस हुई है। आदिवासी हिन्दी साहित्य में अपने को ठगा सा महसूस करते हैं। कबीर जैसे कि कहते हैं कि "मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।" आंखिन की देखी को अभिव्यक्ति देकर आदिवासी समाज वास्तविकताओं को समाज के सामने रखना चाहा है। उदाहरण के तौर पर "अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु ने निराला को व्यक्तिगत स्तर पर जितना व्यथित किया, वही उनके इस शोक गीत का यथार्थ है पर यह यथार्थ किसी दूसरे को अपना यथार्थ नहीं लग सकता है। सम्वेदना के स्तर पर पुत्री की मृत्यु पर पिता के दुख को महसूस जरूर किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य ने जातीय उत्पीड़न को अभिव्यक्त करके समाज के यथार्थ की हमारी समझ को और स्पष्ट बनाया है लेकिन आदिवासी साहित्य भी तो पूर्ण यथार्थ को अभिव्यक्ति ने देकर यथार्थ एक पक्ष को ही समान लाने का काम किया है। जिस प्रकार भारतीय समाज में विभिन्न वर्गों से उठकर साहित्यकार आए लेकिन आदिवासी समाज से कौन आया यह भारतीय सरकार, भारतीय समाज पर प्रश्न है? जो भी आदिवासी समाज के लिए लिखा जाता है वह यथार्थवाद को सही रूप में प्रकट करने में असमर्थ है। जिसके अनुसार केवल विस्थापन ही बड़ी समस्या है बस बाकि तो सभी के जीवन में लगा रहता है।

उड़ीसा के कंध आदिवासी समाज में एक कथा प्रचलित है कि "पुराने जमाने में राजा छोटा भाई तो प्रजा बड़ा भाई, एक दिन बड़ा भाई घुड़सवारी करने के लिए चाबूक बनवाने जा रहा था इतने में छोटा भाई आकर घोड़े की पीठ पर चढ़ कर बैठ गया उस दिन से छोटा भाई राजा बन गया। मतलब यह कि जिन संसाधनों पर बड़े भाई यानी प्रजा का कब्जा था अब उसको बिना अधिकार छोटे भाई ने अपना ली उसी प्रकार आदिवासी समाज से कोई साहित्यकार नहीं निकल कर आ पाया, जो यथार्थ जिसका दिखना चाहिए था वह कभी भी आगे आकर अपने को नहीं दिखा पाया।

आदिवासी साहित्य में सामाजिक–आर्थिक संघर्ष

साहित्य समाज का दर्पण होता है, उसी प्रकार साहित्य ने आदिवासी समाज के उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य ने समाज को एक ऐसा मंच प्रदान

किया है जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने समाज में हो रही परेशानियों को अभिव्यक्त कर सकता है, परन्तु फिर हम कबीर की बात को दोहराते हैं कि किस प्रकार साहित्य कभी भी आपको वो अनुभूति नहीं प्रदान कर सकता है जब तक आप स्वयं उनकी व्यथाओं, परेशानियों को समझ नहीं सकते हैं। साहित्य नियमित मात्र एक झलक भर होता है जो समय व स्थान के आधार या अनुसार परिवर्तित होता हैं। समय की माँग है कि साहित्य के माध्यम से आदिवासी समाज को एक मंच प्रदान किया जाए जो विश्वभर में हो रही/घट रही समस्याओं को उजागर कर सके ताकि उनकी समस्याओं को समझ कर जिन व्यक्तियों को अभी उनकी समस्याओं का ज्ञान नहीं हुआ उन्हें भी उन पर घट रही समस्याओं का ज्ञान हो।

सदियों का सफर किया उन लोगों ने सूरज की तरफ पीठ किए हुए थे, लेकिन अब हमें कहना है 'ना अँधेरे' को इस पदयात्रा से। हाँ उनके पुरखे–अँधेरे को छोटे–छोटे झुक गए लेकिन अब हमें, उतारना है बोझ उनकी पीठ से। कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण पर परन्तु उस दर्पण का कोई मोल नहीं जो मैला हो या अर्ध सत्य को उजागर करें। साहित्य के माध्यम से आदिवासी समाज अपने को पहचान कर, या समाज को अपनी पहचान कराकर ही समाज व सरकार के समझ अपनी बातों को, परेशानियों को उजागर कर सकता है।

आदिवासी क्षेत्र और आदिवासी जनजातियों के विकास की योजनाओं को बनाने और लागू करने में राज्य सरकारें आदिवासी विकास परिषदों को भागीदार नहीं बना रही है। इसका परिणाम है कि संविधान द्वारा परिषदों को सौंपे गये कार्यों की उपलब्धि वांछित स्तर तक नहीं हुई है। आजादी के बाद भारत में आदिवासियों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण, सरकार की पोषित नीतियों और वर्चस्व रखने वाली जनसंख्या के हितों में निहित टकराव है। आज भी झारखण्ड इस वर्ग–संघर्ष और टकराव का साक्षी है।

आदिवासी समुदायों की ये कुप्रथायें समाप्त करने के लिए लगन और उनके प्रति ईमानदारी से कार्य करने की जरूरत है न कि इनके नाम पर ब्राह्मणवाद की रूढ़ियों और अंधविश्वासों को लाद देने की। यह समस्याओं और जीवन–संघर्ष का सटीक विश्लेषण और मार्मिक चित्रण करने के साथ ही परिवर्तन की चुनौतियों का भी जायजा लेता है। उड़ी हुई गर्द की तरह जहाँ–तहाँ थिरा रहे होंगे लोग। विस्थापन का यह दर्द आज भी बदस्तूर है। विकास के इस अमानवीय मॉडल ने आदिवासियों से उनके प्राकृतिक संसाधनों को तो छीना ही है उन्हें उनके बुनियादी अधिकारों से भी वंचित कर दिया है। कॉरपोरेट विकास यानी

लूट के नाम पर पूरे आदिवासी समाज को बेचा जा रहा है। आदिवासियों से उनकी जमीन छीनी जा रही है और उन्हें विस्थापित होकर मरने के लिए मजबूर किया जा रहा है। मानव–सभ्यता के इतिहास में यह सबसे बड़ी लूट और जघन्यतम कार्यवाही है।

यह भारतीय समाज की उस मूल संरचना से निकली कथा है जिसमें कि श्रम करने वाले को हिकारत की निगाह से देखा जाता है और श्रम न करने व विलासिता करने वाले को सम्मान की निगाह से। राजा और प्रजा, शोषक और शोषित, आदिवासी और दिकू के बीच का द्वंद्व व संघर्ष दरअसल इसी मूल संरचना के कारण उपजता है।

आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियों पर बात करते समय हमारे सामने पूरे विश्व में बिखरे पड़े तमाम आदिवासी समुदाय है– अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्षरत तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति और सभ्यता ने उनके सामने दो ही रास्ते छोड़े हैं कि या तो वे अपनी अस्मिता, अपना इतिहास, अपनी परंपरा को मिटाकर 'मुख्यधारा' की वर्चस्ववादी संस्कृति को स्वीकार कर ले (यानी उसमें अपना निम्नतम दरजा स्वीकार कर लें) या फिर भौतिक रूप से पृथ्वी नामक इस ग्रह से अपना अस्तित्व मिट जाने के लिए अभिशप्त हो जाएं।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के जारवा और आंजे समुदाय को चिड़ियाघर में बंद वन्य जन्तुओं की तरह पर्यटन और विस्मय की 'वस्तु' बना दिया गया है। उनको केले और बिस्कुट देकर उनके साथ फोटो खिंचवाये जाते हैं। 'विकास' और बाजार का अद्भुत समन्वय है वह। इन दमित अस्मिताओं और राष्ट्रीयताओं को खत्म करने के लिए मानव इतिहास की सबसे बड़ी साजिशें बुनी जा रही है।

आशा का स्रोत बस यह संघर्ष है जो आदिवासी अपने बलिदान की बिना पर लड़ रहे हैं, और अन्याय व शोषण के इस पहाड़ का हटाना असंभव भी नहीं है– "आप हटा सकते हैं लगातार कोशिश से। खोदते खोदते एक पीढ़ी बर्बाद हो सकती है, दूसरी भी, हो सकता है तीसरी भी– लेकिन पहाड़ हट कर रहेगा अगर खोदना जारी रहा तो।"

राजनैतिक धरातल पर सक्रिय कई समूहों का विश्वास लोकतांत्रिक संस्थाओं और चुनावी राजनीति से उठ गया। आदिवासी सूह को संसद में स्थान तो मिला परन्तु सम्मान नहीं ये समूह दलगत राजनीति से अलग हुए और अपने विरोध का स्वर देने के लिए इन्होंने आवाम को लामबंद करना शुरु किया। इस काम में आदिवासी समाज का पढ़ा लिखा वर्ग सामने उभर कर आया जिन्होंने दलित तथा आदिवासी जैसे हाशिए पर धकेल दिए गए समूहों को लामबंद करना शुरु किया। मध्य वर्ग के युग कार्यकर्ताओं ने गाँव–गाँव

जाकर आदिवासी समुहों के बीच रजनात्मक कार्यक्रम तथा सेवा संगठन चलाए। जिसने आदिवासी समाज को आगे लाने का प्रयत्न किया। आदिवासी साहित्य की भाषा को उसके लक्ष्य से जोड़ते हुए लोग लिखते हैं "आदिवासी साहित्य को आदिवासी लिखता है" और चूँकि वह भुक्तभोगी है यानी वंचनाओं, निषेधों, प्रतिबिंबों और अवरोधो के बीच जिंदा रहने का आदि होता है। इसलिए वह लिखता है "जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा हैं कल्पना के आकाश में नहीं" इसलिए उसकी भाषा कालीन भाषा नहीं। इधर कालीन भाषा इस काबिल ही नहीं है कि आदिवासी की जिंदगी के हर एक खुरदरेपन को समेट सके। वह अपनी खुरदरी, तुकीली, तीखी और सीधी–साधी भाषा में लिखता है।

यद्यपि कालीन भाषा उसका साहित्य मनोरंजन व ऐश्वर्य का माध्यम रहे हो और अधिकतर यह साहित्य एक लक्ष्य रखता है और वह समाज के उत्थान के सोच के वृति प्रतिबद्ध है। यह साहित्य मनोरंजनकारी नहीं बल्कि वह चोट करता है कचोटता है या फिर शर्मशार करता है उन राजनेताओं को जिन्होंने उन पर जुल्म किया। आदिवासी साहित्य की भाषा और उपलब्धियों को स्वीकार करने के साथ–साथ उसकी समस्याओं के प्रति सचेत रहना जरूरी है। आदिवासी समाज के साहित्य में जो अश्लीलता के आरोप लगाए गए हैं उसमें कुछ हद तक सच्चाई है और उसमें केवल यथार्थ की अभिव्यक्ति के नाम पर जायज नहीं ठहराया जा सकता। अश्लीलता का सवाल ऐसा है जो सर्वण विरोधी ही नहीं स्त्री विरोधी भी है। इसलिए इस पर गंभीरता और संवेदनशीलता के साथ विचार करना जरूरी है।

बहरहाल आदिवासी सात्यि को अश्लील ठहराना तो नादानी होगी या फिर धूर्तता। लेखकों ने अपवाद स्वरूप ही उस तरह की भाषा का प्रयोग किया है, जिनका जिक्र उनसे सम्बन्धित है। अतः फिर वही बात दोहराई जाती है साहित्य समाज का दर्पण है उसे विकास के तौर पर इस्तेमाल करना चाहिए न कि हथियार के रूप में।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- ❖ पांव तले की दूब, संजीव, बाग्देवी, पॉकेट बुक्स, संस्करण, 2005, पृष्ठ 88.
- ❖ आदिवासी लोक साहित्य, डॉ. गौरव, नेहा पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण, 2011.
- ❖ साहित्य सहचर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नेहा पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण, 2015.
- ❖ साहित्य के आइने में आदिवासी विमर्श, डॉ. एम. फिरोज खान एण्ड डॉ. शगुफ्ता नियाज़, वाग्ङ्मय बुक्स, प्रथम संस्करण, 2015.

24.बंजारा समाजातील स्वातंत्र्यप्राप्तीनंतर स्त्रियांचे जीवन

– *डॉ.लक्ष्मण पवार*

हुतात्मा जयंतराव पाटील महाविद्यालय हिमायतनगर

भारत देशाला स्वातंत्र्य मिळून 75 वर्ष पूर्ण होत आली .विविधतेने नटलेल्या या देशात समानतेची हाक मारली जाते. मानवतेची पूजा केली जाते परंतु मानवी मूल्ये,पायदळी तुडविले जातातच. यात तत्कालीन समाज व्यवस्थेचा दोष नाही ,तर दोष आहे केवळ परंपरेचा. जोपर्यंत परंपरा नष्ट होणार नाहीत, तोपर्यंत मानव 'मुक्ती 'हा शब्द समाजाला लागू पडणार नाही. यासाठी सर्व परंपरा उध्वस्त करावी लागेल. आज पर्यंत रूढी–परंपरांच्या विरुद्ध आवाज उठविण्याचा प्रयत्न झालेला आहे आणि चालूही आहे, परंतु केवळ अज्ञानामुळे सर्वात मोठी बाधा येताना दिसत आहे .

.डॉ बाबासाहेबांच्या आधीही बाराव्या शतकापासून अज्ञानाचा अंधार दूर करण्याचा प्रयत्न केला गेला . काही प्रमाणात सुधारणा झालेलीही दिसते. श्री .चक्रधरा पासून ते डॉ. बाबासाहेबां पर्यंत सर्व समाजसुधारक, विचारवंत पाहिले तर त्यांचा प्रयत्न आभाळालाही ठेंगणे करेल असेच होते, परंतु ते आज पुरेशे झालेले नाहीत. स्वातंत्र्य मिळाले वाटले ,आता तरी स्वतंत्र भारतात मानवी मूल्य सांभाळले जातील पण तसे झालेच नाही. त्यासाठी संत तुकोबांनी पाचशे वर्षांपूर्वी नवस–सायास यावर घाला घातलेला होता , परंतु काही समाजकंटकांनी त्यांच्या या विचारावर पाणी फिरविण्याचा प्रयत्न केलेला दिसतोच.' 'समानता' हा शब्द सर्वांना लागू व्हावा यासाठी एकाच छताखाली स्त्री– पुरुष समानता आणण्याचा प्रयत्न केला गेला. परंतु मनूच्या 'मनुस्मृती 'या ग्रंथाचा प्रभाव एवढा होता की काही केल्या स्त्रियांना त्यांचा अधिकारच मिळू दिलेला नाही. म्हणून महात्मा फुलेनेही स्त्री शिक्षणाचा आग्रह धरलेला आहे. स्त्रियांना त्यांचा अधिकार मिळाला पाहिजे यासाठी जीवाचं रान करून कोणाच्याही विरोधाला न जुमानता स्त्रियांसाठी पुण्यात पहिली मुलींची शाळा काढली. परंतु अंधश्रद्धा मात्र समूळ नष्ट झालेली नव्हतीच यात बऱ्यापैकी प्रयत्नांना यशही आले .

डॉ. बाबासाहेबांनी श्रद्धा–अंधश्रद्धा यातून श्री पुरुष यांना बाहेर काढण्यासाठी केलेले कार्य उल्लेखनीय आहे. त्यांना जाणीव होती की समाजाला उभारी आणायचे असेल तर शिक्षणाशिवाय तरणोपाय नाही म्हणून 'शिक्षण हे वाघिणीचे दूध आहे ,तो जो प्राशन करेल तो गुरगुरल्याशिवाय राहणार नाही' हे विधान एक ब्रह्मसत्य आहे .स्वातंत्र्यानंतर बदलांचे वारे वाहू लागले पाहता पाहता अज्ञान नष्ट होऊ लागला अंधश्रद्धेला काही प्रमाणात

आळा बसला वर्ण व्यवस्था अस्तित्वात येताना दिसू लागले परंतु काही केल्या स्त्री पुरुष हा भेद थांबताना दिसत नव्हता. हा भेद पूर्णपणे थांबल्याशिवाय देशाचा विकास अशक्यप्रायच म्हणावा लागेल . दोन्ही चाकात सारख्या प्रमाणात बळ येईल तेव्हाच खरे स्वातंत्र्य मिळाले असे म्हणता येईल. या देशातील बंजारा समाजातील स्त्रिया बाबत काही वेगळे लिहिण्याची किंवा सांगण्याची गरज नाही. आजपर्यंत स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर भरपूर प्रमाणात स्त्री विषयक लेखन केलेले दिसते. परंतु जेव्हा पुरुष लेखन करतो त्यावेळी पुरुष व्यवस्थेचा चष्मा फार प्रमाणात उतरललेला दिसून येत नाही. त्या लेखकांची भूमिका चांगली आहे परंतु स्त्री विषयक पाहण्याचा दृष्टिकोन बदललेला दिसून येत नाही. या संदर्भातील लेखिका ताराबाई शिंदे यांचे विचार उल्लेखनीय वाटतात त्यांच्या मते,' स्त्री म्हणजे केवळ शोभेची वस्तू आहे का? वापर असेपर्यंत वापरणे आणि वापर संपला की फेकून देणे!! हे विचारले दोन प्रश्न पुरुष प्रधान व्यवस्थेला त्रासदायक आहे. म्हणून हे प्रश्न पुरुषांना विचार करायला भाग पडतातच.. आम्ही भेदाभेद मानत नाही आमच्याच स्त्रीला समान हक्क आहे असे म्हणणाऱ्या समाजात मात्र स्त्रियांची अवस्था पिंजर्यातल्या पोपटाचे सारखी आहे.' खायला खूप आहे ,वरून तूप आहे परंतु तिच्या स्वातंत्र्याच्या दाराला मात्र सोनेरी कुलूप आहे '.अशी आज स्वतंत्र भारतात स्त्रियांची अवस्था झालेली आहे. ही अवस्था बंजारा समाजात पाहायला मिळत नाही परंतु आज इतर समाजाच्या संपर्कात आल्यामुळे स्त्रीच्या बाबतीत वेगळे काही म्हणता येणार नाही. स्वातंत्र्य अगोदर बंजारा समाजातील स्त्रीला आणि आजही काही प्रमाणात देवीचे स्थान होते आणि आहे. पूर्वी या समाजात मातृसत्ताक पद्धती होती. स्त्रियांना दुय्यम दर्जा दिला जात नव्हता .त्यामुळे घरातील सर्व दैनंदिन व्यवहारांवर तिचे बारीक लक्ष असायचे. पुरुषांच्या मनमानी कारभाराला आळा बसायचाच त्यामुळे सुख समृद्धी आणि आनंद प्राप्ती यासारख्या गोष्टी सहजच मिळायच्या. घरातील सर्व स्त्रियांना मुलींना अभय मिळायचे स्वैराचार कुठेही असायचा नाही जंगलातील काम असो की शेतीचे कामे असो स्त्री–पुरुषांनी मिळून करायचे. काम करताना संकुचितपणा या शब्दाला वावच नव्हता. सर्वांची मने मोठी असायची मी मी तू तू हा शब्द नव्हताच त्यामुळे एकत्र कुटुंब पद्धती या समाजात विकसित झालेली पाहावयास मिळते. एकच शिकवण असायची,' कामे माईच राम छ '.'काम करीये तोच खायेंन मळीय'. अर्थात, कामातच राम आहे काम केले तरच खायला मिळेल. हा सरळ आणि साधा.

त्यांचा जीवन जगण्याचा सिद्धांत म्हणून पूर्वीची बंजारा स्त्री निर्भिडपणे जंगलाच्या सान्निध्यात आपल्या शेतीत आणि पशु पाण्यासोबत वावरतांना दिसते .तिने निसर्ग देवतांची

पूजा केले .निसर्गातच धोंड्याला पूजले. त्यात त्यांना फारसा वेळ द्यावा लागला नाही. जेव्हा वेळ मिळेल, जसे जमेल तसे पूजा करून मोकळी झाले. इतर समाजातल्या स्त्रियांप्रमाणे नवस–सायास यात ती अडकून पडली नाही.स्वातंत्र्यप्राप्तीनंतर मात्र थोडेसे चित्र बदलताना दिसते. बंजारा स्त्रीला मातृसत्ताक पद्धती मुळे पूर्वीपासूनच सर्व अधिकार मिळालेले असल्यामुळे आजही काही प्रमाणात वयोवृद्ध स्त्रीला हे अधिकार मिळतातच. त्यामुळे आपल्या कुटुंबाला एका धाग्यात बांधून ठेवण्याचे महत्त्वपूर्ण कार्य तिच्या हातून झालेले दिसून येतेच. सण उत्सव असो की अन्य कोणतेही प्रसंग असो तिला विचारल्याशिवाय काहीही केल्या जात नाही .कामाच्या बाबतीत बंजारा स्त्री–पुरुषांना तोडच नाही. जंगलात आपली जनावरे चरायला नेणे. विचारून आणणे किंवा शेतीची कामे असो ही स्त्री आपल्या जिवाची पर्वा न करता निष्ठेने काम करताना दिसते .कुटुंबासाठी जीव गेला तरी चालेल पण जे काम वाट्याला आलेले आहे ते तीन निमूटपणे करताना दिसते. असेही म्हणावे लागेल कि ती सर्वच कामात पुरुषांपेक्षा ही एक पाऊल पुढे आहे. खऱ्या अर्थाने या समाजातील स्त्री आणि पुरुष हा कुटुंबाच्या रथाची दोन मजबूत चाके आहेत. असे गर्वाने सांगावेसे वाटते. स्त्रिया या पुरुषांपेक्षा कधीही बुद्धीने, शक्तीने कमी नाहीत .याचा परिचय या समाजातील स्त्रियांकडून आल्याशिवाय राहत नाही .प्राचीन काळापासून या समाजातील स्त्रीला विवाह विषयक अधिकार होते. हुंडा पद्धती अस्तित्वात नव्हती. मुलाकडंच्या लोकांनाच प्राण्यांच्या, वस्तूंच्या स्वरूपात हुंडा देण्याची पद्धती होती .अशामध्ये काही अपवाद वगळता बालपणी विवाह होत असायचे. परंतु जास्तीत जास्त विवाह वयात आल्यानंतरच. मुलींची इच्छा असेल तर विवाह होत असायचे. अशावेळी जर एखाद्या स्त्रीचा पती मेला आणि घरात लहान भावंडे आहेत, अशावेळी तिला त्यांच्या सोबत विवाह करण्याचा अधिकार होता. आयुष्यभर विधवा जीवन जगणे त्यांना मान्य नव्हते. लग्न करण्याची एकच अट असायची ती म्हणजे तो पतीचा लहान भाऊ दीर असावा. म्हणून विधवा स्त्रीच्या यातना बंजारा स्त्रीला भोगाव्या लागल्या नाहीत. परिणामी या समाजात सतीची प्रथा नव्हती.

हा समाज हिंदूधर्माचा एक घटक आहे. यात कुठलीही शंका नाही. या धर्मातील देवी–देवता रूढी, प्रथा, परंपरा, चालीरिती सर्व पाळल्या जातात. त्यांना ऐतिहासिक परंपराही आहे. ते शूरवीर होते, राजे–महाराजे होते यांचेही पुरावे आज आहेत .त्यांनी इंग्रजांना विरोध केला त्यामुळे तारेच्या कुंपणात स्वातंत्र्यानंतरही जीवन घालवावे लागले .परंतु भारतातील इंग्रजांच्या आगमनामुळे हा समाज देशोधडीला लागला संपूर्ण जगात विखुरला गेला . जीव

वाचविण्यासाठी दऱ्या खोऱ्यांचा आश्रय घ्यावा लागला. त्यामुळे आज लोकांना वाटते की त्यांची संस्कृती वेगळी आहे. पण तसे नाही.

आधी हिंदू संस्कृतीतील सोळा संस्कार मानत होते आणि आजही सोळा संस्कार मानतात. परंतु यात बदल काय झाला? तर असे म्हणावे लागेल की संस्कृतीचा एक भाग असूनही केवळ जीव वाचविण्यासाठी त्यांनी आपला पोशाख ,बोलीभाषा त्यांना वेगळी करावी लागली. स्वतंत्र संस्कृती निर्माण केले. त्यामागचा हेतू हाच की आपण काय बोलतो? आपण कोण आहोत? हे कोणालाही कळू नये. स्वातंत्र्यानंतर जगातील सर्व बंजारा बोली भाषेचा अभ्यास केला तर ती बोली भाषा एक सारखीच आहे. त्यांची कदकाठी .

हा ..कुठे कुठे तर पोषाखात झालेला बदल आपल्याला दिसतो. परंतु गावाच्या जवळ आल्यामुळे त्यांच्या राहणीमानात बदल झालेला आहे. इतर समाजाच्या संपर्कामुळे त्यांची संस्कृती जीवनशैली व भाषेत बदल झालेला पाहावयास मिळतो पण आपल्या आगळ्यावेगळ्या जीवनशैलीची छाप त्यांनी इतर समाजावर पाडलेलीच आहे. यात कुठलीही शंका उद्‌भवत नाही.

उत्सव प्रसंगी किंवा इतर विधी प्रसंगी त्यांच्या चालीरीती चे दर्शन आपल्याला घडते . यावेळी त्या मुक्तपणे पुरुषांच्यापुढे वावरतात च. भिती हा शब्द समूळ नाश होतो. उदा. होळी सणाचे लेंगी गीत.'

भांळजारे भांळजा,
भोलोशो भाळजा, वासत कुकडो कटाईती ,
कुकडो बि खागो
बोकड बि खागो
टाग पकड गांड मार गोरे मारो रे ,भोलोसो भाळजा.'

अशी अश्लील भावनेचे दर्शन होळी उत्सवांच्या लेंगी गीतातून झाल्याशिवाय राहणार नाही .ज्या पाहुण्याला पाहुणचार करण्यासाठी घरी बोलावतो, त्यांचा पाहुणचार होतो ते एवढ्यावरच थांबत नाही ,तर तो आपली शारीरिक वासनाही पूर्ण करून जातो. असा निर्भीडपणा बंजारा स्त्रीगीतातून येतो. अर्थात बंजारा स्त्रीला प्राचीन काळापासूनच जीवनातील सर्व स्वातंत्र्य आणि अधिकार मिळाले होते हे स्पष्ट होते. याची जाणीव लोकगीतातून झाल्याशिवाय राहणार नाही. म्हणून कुटुंब संवर्धनात बंजारा समाजातील स्त्रियांची भूमिका अतिशय महत्वाची होती हे स्पष्ट होते. अर्थात,,

बंजारा समाजातील शिकलेल्या स्त्रीला आज अंधश्रद्धेतून बाहेर पडता येत नाही. केवळ या समाजात जेवढ्या म्हाताऱ्या स्त्रिया आहेत ,त्या मात्र श्रद्धा अंधश्रद्धा फारशा मानताना दिसत नाहीत .त्या सरळ जीवन जगतात. कामातच राम आहे म्हणून कामाची पूजा केली पाहिजे. निसर्ग देव आहे, निसर्गाची पूजा केली पाहिजे, निसर्ग देवतेला मानले पाहिजे, हा त्यांचा सरळ आणि साधा सिद्धांत आहे .परंतु आज हा समाज गाव संस्कृतीच्या जवळ आलेला आहे शिक्षणाची गंगा तांडापर्यंत येऊन पोहोचलि ,त्यामुळे काही प्रमाणात का होईना, तांड्यातील मुलमुले शिकू लागल्या. शिक्षणामुळे इतर समाजाच्या संपर्कात आल्या. परिणामी या समाजाच्या आचार ,विचार, राहणीमान पोशाख ,बोलीभाषा यांच्यावर परिणाम होऊन ,त्या प्रथा आज बंदच होण्याच्या मार्गावर आहे. ज्याकाळी बंजारा बोली भाषाने तारले ,तीच बोलीभाषा आज इतर समाजापुढे लपविताना दिसतो .संपर्कामुळे हिंदी, मराठी, इंग्रजी या भाषा ते बोलू लागले .पोषाख बदल झाला.

नऊ मीटरचा लेंगा ,कातळी जाऊन, त्यांची जागा साडी ने घेतली. टोपली, दंडात कडा ,चोटला इत्यादी अलंकाराची जागा नाजूक अलंकाराने घेतली. आणि इतर समाजाप्रमाणे आपण कुठेही नोकरी करू शकतो, त्यांच्याप्रमाणे राहू शकतो ही भावना त्यांच्या मनात रुजली. परिणामी जंगलाच्या सानिध्यात जीवन व्यतीत करणाऱ्या समाजात स्त्रि –पुरुष समानता आलेली दिसते. अधिकार तिला मिळालेले आहेत. मध्यकाळात तिच्या अधिकार कमी झाले होते, परंतु आज हिंदू संस्कृतीच्या मुख्य प्रवाहात आल्यामुळे, स्वातंत्र्यप्राप्तीनंतर स्त्रियांचे जीवन बदललेले आहेत .

त्यामुळे.' खायाला खूप आहे, वरून तूप आहे, स्वातंत्र्याच्या दाराला मात्र सोनेरी कुलूप आहे.' हे विधान आज पूर्णपणे खोटे ठरेल ....

संदर्भ ग्रंथ ...

1.अंधश्रद्धेची वावटळ.. प्रा. चंद्रसेन टिळेकर

2.बंजारा समाज :जंगल आणि जीवन .डॉ. लक्ष्मण पवार

3बंजारा समाज :संस्कृती आणि स्त्री .डॉ. लक्ष्मण पवार

4. भारतीय नारीः. स्वामी विवेकानंद

5. हिंदू संस्कृती आणि स्त्री :–साळुंखे आ. ह.

25.सीमा साखरे यांचे आत्मचरित्र 'संग्राम' : एक चिकित्सक अध्ययन

–डॉ.आर. आर. दिपटे,
एस. एन. मोर महाविद्यालय, तुमसर

स्त्री जीवन म्हणजे काय? स्त्रीवाद, जीवन प्रेरणा, तत्कालीन सामाजिक–कौटुंबिक परिस्थिती, शिक्षणाचा अभाव, आत्मचरित्र म्हणजे काय? मराठीतील स्त्री लेखन, सीमा साखरे यांचे बालपण, शिक्षण, नोकरी, विवाह, कुटुंब, कौटुंबिक संघर्ष, अपमान, मनस्ताप, छळ यातून स्वावलंबी जीवनाचा शोध, शिक्षिका, प्राध्यापक, डॉक्टरेट पदवी, विविध संघटनांची स्थापना, चर्चासत्रे, मोर्चे, आंदोलने यातील सहभाग, संघर्षामागील वैचारिक प्रेरणा, निर्भीडपणा, स्पष्टवक्तेपणा, चिकाटी, प्रश् न समजून घेण्याची हातोटी, प्रसंगी व्यवस्थेसोबत दोन हात करण्याची तयारी, झुंझार आयुष्याचा आढावा इत्यादी चित्रण.

बीजशब्द : स्त्री जीवन, शिक्षण, अत्याचार

प्रस्तावना :

हजारो वर्षापासून आपल्या भारतीय समाजात स्त्रीजीवन परावलंबी बनविल्या गेलेले आहे. वर्चस्ववादातून निर्माण झालेली ही व्यवस्था पिढ्यानपिढ्या अशीच राहावी. अशी समाजातील मूठभर लोकांनी जाणीवपूर्वक ही रचना तयार करून ठेवलेली होती. मुक्तपणे, निमूटपणे कुठलाही प्रतिकार न करता ती केवळ दासी, उपभोगाची वस्तू बनविली गेली. शिक्षणापासून कोसो दूर राहिलेली ही स्त्री या व्यवस्थेत केवळ उपभोगाची वस्तू बनविल्या गेली.

असा विचित्र भारत देश ज्या देशात पानांची, फुलांची, दगडांची, न पाहिलेल्या अनेक गोष्टींची पूजा केली जाते. आपल्या देशात आपल्याच रक्ताची असलेली स्त्री अशा प्रकारे नाडविल्या जाते. प्रगतीचा मार्ग म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षण हा माणसाला लाभलेला तिसरा डोळा असतो. चांगले, वाईट विचार करण्याची शक्ती ज्या शिक्षणाने प्राप्त होते. अश्या दुधारी शस्त्रापासून स्त्री जीवन दूर ठेवल्या गेले होते. स्त्री ही या प्रकाराने तिच्या मूलभूत हक्कापासून वंचित ठेवल्या गेलेली असून सावित्रीबाईंच्या प्रेरणेने या देशात स्त्री शिक्षणाची मुहूर्तमेढ रोवल्या गेलेली होती. अत्यंत विपरीत परिस्थितीत समाजाच्या या प्रस्थापित

व्यवस्थेचा मोठा विरोध झुगारून सावित्रीबाईंनी या देशात स्त्री शिक्षणाची क्रांती केलेली होती.

या व्यवस्थेत आपले हक्क, वाटा, अधिकार या विषयीचे प्रश्न आता विचारले जाऊ लागले होते. हळूहळू यातून स्त्रीवादी साहित्य, स्त्री संघटना, स्त्रीवाद हया नवनव्या संकल्पना समाजात जोरकसपणे रुजु होऊ लागलेल्या होत्या. सावित्रीबाईनी केलेली ही सुरुवात आता मोठ्या आंदोलनाच्या निर्णायक लढयापर्यंत आलेली होती. देशातील बदलते समाजप्रवाह, पहिले महायुद्ध, दुसरे महायुद्ध, वेगवेगळी आंदोलने, समाजाची बदलती मानसिकता याचा मोठा प्रभाव, चित्रपट लेखन, साहित्य, संशोधन, विज्ञान या क्षेत्रातही दिसू लागले होते. या चळवळीतील एक मोठे नाव म्हणजे डॉ. सीमा साखरे होय.

एकविसाव्या शतकात मराठी साहित्यात आत्मचरित्र या वाङ्मयप्रकाराला स्वतंत्र व महत्त्वाचे स्थान आहे. बहुरंगी जीवन जाणून घेण्याची जिज्ञासा माणसाला असते. व्यक्तीचे जीवन दर्शन घडविणे हे आत्मचरित्राचे प्रमुख उद्दिष्ट आहे. जीवनाच्या एखाद्या क्षेत्रात मोठे यश प्राप्त केलेल्या व्यक्तीचा प्रवास हा कधीही साधा, सोपा, सरळ नसतो. अनेक प्रकारचा संघर्ष, त्याग, सातत्य, चिकाटी त्यामागे दडलेली असते. हा प्रवास उलगडून दाखवावा. पुढच्या पिढ्यांना त्यातून प्रेरणा मिळावी. हा आत्मचरित्र लिहिण्यामागील उद्देश असतो. रा. कृ. लागू यांच्या मते, 'सत्य म्हणजे आत्मचरित्राचा कलिजा होय.'[1] याचाच अर्थ त्यांनी कलिजा म्हणजेच काळजाइतकेच आत्मचरित्र्याला महत्त्व दिलेले आहे. लेखकाला आत्मचरित्रात सत्य सांगायचे असते, हेच त्याचे ध्येय असते. मराठी साहित्यात स्त्री व पुरुष यांचे आत्मचरित्राची संख्या अधिक असली तरी 'स्त्रियांच्या आत्मचरित्र्यावर आजही ब–याच मर्यादा आलेल्या दिसतात.'[2] आयुष्यातील अनेक वास्तववादी घटना आत्मचरित्रात लिहितांना होणारा संकोच ही काही अंशी मर्यादा यात दिसते. आयुष्यात घडलेल्या अनेक गोष्टींचे झालेले विस्मरण हे देखील त्याला अपवाद ठरू शकते. स्त्रियांना समाजात नितिमत्ता आणि समाजातील त्यांचा दर्जा जोपासण्याची चिंता असते. म्हणून त्यांना पटणारे परिवर्तनाचे विचार सुद्धा सहजपणे बोलता येत नाही. 'मी असे बोललो तर लोक माझ्याबद्दल काय विचार करतील.'[3] ही भीती स्त्रियांच्या मनात सतत असते. एका अर्थाने आत्मचरित्र हा आरसा असतो.

डॉ. सीमा साखरे यांचे 'संग्राम' हे आत्मचरित्र त्यांचा खडतर प्रवास, बालपण, शिक्षण, व्यक्तिमत्त्वाची घडण, प्रवाहाविरुद्ध पोहण्याची ताकद, स्त्रीच्या न्यायाबद्दल संवेदनक्षम मन जोपासणे, सामाजिक गरजेतून केलेला विवाह निभावण्याची जिद्द बाळगणे, महत्त्वाकांक्षेने मुलांचे संगोपन करणे आणि अहंकारी मानसिकता असलेल्या नव–याला प्रतिकार करीत

स्वतःची प्रगती करून स्त्रियांच्या न्यायाची चळवळ त्यांनी उभी केली. त्यांच्या आयुष्यातील खडतर प्रवासाचे वास्तववादी चित्रण त्यांच्या आत्मचरित्रातून दिसून येते. स्वतःच्या या आत्मचरित्र लिहिण्यामागील भूमिका स्पष्ट करताना त्या म्हणतात, 'माझे हे आत्मचरित्र मनोरंजनात्मक नाही. त्यांची बैठकच मुळात जे मी खडबडीत जगले, याची आहे. ते माझं आत्मचरित्र माझ्या समकालीन स्त्री चळवळीचं, स्त्रियांच्या समस्यांच्या आणि त्यांच्या न्यायासाठी मी केलेल्या भूमिकेचे चरित्र आहे.'[4] त्यांचे आत्मचरित्र साधारण, बालपण, शिक्षण, विवाह, नौकरी, कौटुंबिक संघर्ष, स्त्री चळवळ अश्या आयुष्याच्या अनेक पदरी अनुभव असून त्या प्राचीन काळातील स्त्रीजीवन, मुलींच्या शिक्षणाविषयी लोकांची अनावस्था इत्यादीचे चित्रण असून लहानपणी सोनेगाव हया खेड्यात कुटुंबातील गरीब परिस्थिती, आईचा संघर्ष व इंग्रजी राजवटीमुळे त्रस्त झालेला समाज हयाचे वर्णन येते. गाडगेबाबांनी त्यांना शाळा दाखविली. 'गोपाला, गोपाला, देवकीनंदन गोपाला' या भजनाच्या ओळी गात व ऐकत असतांना अंधश्रद्धा, रूढी, परंपरा आणि कर्मकांड ही परिस्थिती समजून घेण्यास त्यांना मदत झाली. 'शाळेत जाऊन शिकल्याने मोठे होता येते.' ही प्रेरणा यांना यातून मिळाली असे दिसून येते.

सभोवतालच्या समाजात असणा–या कुप्रथा, अंधश्रद्धा या व्यक्ती विकासासाठी, समाज, राष्ट्रविकासासाठी अन्यायकारक आहेत. याचे बारकावे त्यांना दिसू लागले होते. या प्रथेविरुद्ध बंड करण्याचे सामर्थ्य व जिद्द त्या बाळगून होत्या. त्यांचे व्यक्तिमत्व घडण्यात त्यांच्या कुटुंबियांच्या प्रेरणा, मार्गदर्शन यांचे मोल महत्त्वाचे आहे. बालपणापासून आव्हाने स्वीकारण्याची जिद्द त्यांच्या मनात निर्माण झाली होती. नोकरीतील भटकंतीमुळे ग्रामीण स्त्री जीवन त्यांच्या मर्यादा, बंधने, अत्याचार, जातीय व्यवस्था, वर्चस्ववाद यांचे कटू अनुभव त्यांना आले होते. पुढे मित्रांच्या सहवासाने, अनुभवाने, वाचनाने त्यांचे व्यक्तिमत्व समृद्ध झाल्याचे दिसून येते.

नागपुरमधील 1956 चे बाबासाहेबांचे धर्मांतर त्यांनी जवळून पाहिले. त्यामागची कारणे, आपल्या धर्मातील अनिष्ट प्रथा, अंधश्रद्धा, भेदाभेद कारणीभूत आहे हे त्यांनी ओळखले होते. बाबासाहेबाविषयींचा आदर त्यांच्या मनात निर्माण झाला. अन्याय, अत्याचार या विरुद्ध बंड करण्याची वैचारिक ताकद त्यांच्यात निर्माण झाली. समाजातील विविध प्रश्न, छळ, अत्याचार, भ्रष्टाचार, पिळवणूक, स्त्रियांचे प्रश्न समजण्यास त्यांना नौकरीच्या निमित्ताने मोठी मदत झाली होती. परंपरेतील महत्त्वाचा धागा म्हणजे विवाह होय. नकळतपणे शिक्षणाच्या स्वप्नांचा पाठलाग करतानाच साखरे नावाची व्यक्ती त्यांच्या आयुष्यात आलेली

होती. नंतर साखरे यांच्याशी झालेला विवाह त्यांचा अनेक प्रकाराने भावनिक–मानसिक छळ करून गेला. कौटुंबिक स्वप्ने अनेक अर्थाने भंगली होती. पश्चाताप, मनस्ताप, अपमान असे अनेक नकारात्मक कटू अनुभव त्यांना आलेले होते. नव–याच्या वागण्याने माणसातील विक्षिप्तपणाचा परिचय त्यांना झालेला होता. संसाराचा सारीपाठ अश्या प्रकाराने मोडलेला होता. हा एकाकीपणा घालविण्यासाठी व कटू अनुभव शब्दबद्ध होण्याच्या उर्मीतून या आत्मचरित्र्याची निर्मिती झाली. स्वतःचे विश्व निर्माण करणे स्वावलंबी जीवन जगावे असा निर्धार त्यांनी केला होता. स्त्रियांच्या न्यायाबद्दलच्या भावना त्यांच्या मनात दाटून येत होत्या. स्त्रीबद्दल कुणी काही भलतेसलते बोलले की कडक शब्दात दरडावीत त्या म्हणत, 'काय म्हणणे आहे तुझे' ही विचारण्याची हिंमत त्यांच्यात आलेली होती. एक संघर्षमयी व्यक्तिमत्व सीमाताईच्या रुपाने घडत होते.

एका बाजूला संसार व ध्येयवेडेपणा, शिक्षण, कुटुंब, मूलबाळ जबाबदा–या त्यांना खुणावत होत्या. तर दुस–या बाजूने साखरे यांचा जाच अपमान यातून मार्ग काढत हा संघर्ष पुढे जात होता. पीएच.डी. मुळे त्यांना विचारवंताचे पुस्तके वाचण्याची व समाजातील स्त्रीयांचे प्रश्न नव्याने समजण्याची संधी मिळाली होती. हे प्रश्न समजण्याची नवी दृष्टी त्यांना मिळाली होती. स्त्रियांचे प्रश्न, जीवन, संसार, संसारातील प्रश्न, हतबलता, अबोलपणा, मारहाण, अपमान हया अडगळीत अडकलेल्या स्त्रीयांना मुख्य प्रवाहात आणण्याचे आव्हान त्यांनी स्वीकारले होते. स्त्रीजीवनातील हे दुःख ग्रामीण–शहर, उच–नीच, श्रीमंत–गरीब मध्यमवर्गीय सा–याच कुटुंबात कमी–अधिक सारखेपणा त्यांना दिसत होता. विवाहाविषयक पारंपारिक मूल्यांची चौकट किती मजबूत असते. त्यातून कोणतीही स्त्री सहसा बाहेर पडू शकत नाही, याचा अनुभव त्यांना आलेला होता.

जे स्त्री जीवन सभोवताल त्या पाहात होत्या. अनुभवत होत्या. ते सर्व त्यांच्या वाट्याला आलेले होते. संसारातील विभक्तपणा, पीएच.डी. समारंभ पुढे आर्थिक स्थैर्य याचा उल्लेख येतो. पुढे नागपूर विद्यापीठातील नोकरी, त्यांच्या बदललेला दर्जा डोक्यावर ताकाचा पिपा घेऊन विद्यापीठ प्राध्यापक होण्यापर्यंतचा प्रवास याचे वर्णन 'संग्राम' मधून दिसते.

1978 मध्ये 'लोकमत' मध्ये महिलांसाठी स्वतंत्र कॉलम लेखन त्यांनी लिहायला सुरूवात केली होती. पुरुषप्रधान व्यवस्थेला जाब विचारायची संधी त्यांना या निमित्ताने चालून आली होती. स्त्रीयांचे प्रश्न हाताळताना, मथुरा बलात्कार, इंदिरा घटना त्यातून 8 मार्च 1980 रोजी बलात्कार विरोधी मंचाची स्थापना त्यांी केली. अश्लील नाटके आदी

प्रसारमाध्यमांना त्यांनी कडाडून विरोध केला. स्त्री अत्याचारविरोधी परिषद व पुढे संघटन व कार्यकर्त्यांचे जाळे ग्रामीण भागापर्यंत तयार करण्याचे अशक्यप्राय कार्य त्यांनी केलेले आहे.

समारोप :

डॉ. सीमाताई साखरे यांचे साहित्य लेखनाची संख्या ही मोठी असली तरी त्यांचे 'संग्राम' या आत्मचरित्रातील त्यांच्या वैयक्तिक, शैक्षणिक, संसारिक आयुष्य त्यांच्या जगण्यामागील, कार्यामागील प्रेरणा, त्यातील संघर्ष, मान–सन्मान, विविध संघटना, आंदोलने, परिषदेतील सहभाग, मोर्चे प्रस्थापित परंपरावादी विचारांशी त्यांनी दिलेला लढा, आव्हाने, नवे स्त्री प्रश्न त्यासाठी करावा लागलेला प्रवास, उपोषणे यांच्या धावता आढावा या 'संग्राम' मध्ये घेतला असून स्त्रीयांचे प्रश्न, त्यामागील पुरुषप्रधान वर्चस्ववादी मानसिकता, धर्म, परंपरा यांच्या या स्त्री अधोगतीमागील कारणे अश्या विविधांगी प्रश्नांचा स्वानुभव त्यांनी आपल्या या आत्मचरित्रात कथन केलेला असून, स्वानुभाव, तटस्थपणा, लेखनामागील दाहक अनुभव याचे वास्तवदर्शी चित्रण यातून येत असून यातून हे प्रश्न समजून घेण्यास हे आत्मचरित्र अधिक उपयुक्त ठरू शकेल यात शंका नाही. गावातील ताकाचा पिंप डोक्यावर घेऊन निघालेली मुलगी पुढे डॉक्टर, प्राध्यापक, विचारवंत, लेखिका व वृत्तपत्रातील स्तंभलेखक, विविध परिषदांच्या अध्यक्ष अश्या विविध भूमिका त्यांनी पार पाडल्या आहेत. हया विषयावरील हे लेख लिहीत असताना डॉ. सीमाताईचे हे कार्य केवळ शब्दसंख्या व पृष्ठसंख्या मर्यादेमुळे याचे सविस्तर लिहिता येऊ शकले नाही. या मर्यादाही मला ज्ञात आहेत. एवढा दीर्घ काळातील संघर्ष केवळ काही शब्दात लिहिणे हे मोठे आव्हानात्मक काम आहे. अनेक घटना, प्रसंग, कार्यकाळ यांचा उल्लेख विस्ताराने करता आला नाही.

निष्कर्ष :

1)पिढ्यानपिढ्या शिक्षणाच्या अभावामुळे हे स्त्रीजीवन परावलंबी, परजीवी हया व्यवस्थेने बनविले होते.

2)प्रस्तुत लेखातील घटना, प्रसंग, 'संग्राम' या आत्मचरित्रातील असून त्यांच्या आयुष्यातील संघर्ष, चढ–उतार, लिंगभेद, समाजातील जातीय संघर्ष, स्त्री–हक्क संघर्ष यांचा उल्लेख यात आहे.

3)आपल्या संघर्षामागील प्रेरणा, निर्भिडपणा आयुष्यातील विविध भूमिकांचा, घटनांचे वास्तववादी चित्रण यातून दिसून येते.

4)गाडगेबाबांमुळे त्यांना शिकण्याची प्रेरणा मिळाली. तर 1956 मधील नागपुर मधील डॉ. बाबासाहेबांचा धम्मपरिवर्तन सोहळा त्यांच्या आयुष्याला कलाटणी देणा–या घटना असून यातून त्यांची वैचारिक बैठक, जगण्याची, संघर्ष करण्याची प्रेरणा यामागे आहे.

संदर्भ :

1)संपादक : प्रा. डॉ. इश्वर सोमनाथे, डॉ. मिलिंद कांबळे, ''साहित्यप्रकार संकल्पना आणि स्वरूप'', विजय प्रकाशन, नागपूर, प्र. आ. 1 मे 2016, पृ. 101.

2)प्रदक्षिणा खंड 2, प्रकाशक : कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, विजयनगर, पुणे–30, प्र. आ. 1991, पृ. 245.

3)साखरे सीमा : 'स्त्रीवाद', सीमा प्रकाशन, नागपूर, तृ. आ. 26 जानेवारी 2004, पृ. 5.

4)साखरे सीमा : 'संग्राम', सीमा प्रकाशन, नागपूर, द्वि. आ. 14 एप्रिल 2009, पृ. 5.

26."बिना किसी भूमिका के" काव्य संग्रह में व्यक्त स्त्री संघर्ष

–डॉ.अनिलकुमार राठोड
हिंदी विभाग,
शहीद भगतसिंह महाविद्यालय, किल्लार , ता.औसा, जी. लातूर.महाराष्ट्र,

समकालीन महिला साहित्यकारों मे रजनी अनुरागी एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। स्त्री विमर्श तथा स्त्री मुक्ति से जुड़ा रजनी जी का संपूर्ण काव्य स्त्रियों के दुःख, दर्द, पीडा, शोषण दलन,घुटन, आपमान को पूरी ताकत के साथ बहुत गंभीरता से अभिव्यक्त करता है।अपने पहले काव्य संग्रह 'बिना किसी भूमिका के' से हिंदी साहित्य जगत में चर्चा का विषय रही रजनी अनुरागी जी दिल्ली के जानकीदेवी मेमोरियल महाविद्यालय मे प्राध्यापिका के रुप में कार्यरत हैं। इनकी हर कविता में गांव से लेकर महानगर तक का स्त्री वर्ग अपने दुःख, दर्द, व्यथा, यातना के साथ अपने आत्मसम्मान की लढाई लढता नजर आता है। रजनी जी यह भलीभांति जानतीं हैं कि पुरूष वर्चस्ववादी समाज व्यवस्था ने प्राचीनकाल से लेकर आज तक स्त्री की कोई भी ठोस प्रतिमा एवं भूमिका तैयार नहीं होने दी हैं।इसलिए वह अब बिना किसी भूमिका के ही इस अन्याय कारी व्यवस्था से संघर्ष का लोहा लेकर आपनी एक ठोस भूमिका बनाकर उसे प्रचलित समाज व्यवस्था में प्रस्थापित करने के लिए आमदा हैं।

स्त्री वर्ग के हर दुःख, दर्द से भरे भावविश्व की परत–दर–परत खोलने वाली रजनी जी की हर कविता अपने तमाम परिप्रेक्ष्ययों और भावभूतियों के साथ स्त्री केंद्रित होते हुए भी वह खुद के 'स्व' तक सीमित न होकर उसका फलक संपूर्ण स्त्री समाज तक फैसला हुआ हैं।व्यापक मानवीय सरोकार रजनी के कविताओं का केंद्रीय स्वर रहा है।स्त्री और पुरुष दोनों मानव समाज के अभिन्न अंग हैं और दोनों ने ही जिस परिश्रम से मानव समाज को आज प्रगति के शिखर पर खडा किया है, वह अकेले पुरुषों के बस कि बात नहीं थी। इस सच्चाई को पकड़ते हुये कवयित्री मानव सभ्यता के इतिहास में जब अपने पदचिह्न देखने लगतीं हैं, तो वहां पर उसे अपने पदचिह्न तो छोड़ ही दो अपना कोई नामोनिशान तक दिखाई नहीं देता।कवयित्री जब भी इस इतिहास में जाकर आपनी भूमिका तलाशती हैं, तो उसमें उसे हर पन्ने पर केवल और केवल पुरुषों की ही जयजयकार दिखाई देती हैं, तब वह व्यथित होकर कहती हैं–

"इतिहास की किताबें पढते हुए
राजा–रानियों के किस्से में कहीं नहीं मिली

इतिहास के पन्नों से बेदखल रही
स्त्री का कहीं कोई इतिहास नहीं" (किताब)

मानव सभ्यता के विकास के इतिहास में या संस्कृति, धर्म, राजनीति और समाज के संचालन में आदि से लेकर आज तक स्त्री पुरुषों के साथ बराबर के परिश्रम करते और सहते आयी हैं। उसके इस योगदान के संदर्भ में इतिहास में कहीं पर भी दो शब्दों का उल्लेख न करना।इसे वह पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था का षडयंत्र मानती हैं।इस व्यवस्था ने किस प्रकार बडी चालाकी से स्त्री को उसके ऐतिहासिक योगदान से खारिज कर चुल्हे–चौके के पिजड़े में कैद कर दिया हैं। इसे व्यक्त करते हुए अनुरागी जी कहती हैं–

"मैं स्त्री को खोजती रही तलाशती रही
उम्र के एक पाडवा पर आकर पत्ता चला
स्त्री गुमा दी गई थी चौके–बरतनों में
और मैं खोज रही थीं उसे किताबों में।"

इस प्रकार इतिहास में स्त्री के साथ जो छल–कपट हुआ वहीं भविष्य में न हो इसलिए रजनी जी वर्तमान में स्त्री समाज को जागृत ही नहीं करती तो उन्हें पढ–लिखकर आत्मनिर्भर बनाने की प्रबल प्रेरणा देकर वर्तमान समय में अपनी एक ठोस भूमिका बनाने की बात पर भी जोर देती हैं क्योंकि आनेवाले समय पर वह अपने पक्के निशान बना सके और चालक पुरूषसत्ताक व्यवस्था उसे नष्ट न कर सके।

"मैं चाहती हूं हर बच्ची के हाथ में किताब
जिसमें उसके स्वप्न जिंदा रहें
उनकी उम्मीदें बरकरार रहें।
और किताबें भरी हो प्रेम के स्पंदनों से
जहाँ वो बैठ सके सकुन से
खूद के साथ खुद के पास" (किताब)

रजनी अनुरागी जी एक स्त्री होने के कारण पुरुषों का विरोध नहीं करती तो पुरुषवादी व्यवस्था ने जिस तरिके से संपूर्ण स्त्री समाज के अस्तित्व, अस्मिता और स्वतंत्रता पर कब्जा कर उसे आपना गुलाम बनाया हैं,उससें मुक्ति की बात संयत स्वर में करती हैं। वह इस निर्मम व्यवस्था को निडरता से अपनी हिस्सेदारी भी माँगते हुये 'क्यों'इस कविता में कहतीं हैं।

"तुम हो मेरे मैं हुँ तुम्हारी

फिर भी नहीं कोई हिस्सेदारी
जीवन अजस्र बहती धारा
जिसमें ना कुछ मेरा...." (क्यों)

अपनी 'प्यार'इस कविता में रजनी जी पुरुषों को अगाह करती हैं कि तुम जिस के आधार पर बडी–बडी सफलता प्राप्त करते हो,उसका संभल आधार स्त्री का प्यार मात्र है और जब तुम उसके प्यार को ही नजरअंदाज करोगे तो इस बियावान में अकेले हो जाओगे और तुम्हारी कोई भी सफलता तुम्हारे लिए किसी काम कि नही रहेगी।इसलिए हमारे प्यार को समझने की कोशिश करो। हमारा प्यार हमारी कमजोरी न होकर तुम्हारे जीवन की सार्थकता का प्रतीक हैं।"

"प्यार है मेरा तुमसे
इसे कमजोरी न समझ लेना
किसी आतंक में यह पल नहीं सकता
अकेले हो जाओगे तुम
क्योंकि मेरा प्यार तुम्हारे लिए
सबसे बड़ा सहारा हैं।" (प्यार)

पुरुषवादी समाज व्यवस्था ने स्त्री जीवन को अनेक विडम्बना का शिकार बनाया है।यह व्यवस्था उसे उसके देह से अलग कर देखना ही नहीं चाहती।सदियों से इस व्यवस्था ने उसे मात्र आपने उपभोग का साधन ही माना है किंतु आज की स्त्री अपनी परंपरागत इस छबि को तोडकर खुद की एक नयी छबि बनाने का जी तोडकर प्रयास कर रही हैं।वह आयें दिन अपनी इस परंपरागत जर्जर हालत से उबरने के लिए एक नये सवेरे का इंतजार कर रही हैं कि उसे भी इस समाज व्यवस्था में बराबर का दर्जा मिलेगा, उसके ऐतिहासिक योगदान को स्वीकार कर पुरूष उसे उसकी हिस्सेदारी सम्मान से देगा, उसके साथ समतामूलक व्यवहार करेगा, उसके अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का स्वागत कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन में उसे बराबर का स्थान मिलेगा जिसके बल पर वह अपनी पुरानी छबि को तोडकर समाज में एक नई छबि के साथ जीवन जी सकेगी किंतु उसकी इन तमाम इच्छा आकांक्षा तथा सोच को सत्य में परिवर्तित होने से पहले ही पुरूषसत्ताक व्यवस्था निर्ममतापूर्वक गर्भपात करता हैं।इसे रजनी जी ने विडम्बना कविता में सटीक ढंग से उजागर किया हैं।

"बदलती हुँ करवटें रात भर

करती हूं इंतजार
पर भोर कभी होती ही नहीं
प्रसव की सी वेदना झेलती उठतीं हुँ।
पर रचा जाता कुछ भी नहीं
रोज ही हो जाता हैं गर्भपात
मेरी आशाओं का।" (विडम्बना)

इस प्रकार रजनी जी स्त्री जीवन की सच्चाई व्यक्त करते हुए, इस ओर संकेत करती हैं कि जब भी स्त्री अपनी वर्तमान जर्जर दशा को बदलने का प्रयास करती हैं तब–तब यह व्यवस्था उसके इस प्रयासों का ही गर्भपात कर उसे मृत्यु यातना ही देता आया है और दे रहा है।

आज हमारा समाज भले ही अपनी आधुनिक सोच–विचार एवं सभ्यता का ढोल पीट रहा हो किंतु इस आधुनिकता से भरे फँशनपरोस्त समाज व्यवस्था में स्त्रियों का शोषण थमने का नाम नहीं ले रहा हैं।आज आये दिन स्त्री पर अत्याचार बढ रहे हैं।उसकी हत्या हो रही हैं, कहीं दहेज के नाम पर तो कहीं वासनात्मक विचारों से उसके शरीर को नोचकर उसे प्रताड़ित और पीडित किया जा रहा हैं।इस नये समाज व्यवस्था की बागडोर आपने हाथ में लेकर स्त्री का शोषण करने के लिए नये–नये हथकंडे वर्तमान पुरुषवादी व्यवस्था अपना रही हैं।इसकी पोल खोलते हुये कवयित्री'नया क्या लिखुँ' इस कविता में कहती हैं।

"क्या लिखुँ नया....
नए ढंग हैं अत्याचार के
नए ढंग हैं उत्पीड़न के
लपलपाती जीभें नई
कुटिल आँखों में चालें नई" (नया क्या लिखुँ)

स्त्री जीवन का सफर आरंभ से लेकर आज तक कितना दर्दनाक, हिंसाग्रस्त, उपेक्षित और अपमानित रहा हैं।इसका वास्तविक चित्रांकन रजनी जी ने अपनी कविता में बेबाकी से किया हैं। उनकी'औरत' कविता स्त्री अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक कितनी–कितनी यातनाओं और वर्जनाओं का सामना करती हैं, इसका ज्वलंत दस्तावेज हैं।स्त्री उम्रभर अपने घर को बनाने, उसे सजाने–सवाँरने के लिए रात–दिन खपती हैं किंतु फिर भी उसका अपना कोई घर नहीं होता।उसकी बेघर होने की व्यथा को व्यक्त करते हुए कवयित्री कहती हैं।

"घर में
हर कहीं बिखरी होती हैं औरत
लेकिन उसका आपना कोई घर नहीं होता,
वह घर होती हैं, दूसरों के लिए
दूसरे रहते हैं उसमें..." (औरत)

इस प्रकार अपने घर–परिवार के लिए आपना सर्वस्व न्योछावर करना स्त्री की नियति बन गया है किंतु उसी घर–परिवार वालों की कोई जबावदेही उसके प्रति समाज में आज भी कहीं पर दिखाई नहीं देती। वह सब को संभालती–पाल–पोसकर बडा करती हैं।घर–परिवार की कोई कमजोरी कभी भी घर के बाहर जाने नहीं देती, हाडतोड मेहनत कर पूरे परिवार को एक रखती हैं।सबके दर्द की दवा बनती, सब के लिए वक्त–बेवक्त अलग–अलग किरदार निभाती हैं।इन सबके बदले में उसे क्या मिलता हैं तो उसका अपना घर–परिवार में कोई नहीं होता हैं।छोटीसी बात को लेकर उसे सडक पर खडा किया जाता हैं।उसके सम्मान पर ठोकरें मार–मार कर अपमानित किया जाता हैं।चरित्र पर उंगली उठाकर असाह्य पीडा दी जाती हैं।

जीवन के इस सफर में स्त्री अपने घर–परिवार का सच्चा हमसफर बनकर साथ देती हैं किंतु विवशता कि बात यह हैं कि उसे अपना जीवन सफर अकेले–अकेले ही गुजारना पडता हैं और उसके इस दर्द भरें सफर में केवल दो ही पाडाव आते हैं, एक पिता के घर से पति के घर और पति के घर से श्मशानघाट तक।यही हर भारतीय स्त्री जीवन की दर्दभरी सच्चाई हैं।जिसें रजनी जी ने बहुत ही सच्चे, सहज ,सरल शब्दों में अपनी कविता के द्वारा अभिव्यक्त किया हैं।

प्रस्तुत काव्य संग्रह स्त्री जीवन के दर्द का दहकता दस्तावेज हैं।स्त्री मुक्त होकर जी सके, सोच सके, विचरण कर सकें इसलिये पुरूषसत्ताक समाज व्यवस्था ने न पहले कभी किसी भूमिका का विकास होने दिया हैं न वर्तमान समय में इस दिशा में कोई पहल की जा रही हैं बल्कि यह व्यवस्था हर समय में स्त्री का शोषण, दोहन, उत्पीड़न कर उसे छल–कपट से धोखा ही देता आया हैं और दे रहा है। ऐसी बेरहम व्यवस्था का शिकार बनी स्त्री के जीवन की त्रासदी को अपने कलम से वाणी देकर, उसकी आतंरात्मा की आवाज को बुलंद कर उसके जीवन को एक नई दिशा और गति देने का सार्थक प्रयास युवा कवयित्री रजनी जी कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ 1) बिना किसी भूमिका के(कविता संग्रह)– रजनी अनुरागी

27.विवेकी राय की कहानियों में अभिव्यक्त दलित जीवन का यथार्थ

–डॉ.सचिन सदाशिव शिंगाडे

भारतीय समाज व्यवस्था वर्ण पर आधारित है। चार वर्णों में विभाजित इस समाज व्यवस्था में कुछ ही समुदायों को सर्वाधिकार थे। शूद्र कहने जाने वाले लोग अपने अधिकारों से वंचित थे। वे गुलाम थे तथाकथित सवर्णों के। स्वयं को श्रेष्ठ समझने वाले इस वर्ग ने शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखकर उनकी उन्नति के समग्र मार्ग अवरुद्ध किये। परिणामतः शूद्र शिक्षा के अभाव में पंगु बन गये। वे दासता का जीवन जीने के लिए विवश हो गये। उनको पशुओं से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश किया गया। उनकी अज्ञानता का लाभ उठाकर तथा उनको धर्म का भय दिखाकर उनका प्रायः आर्थिक शोषण किया गया। संपन्नता के समग्र साधन तथाकथित उच्च्य वर्ग तक ही सीमित थे। परिणामतः दलित समुदाय आजीवन विपन्नता से जूझता रहा। तथाकथित उच्च्य वर्ग के लोगों ने दलितों को मनुष्य की श्रेणी में कभी रखा ही नहीं। उनकी नजर में वह जानवरों से भी बदतर थे।

आज इक्कीसवीं सदी में भी हम जातिवाद की समस्या से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए हैं। आज भी सार्वजनिक जगहों पर, शैक्षणिक संस्थानों में, मंदिरों में दलितों पर अत्याचार करने की घटनाएँ घटित होती हैं। दलित अत्याचार की ऐसी अनेक वारदातें गाँव में आज भी घटित होती हैं जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि आज भी हमारा समाज इस जातिवाद की दलदल में फंसा हुआ है। सुरेंद्र प्रताप यादव ग्रामीण जीवन में व्याप्त जातिवाद की समस्या के संदर्भ में लिखते हैं– "भारतीय गाँवों की अनेक समस्याओं में संभवतः जाति की समस्या सर्वाधिक जटिल और गाँवों के सहज विकास में व्यवधान स्वरूप है। जाति और वर्ण के नाम पर एक जाति और वर्ण के लोग दूसरी जाति और वर्ण पर अनेक प्रकार अत्याचार करते हुए उन्हें उनके सहज मानवीय अधिकारों से वंचित करते हैं। जाति और वर्ण भेद का यह विषचक्र आज भी समूची भारतीय समाज की आत्मा को कुचल रहा है।" साहित्य में दलित लेखन का आरंभ डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के विचारधारा के आधार पर हुआ था। उन्हीं के विचारों से प्रेरणा लेकर प्रथमतः मराठी साहित्य में दलितों ने अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देना का प्रयास किया। इसकी देखा–देखी हिंदी में भी दलित साहित्य लेखन का आरंभ हुआ।

हिंदी कहानियों में दलित जीवन की वास्तविकता का चित्रण हमें प्रथमतः प्रेमचंद की कहानियों में देखने को मिलता है। उनकी 'कफन' तथा 'सदगति' कहानियाँ इस सदर्भ

में विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचंद की कहानियों में प्रथमतः दलितों को स्थान मिला है तथा उनके नारकीय जीवन को सजीव अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमचंद के उपरांत कहानियों में दलित जीवन के चित्रण की परंपरा का अनेक कहानीकारों ने निर्वाह किया। इन्हीं कहानीकारों में विवेकी राय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विवेकी राय ने भी अपनी अनेक कहानियों में इस जातिवाद की समस्या पर प्रकाश डाला है। उनकी अनेक कहानियाँ गाँवों में प्रचलित जातिभेद की वास्तविकता को दर्शाती हैं। 'नदी–नाव संयोग' कहानी में राह चलते एक व्यक्ति पर दूसरे उच्च वर्ग के सफेदपोश इसलिए क्रोधित होकर द्वेष की भावना रखते हैं कि वह व्यक्ति उनके आगे तेज गति से चल रहा है और उन्हें अदब के साथ आगे बढ़ने के लिए रास्ता नहीं दे रहा है। "अक्सर ऐसे मौके पर न जाने कहाँ से छोटे–बड़े की एक सूक्ष्म भावना आ जाती है। क्यों उसे अपने पीछे देखकर चट रास्ता छोड़ देना चाहिए ? क्यों नहीं बिना किसी तनाव के स्वाभाविक रूप से हमें उसकी बगल से निकल जाना चाहिए ? उसके पीछे–पीछे चलने से हमें क्यों हेठी माननी चाहिए ? इन सबका उत्तर साफ है। इसलिए कि वह छोटा है ? क्या इसलिए कि वह मेरी भाँति पूरी पोशाक में नहीं है ? क्या इसलिए कि वह नीच कहीं जाने वाली जातियों के परिवार का एक सदस्य प्रतीत हुआ ?।" इस प्रकार गाँवों में छोटी जाति के व्यक्ति का आगे चलना और रास्ता न देना भी अखरता है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यह दर्शाया है कि किस प्रकार ग्राम जीवन में लोगों के मन में जातिगत् अहम् भरा हुआ है।

समाज में गरीबों की प्रायः उपेक्षा ही होती है। अगर उसमें भी वह निम्न जाति का होगा तब तो उसकी और अधिक दुर्गति होती है। जाति के आधार पर गाँवों में आज भी व्यक्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है और उसे प्रत्येक स्तर पर अपमानित किया जाता है। इसी वास्तविकता को विवेकी राय ने 'ऐसा भी होता है' कहानी में उजागर किया है। प्रस्तुत कहानी का पात्र है भोला। भोला गरीब है और निम्न मानी जाने वाली चमार जाति का है। इसलिए वह हर जगह पर अपमानित होता है। इसकी वजह है गरीबी और निम्न जात का होना। लोग उसे जातिवाचक गालियाँ देते हैं। उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। भोला गरीब और अछूत होने के कारण समाज में उसकी कोई हैसियत नहीं है।

भोला के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार को कहानी के एक प्रसंग में उजागर किया है। भोला अभाव का मारा है। जब उसे पता चलता है कि शहर में कपड़ा मिलने वाला है और उसके लिए मुंशी के पास पुर्जी मिल रही है तो वह मुंशी के पास जाता है और पूछता है– "मुंशी जी ! हमें ना मिली ? हूँ दे तो रहा ही हूँ। यह चमार साला

बीच में क्या बोल रहा है ? क्या इसके बाप का नौकर हूँ। आँखों से आग बरसने लगी। मालूम हो रहा था कि यदि भोला थंडा पानी होता तो अपनी गर्मी बुझाने के लिए पी जाते। पुनश्च, बेहुदा साला, सुअर, कमीना और हरामखोर संबोधन लगा कर उसकी दीनता से भरी अर्जी पर फैसला दिया भाग जा यहाँ से।"

ग्रामीण समाज में यह धारणा प्रचलित है कि इस वर्णवादी समाज व्यवस्था का निर्माता ईश्वर है। जाति व्यवस्था मानव निर्मित है यह सत्य वह स्वीकार ही नहीं करते हैं। वर्णवादी व्यवस्था के निर्माण के संदर्भ में गाँवों के लोगों में किस प्रकार भ्राँतियाँ फैली हुईं हैं इसे 'पुराने गुलाब, नये गाँव' कहानी का पात्र प्रेसीडेंट सिंह के माध्यम से उजागर करता है। प्रेसीडेंट सिंह घोर जातिवादी है। वह वर्णवादी समाज व्यवस्था के समर्थक हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जाति की मर्यादा का पालन करना चाहिए। वह आंतरजातीय विवाह के भी विरोधक हैं। उन्हें लड़के–लड़कियों का अपनी जाति छोड़कर दूसरी जातियों में विवाह करना सख्त नापसंद है।

प्रेसीडेंट सिंह जाति व्यवस्था के संदर्भ में कहते हैं– "चूँकि ब्रह्मा ने ही वेद बनाया और उन्होंने ही जातियाँ बनायीं, इसलिए लिख दिया कि हर कोई अपनी जाति का ख्याल रखे। प्रेसीडेंट सिंह ने इस बात पर बहुत खेद प्रकट किया कि अब लड़की–लड़के बेकहे हो गये हैं। अपने मन से जहाँ होता है शादी कर लेते हैं। बड़े लोग क्या करें, आँखें बंद कर लेते हैं। लेकिन जाति ऐसी पक्की चीज है कि उस पर किसी का कुछ असर नहीं पड़ता।"

विवेकी राय ने जातिवाद जैसी कुप्रथा पर अपनी कलम द्वारा प्रहार कर उसके उन्मूलन पर बल दिया है। जातिवाद के दुष्परिणामों को दिखाकर उन्होंने इस प्रथा से मुक्ति का संकेत किया है। विवेकी राय समाज में प्रचलित जातिवाद को मानव तथा समाज के लिए घातक मानते हैं। यह जातिवाद समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से इस वास्तविकता को उजागर किया है कि जब तक हम इस समस्या से मुक्त नहीं हो पाते तब तक हम समाज तथा राष्ट्र के विकास की कल्पना तक नहीं कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–1-जीवन परिधि– विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, अलोपी बाग कॉलोनी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 20122- बेटे की बिक्री– विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 19813- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना– सुरेंद्र प्रताप यादव, भावना प्रकाशन, 126, पटपड़गंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992

28.'वीमा' नाटक में अभिव्यक्त दलित संघर्ष

–प्रा.डॉ.सावते प्रकाश नवनितराव
कला विज्ञान महाविद्यालय तेलगाव, ता.धारूर जि.बीड

हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी विधा जिस प्रकार लोकप्रिय है। उतनी ही नाटक विद्या लोकप्रिय है। साहित्य मानवीय जीवन के संघर्ष उत्कर्ष की यशोगाथा मानी जाती है। हिंदी साहित्य में जो आज विविध विमर्शो ने अपनी अभिव्यक्ति के जोर पर हिंदी साहित्य में आपनी पहचान बनाई है। नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृध्द विमर्श तथा दलित विमर्श इन विमर्शो में अभिव्यक्त विचार इनके जीवन की दाहकता को प्रस्तुत करते है। दलित विमर्श के लेखकों ने अनुभूति की दाहकता से समाज के उस पक्ष को सामने लाया है जो सदियों से दबे कुचले और हीन भाव से देखा जाता था। इन के अनुभव वास्तविकता की कसौटी पर निखर कर शब्दों में अभिव्यक्त हुए है। दलित विमर्श लेखको को एक अलग पहचान प्राप्त है। दलित विमर्श यह मराठी साहित्य की देन है यह भी कहा जा सकता है। दलित साहित्य में आत्मकथा, कहानिया, काव्य आदि लोकप्रिय है उसी को बराबर नाटक भी प्रचलित है लेकिन आत्मकथा और कहानियों की तुलना में नाटक कम है। लेकिन इनकी दाहकता तथा मानवीयता उतनी ही गहन है।

श्वीमाश नाटक रत्नकुमार सांभरिया द्वारा लिखा गया नाटक है। राजकुमार सांभरिया का जन्म 06 जनवरी 1956 में भाड़ावस, जिला रेवाडी हरियाण में हुआ। वे पिछले तीस वर्षो से राजस्थान में है। राजस्थान सूचना एवं जनसंपर्क सेवा के वरिष्ठ अधिकारी सहायक निदेशक रहे है। इनकी रचनाएँ समाज की नाक (एकांकी संग्रह), बांग और अन्य लघुकथाएँ (लघुकथा संग्रह), हुकम की डुग्गी (कहानी संग्रह), काल तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) खेत तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज (आलोचना), डॉ,अंबेडकर : एक प्रेरक जीवन (संपादन) श्वीमाश नाटक आदि।

श्वीमाश नाटक दो अंकों में लिखा गया है। प्रथम अंक में तेरह दृश्य है। दूसरे अंक में बारह दृश्य है। इस नाटक के प्रमुख पात्र जमन वर्मा जो नेत्रहीन है। वीमा नेत्रहीन, श्यामाजी जो नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक, आका जो निःशक्तो के धनीधोरा (नेताजी), देवत सिंह जो जमन वर्मा का दोस्त है। सी.सी.झा.पत्रकार अन्य पात्र रिक्शाचालक, थानेदार, कांस्टेबल, चपड़ासी तथा अन्य।श्वीमाश नाटक जमन वर्मा के संघर्ष और अपनी पत्नी श्वीमाश जिसका अपहरण नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामजी और उसके परिवारवाले करते है। उनसे वापस हासिल करने के लिए किए गए आंदोलन की कथा वस्तु है। जमन यह निम्न जाति का है और श्वीमाश एक नेत्रहीन है, उच्चवर्ग से है। वीमा जब गांव से भागकर शहर आयी थी तो जमन ने उसे गुंडे से बचारकर अपने घर ले आया था। और श्यामाजी को तब श्वीमाश उनकी दूर की रिश्तेदार है यह

पता नही था। इसलिए वह जमन को कहते है कि वह भी नेत्रहीन तुम भी नेत्रहीन हम उम्र से चाहो तो शादी कर लो।ष्श्यामाजी : वह भी नेत्रहीन। तुम भी नेत्रहीन वह भी सुंदर तुम भी संदुर। हम उम्र से भी हो तुम दोनों। चाहो तो शादी करलो। अभिभावक की भूमिका में मैं हूनाष[1]

जमन कहता है कि हम अलग सलग जाति के है। इसलिए कोर्ट मैरिज ज्यादा ठीक रहेंगा करके कोर्ट मैरिज कर लेता है। जब श्यामाजी को पता चलता है कि श्वीमाश उनके किसी दूर के रिश्तेदारी में आती है तो वह श्वीमाश को उनके घरवालों से मिलकर वहॉं से ले जाते है। और श्यामाजी परेशान जमन को कहते है कि, ष्सर ! सर !! तेरा सर। वह वीमा, तुम जमन वर्मा। वह जमींदार, तुम फ़ाकामार। वह सिर, तुम चरण। शर्म आनी चाहिए तुम्हें।...ष[2]जमन श्यामाजी से वीमा को खोजने की बात करता है तो वह उलटा उसे ही कहता है कि तुम ने वीमा से जात छूपा ली है। वह उच्च वर्ग की और तुम दलित, तुमने धोखा देकर उनसे शादी करली है। ष्हे नही, हां। जात छुपा गए तुम। बगुला भगत कहीं के। हर कोई ऊपर चढ़ना चाहता है, नीचे कोई नही आना चाहता। तुमने जात छुपा कर शादी कर ली बेचारी से कि दलित से सवर्ण बन जाऊ।ष[3] जमन उनके इस आरोप को झुटा साबित कर देता है वह कहता है कि कोर्ट मैरिज के वक्त वीमा को सब सच सच बताया था। इस बात पर श्यामाजी के मन की बात सामने आती है वह कहते है जा जा, जान बचा अपनी। न हाय न साय, दो कौडी की जात। इस तरह जमन को कहते है और उसे मकान और नौकरी से निकाल देते है।जमन एक नेत्रहीन तो है ही लेकिंन वह निम्न जाति का है यह बात श्यामाजी के द्वेष का कारण है।

जमन अपने ऊपर हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए वह नेत्रहीन के नेता उन्हें आका कहते है उनके पास फिरियात लेकर जाता है लेकिन वहाँ आका भी जमन वर्मा की मदत करने से मना कर देता है। वह कहते है – ष्हम सालों–साल, उम्र भर, बिना धर्म जी सकते है, बिना जात एक पल भी नही रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही पंख फडफडाता है। उडता है। तुमने अपनी औक़ात का अतिक्रमण किया है वर्मा।ष[4]यहाँ राजनीति के एक बडे नेता भी जाति के नामपर अन्याय करते दिखाई देते है। यह आज भी हमारे समाज में जाति के नाम पर अन्याय अत्याचार किया जाति है। इतना ही नही वह जमन वर्मा को धमकी भी देते है कि उनके पास बैठे लोग बहुत ख़तरनाक हैं। और जमन को वहां से भी निकाल दिया जाता है।जमन वर्मा और उनका मित्र देवत जो वह भी निःशक्त है। दोनों मिलकर थाने जाते है। और अपनी पत्नी के अपहरण की अर्जी थानेदार को देते है। काईवाई करने को कहते है। यह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एक्ट का केस है। इस की तफ्तीश उप–अधीक्षक के स्तर पर होती है। तब थानेदार भडक जाता है। और कहता है – ष्अरे, थानेदार तू है या मैं हूँ ? तफ्तीश कौन करेगा, यह तू जानता है या मैं जानता हूँ ? साहब आने को हैं। रवाना हो यहां से।ष
5

जमन को थाने से डांटकर वहाँ से रवाना कर देते है जहाँ न्याय की उम्मिद हो वहाँ एक नेत्रहीन तथा दलित के साथ इस तरह का व्यवहार होता है तो वहाँ की व्यवस्था आम आदमी को क्या न्याय दे सकती है। यह हम सोच सकते है। कई दिन जाने के बाद भी जमन के अर्जी पर कोई कारवाई नही होती तो जमन वर्मा और उसका मित्र देवत यह निर्णय लेते है कि लोकशाही के चौथे स्तंभ के पास जाने के लिए पत्रकार सी.सी.झा. से मिलते है और अपने उपर हुए अन्याय के बारे में सारी बाते बताते है। पत्रकार झा उनसे एप्लीकेशन की कार्बन कॉपी उनसे लेता है। झा. जमन और देवत को कहता है कि दरशन तो मैं खुद ही लगा दूंगा वह यह भी कहता ष्यही कि नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी ने मुझे नेत्रहीन की नेत्रहीन गर्भवती पत्नी का अपहरण करा दिया है। मुझे अध्यापक के पद से भी बर्खास्त कर दिया है और मुझे जान से मारने की धमकी दी है – जमन वर्मा, पूर्व अध्यापक, नेत्रहीन संस्थान।ष[6] इस तरह खबर पेपर में आएगे का आश्वासन देकर झा एक बडे नेता तो सेंटर से आए है उनकी प्रेस ब्रीफिंग है सर्किट हाउफस में वहाँ के लिए निकल जाते है।

जमन वर्मा और देवत अपनी अर्जी के बारे में जानने के लिए थाने जाते है तो थानेदार दोनों को दैनिक बाज़ की छपी खबर दिखा ता है और देवत को खबर पढकर जमन को सुनाने को कहता है खबर थी लडकी को जान से मारने की धमकी देकर जमन वर्मा ने उससे कोर्ट मौरिज कर ली। जब लडकी को जमन वर्मा के नीची जाति का, होने का पता लगा ता उसे मूर्च्छा आ गई। लडकी पर जमन वर्मा ज्यादतिया करता था उसके चंगुल से छुडाने के लिए श्यामाजी ने मदत की। वीमा के पिता और उसका भाई आए और उसे साथ ले गए। थानेदार उन्हें उनकी अर्जी वापस करता है और थाने से भगा देता है। यहाँ पत्रकार झा को दोगले पन की पोल खोली है। दलित को उस के सच को छुपाकर उसपर ही आरोप लगा दिया गया। जब झा और श्यामाजी के बीच इस जमन वर्मा को लेकर बात चित होती है। तब श्यामजी कहते है – ष्नीची जात होकर भी उसने बड़ी जात की लडकी से शादी की है। यह धर्मघात है। जात को मात है। बेटे झा, यह जात–पांत छुआछात ही हमारी सांसे है। जात मरी, हम बदर हुए ।ष[7]यहाँ समाज के उन लोगों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है जो अपने स्वार्थ और झुठे जाति के अभिमानियों की सोच जो दलित निम्नवर्ग की जाति के प्रति रिस्कार की भावना रखते है। श्यामाजी श्झाश बडी खुबसूरती से जाति के नाम पर अपने पक्ष तथा अपनी खबर छापने को तयार करते है उन्हें रिश्वत भी देते है।

ष्बेटे, आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है, जो मेरी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे, दुर्योग यह रहा कि वह लडकी मेरी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कूल में टीचर और उसकी पत्नी मेरी रिश्तेदार बेटे, आंखो देखे मक्खी नही निगली जाती न ?........... बस, एक मिनट बेटे (श्यामाजी उठते है। अलमारी खोलते है। उस में से बैग निकालते

है। उसकी चेन खोलते है। उसमें हाथ डालते है। बंद पुड़ी बाहर निकालते है और सी.सी. झा की जेब में खाली कर देते है। झा पैन और स्लिपपैड हाथ में लेकर उठ खडा होता है।ष्8एक नेत्रहीन दलित जमन को समाज में अन्याय के और झुठे आरोप के शिवाय कुछ नही मिलता। फिर भी जमन और देवत इन व्यवस्था के खिलाफ खडे रहते है वह आक़ा के खिलाफ धरने पर बैठ जाते है। यह धरना उनके नेता जो निःशक्तीं के हितों और रक्षण की बात करते है। उनके दफ्तर के सामने धरने पे बैठते है और दफ्तर में आक़ा या उनके कर्मचारीयों को घुसने नही देते और जोर जोर से नारे बाजी करते है। आक़र पुलिस बुलाते है लेकिन निःशक्तों की भीड इतनी है कि पूलिस भी कुछ नही कर सकी यहां पर संघटन की ताकद पर देवत कहता है – निःशक्तों के एकत्रित होने को मेंढक तोलने जैसा मानते हैं लोग। मै कहता हूँ, अगर निःशक्त अपनी पर उतर आएं तो लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।ष्9यहाँ यह साबित होता है कि कमजोर अगर संघटित होकर उनके उपर हो रहे अन्याय का विरोध्द करे तो वह निश्चित न्याय प्राप्त कर सकते है। और यहाँ यही साबित हुआ आक़ा और श्यामाजी जमन की पत्नी श्वीमाश को लेकर धरनेवाली जगह आते है। यह देवत कहता है – ष्हां–हा, वीमा ही है। वीमा भाभी है जमन! वह! ळमारी जीत हुई...। संघर्ष फलीभूत हुआ।

इस नाटक ने नेत्रहीन दलित के माध्यम से आज के व्यवस्था तथा जातिय द्वेष को प्रस्तुत किया है। यहाँ एक संस्था का संस्थापक, एक बडा राजनेता, कानुन की रक्षा करनेवाला बडा थानेदार और लोकशाही का चौथा स्वयं मानेजाने वाले पत्रकार इन सारी जगहों पर उच्च जाति के लोगों द्वारा होने वाले अन्याय की पोल इस श्वीमाश नाटक ने खोली है। किसी दलित पर जब अन्याय होता है तो वह थाने जाता है तो वहा अगर अन्याय करने वाले व्यक्ति जाति उच्च हो और वहाँ का अफसर भी उच्च वर्ग का हो तो वह उनकी शिकायत दर्ज ही नही करता। दुसरा राजनेता भी, यहाँ पत्रकार को भी जाति का वास्ता देकर सच्चाई को छुपाकर झुठी खबर छापने पर रिश्वत दि जाती है। रत्नकुमार कुमार सांभरियाने समाज के उस अन्याय को सामने लाया है। उच्च पदों पर आसिन न्याय, नियम को छोडकर जाति के नाम पर निम्न वर्ग पर अन्याय अत्याचार करते है।

सांबरियाने अंतिम में जो सकारात्मक दिखाई है कि वीमा को जमन के हवाली कर देते है। क्या? आज समाज में ऐसा हो सकता है। यह एक बड़ा सवाल है। आज भी दलितों को समानता, न्याय अपने हक के लिए संघर्ष करना पडता है यह एक कडवी सच्चाई है।

संदर्भ सूची. 1.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 44 2.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 19 3.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 19 4.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 31 5.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 55 6.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 62 7.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 66 8.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 67 9.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 75

29.नारी–मन की घुटन, तड़प और अंतर्द्वंद की सूक्ष्म अभिव्यक्ति :'पचपन खम्भे लाल दीवारें

–प्रा.डॉ. शेख मुखत्यार शेख वहाब

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

ए.शि.प्र.मं. कला महाविद्यालय, बिडकिन। तह.पैठण ; जिला–औरंगाबाद।

स्वतंत्र्योत्तर अस्तित्वादी चिंतन से प्रभावित होकर लिखने वाली सार्थक महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का नाम और उनका लेखन एक विशिष्ट प्रकाशदीप है। नारी जीवन की विसंगतियों को सोचा, समझा और उपन्यास की कृतियों में उन्हें आत्मसात किया है। परिवर्तित संदर्भों, नई परिस्थितियों तथा उलझन पूर्ण मनःस्थितियों के माध्यम से सूक्ष्म द्वद्व को उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। मध्यवर्ग, उसकी सांस्कृतिक चेतना और नारी अस्तित्व के मौलिक अन्वेषण का श्रेय उषा प्रियंवदा को ही जाता है। अनुभूतिजन्य साहित्य परंपरा उषाजी की अपनी देन है। आज के नारी जीवन की विसंगतियों को आत्मसात करके उन्हें आधुनिक रुप प्रदान करने का श्रेय उषाजी को जाता है। स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियां, मनःस्थितियां उनके द्वारा गहराई से आंकी गई हैं। नारी द्वद्व को समझने में और उसका चित्रांकन करने में लेखिका पूरी तरह सफल हो गई है। उषा प्रियंवदा जी अस्तित्ववादी जीवन दर्शन से प्रभावित है इसलिए उनके पात्रों में युगानुरुप निराशाएं, भय और संत्रास हैं। उनके पात्रों में परिस्थितियों से उभरने का साहस नहीं है परंतु पात्रों के आंतरिक द्वद्व का, उनकी दुविधाओं का और उन दुविधाओं से उभरने का साहस और प्रयत्न का जो अप्रतिम एवं अपूर्व वर्णन उषाजी ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' यह उपन्यास 1976 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की मुख्य नायिका है सुषमा जो एक सुंदर एवं शिक्षित नारी है। महाविद्यालय के एक महत्वपूर्ण पद पर कार्यरत होकर वह अपने परिवार का दायित्व भी निभा रही है। नील सुषमा से बहुत प्यार करता है लेकिन घर का दायित्व और नील की उम्र कम होने के कारण वह अपने प्रेम को निभा पाएगा या नहीं इस बात की उसे आशंका है। सुषमा भावना के अधीन होकर नील को दरवाजे से लौटा देती है और पचपन खम्भों से घिरी अपनी चार दीवारी में लौट जाती है।

सुषमा जब टूट जाती है तो उसे अपनी और स्थिरता का एहसास होने लगता है। वह अपनी सहेली मीनाक्षी से कहती है – "पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूंगी... उसे सीने से लगा रखूंगी। आज के सोलह साल बाद शायद तुम अपनी

बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी। 'कॉलेज' के इस पचपन खम्भों की तरह स्थिर... अचल...।" (उषा प्रियंवदा – पचपन खम्भे लाल दीवारें, द्वि.स. , पृ.सं.109–110)

सुषमा के पिता मध्यमवर्गीय व्यक्ति थे, उन्होंने सुषमा बेटी की असाधारण बौद्धिकता में भविष्य का बीज देख लिया था और उसको वे परिवार का सहारा बना देना चाहते थे, इसीलिए बेटी के विवाह के प्रति वे उपेक्षित रहे। दुर्भाग्यवश वे पक्षाघात के शिकार हो गए थे इसलिए सुषमा की नियति ही परिवार का दायित्व संभालने की बन गई। कृष्णा मौसी उसे समझाती भी है परंतु सुषमा अपनी स्थितियों से समझौता कर ही लेती है और महाविद्यालय में व्याख्याता एवं वार्डन बनकर जीती है। नील से परिचय, परिणय में पनपने से सुषमा कुछ समय तक मोहक मादक बहाव में बहने लगती है। उसकी सहकर्मी उसकी आलोचना करने लगती है। हॉस्टेल तक उसकी बदनामी होती है तब भी वह विचलित नहीं होती परंतु जब उसकी नौकरी के अस्तित्व का प्रश्न खड़ा होता है, तब वह विचलित हो जाती है। नील जब विदेश चला जाता है तो उसे एहसास होता है कि – "नील के बगैर मैं कुछ नहीं हूं, केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि और अब ऐसी ही रहूंगी मन की वीरानियों में भटकती हुई।" (उषा प्रियंवदा – पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.सं.108) यह यथार्थवादी स्थिति है कि यह त्याग समाज में आज भी लड़कियों द्वारा अपनाया जा रहा है। बेटे माता–पिता का उत्तरदायित्व नहीं संभालते परंतु बेटियां अविवाहित रहकर भी परिवार का दायित्व निभा रही हैं। इसलिए इस कथन को मात्र आदर्शवाद के घेरे में नहीं बांधा जा सकता।

नारी–मन की घुटन, तड़प और अंतर्द्वंद का सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास की उपलब्धि है। यह उस समय की मध्यमवर्गीय भावनाओं और जीवन मूल्यों की सशक्त यथार्थ अभिव्यक्ति है। सुषमा की घुटन नवीन मूल्यों की उपज है। नारी–मन की कोमल भावनाओं और कर्तव्य के बीच का मानसिक द्वंद्व और मानव मूल्यों को निर्धारित करने में यह सफल उपन्यास है। डॉ. विमला शर्मा सुषमा को आत्मकुंठा से ग्रस्त चरित्र मानती है।" (साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रुप – डॉ. विमला शर्मा, प्र.सं., पृ.सं.108) परंतु ऐसा नहीं है सुषमा की पारिवारिक विवशताएं तथा उसकी आत्मा और विवेक ही है जो उसे नील को छोड़ने के लिए मजबूर करती हैं। कुंअरनारायण के शब्दों में – "किसी भी स्तर पर जीते हुए वे (उषा जी के नारी पात्र) विवेक के तरफदार हैं।" (विवेक के रंग – सं. देवीशंकर

अवस्थी, प्र.सं., पृ.सं.37) इस उपन्यास में लेखिका ने शिक्षित नारी की एक नई त्रासदी को उकेरा है।

पारिवारिक वातावरण में नारी की जो स्थिति है। उसका व्यापक एवं विशद चित्रण करने में लेखिकाओं को सफलता प्राप्त हुई है। सास, जेठानी, देवरानी, पत्नी, भाभी आदि रिश्तों में बंधी नारी प्रायः घुटन महसूस करती है। वह अपने अस्तित्व और अपनी स्वाधीनता के लिए छटपटा रही है। न उसे पढ़ने–लिखने दिया जाता है, न घर से बाहर जाने की अनुमति और न ही अपने विषय में खुलकर सोचने का अवकाश। वह किसी पराए पुरुष से बात तक नहीं कर सकती। लाज–शर्म और नैतिकता के पुराने आदर्शों में जकड़ी नारी के त्याग, सहनशीलता एवं प्रेम की करुण कथाएं भी महिला लेखिकाओं के विषय बन गए हैं, जिनमें पारिवारिक घुटन का चित्र भी देखने को मिलता है।

उषा प्रियंवदा के 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा का जीवन अपरिवर्तित दिखाई देता है। सब कुछ बदलने के बाद भी नहीं बदलेगी केवल सुषमा, कॉलेज के पचपन खम्भों की तरह। कॉलेज की दीवारों की भांति उसके जीवन का भी एक ही रंग हो होगा और एक ही काम होगा–कमाना और परिवार जनों को भेजना। परिवार के बोझ से दबी सुषमा का यह चित्रण देखिए – "जीवन की भागदौड़ और आजीविका का के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गए दो वर्ष और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खींच गई थी; दायित्व की कुंठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की...। कभी–कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिए सुषमा कांपने लगती।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.31–32)

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा ने परिवार का भार को उठाया परंतु उसका जीवन बोझिल हो जाता है और वह घुटन महसूस करने लगती है। उसके अंतर्मन का यह चित्र देखिए – "यदि पिताजी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते। लोग लाख प्रयत्न कर बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। क्या उसी के पिता अनोखे थे ? असल बात तो यह थी कि उन्होंने यह चाहा ही नहीं कि सुषमा की शादी हो।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.33)

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा परिवार के भरण–पोषण की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा लेती है और उसे निभाने का प्रयत्न भी करती है। उससे निल नामक युवक प्रेम करता है, वह भी उससे प्रेम करती है परंतु जिम्मेदारियों के कारण अपने प्रेम को नष्ट करने के सिवाय कोई चारा उसके पास नहीं है। इसलिए वह नील को समझाती है – "मेरी

बहुत जिम्मेदारियां हैं। तुम से तो कुछ भी छिपा नहीं है, पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है...।"(पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.104)

नारी आज पुरुष के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चल रही और पुरानी मान्यताएं भी बदल रही हैं। एक युग था निश्चित आयु तक ही विवाह किए जाते थे, यहां तक कि असमय भी। परंतु आज पुरुष के साथ–साथ नारी भी जब तक अपने पैरों पर खड़ी नहीं होती तब तक शादी करने से इन्कार कर देती है। इतना ही नहीं आज तो ऐसी अनेक नारियां मिलती हैं जो अपने परिवार का भार बेटे की तरह अपने कंधों पर उठा लेती हैं और शादी का विचार ही छोड़ देती हैं। आज के समाज में एक नहीं अनेक ऐसी युवतियां मिल जाएंगी जो अविवाहित हैं और अविवाहिता ही रहना चाहती हैं। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा अपने परिवार को निराधार नहीं छोड़ना चाहती है। विवाह संबंधी उसका यह दृष्टिकोण देखिए – "जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं। सिर्फ विवाह ही तो नहीं और देशों में देखिए, बिना शादी किए ही औरतें कैसे मजे से रहती हैं। (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.10)

आधुनिक युग में और असमानता तथा शोषण दो स्तरों पर देखने को मिलती है, एक तो वर्गीय असमानता तथा वर्गीय शोषण और स्त्री–पुरुष असमानता तथा स्त्री शोषण। स्त्री–पुरुष समानता का चित्रण भी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में मिलता है। वर्तमान समय की नारी ने अपने दलित–शोषित और रुप को उतार फेंका है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा ऐसी ही पात्र है जो सामाजिक मापदंडों को नहीं स्वीकारती। वह पुरुष से अपना अधिकार मांगना चाहती है और परंपरागत रुढ़ियों का विरोध करती हुई कहती है – "किसी की परवाह नहीं करती हूं।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.10) पुरुष और स्त्री दोनों को जीने का अगर समानाधिकार है तो हम पर ज्यादाती क्यों ? हम भी मनुष्य हैं। इस बात की चेतना अब नारियों में आ गई है।

महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में भी ऐसी अनेक व्यक्ति रेखाएं हैं, जो परिवार के लिए, परिवार की सुख–समृद्धि के लिए, परिवार का भार वहन करते–करते अपना भविष्य भी कुर्बान कर देते हैं। इसी तरह 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की नायिका है – सुषमा, जो अपने पूरे परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेती है। उसके जीवन में नील नामक युवक आता है परंतु सुषमा अपनी जिम्मेदारियों के कारण शादी करने से इन्कार करती है। क्योंकि छोटे–भाई–बहन और पिताजी अपाहिज होने के कारण घर चलाना अपना कर्तव्य समझती है। वह जानती है कि, उसकी अपनी कमाई ही घर की एक

मात्रा आय है। इसलिए वह चाहकर भी शादी नहीं कर सकती। इस संदर्भ में सुषमा करती है कि – "पर इन सब को भी तो मदद की जरुरत है मौसी ! पिता को पेंशन मिलती ही कितनी है ? उसमें तो दो वक्त दाल–रोटी भी ना चले। मैं भी अगर ना करुं तो किस के आगे हाथ फैलायेंगे। लड़कों को पढ़ाना है ही सड़क पर तो आवारा घूमने नहीं दिया जाएगा।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.11)

इस तरह उषा प्रियवंदा ने अपने उपन्यास 'पचपन खंम्भे लाल दीवारें' में ऐसी सशक्त नारी का चित्रण किया है, जो केवल अपने पैरों पर खड़ी नहीं हुई हैं बल्कि अपना पारिवारिक दायित्व निभाते–निभाते वह परिवार के भविष्य के लिए अपना भविष्य बर्बाद करती है।

उषा प्रियंवदा के 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में सुषमा की कुंठा का चित्रण मिलता है। पचपन खम्भों वाला कॉलेज ही मानो उसकी नियति है। जीवन में बहुत कुछ बदल जाएगा, नहीं बदलेगी केवल सुषमा, कॉलेज की उस बिल्डिंग की तरह। पचपन खम्भों की तरह उसके जीवन में भी खम्भे की निश्चित ही हैं। अपने जीवन की खुशियां त्यागकर वह अपने घर वालों के लिए जो कुछ कर रही है, पर क्या उससे वह सुखी है ? नहीं। बल्कि वह अपने जीवन में कुंठा का अनुभव कर रही है और उसके जीवन में नैराश्य आ गया है। उसी के शब्दों में – "जीवन की भाग–दौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गए दो वर्ष और अब तो उसके चारों और दीवारें खींच गई थीं, दायित्व की, कुंठाओं की अपने पद की गरिमा और परिवार की। कभी–कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिए सुषमा कांपने लगती। तब वह चाहा उठती की दो बाहें उसे भी सहारा देने को हों। इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी सम्बोधन करें।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.31–32)

लेखिका ने यहां यह भी सिद्ध किया कि, नारी अपना व्यक्तित्व खुद बना सकती है, परिवार का भार भी उठा सकती है वहीं ये नारियां दो बाहों के सहारे के लिए, प्रेम के लिए या शरीर की प्यास बुझाने के लिए तरस जाती है , इसका चित्रण करने में भी नहीं हिचकिचाती हैं।

उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में सुषमा परिवार का बोझ उठाते–उठाते थक गई है। क्योंकि वह केवल परिवार का नहीं बल्कि अपनी जिंदगी का बोझ भी अकेले ढो रही है।एक दिन क्रोधित होकर वह अपनी मां से सवाल उठाती है – "दुनिया क्या करती है, यह मेरे सामने न कहो अम्मा' सुषमा ने पट् से काफी बंद कर दी। 'जरा अपने दिल के अंदर झांक कर देखो कि तुमने मेरे लिए क्या किया है ?मेरा आराम से रहना ही तुम्हें खटकता है। तुम शादी तय करो नीरु कि मैं अपने सारे गहने–कपड़े उठा कर दे डालूंगी यही तो तुम चाहती हो।" (पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा, पृ.सं.84)

30.हिंदी काव्यों में पर्यावरणीय स्थिति एवं संरक्षण

– *डॉ शिंदे मालती धोंडोपन्त*
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आ. बालापुर ता कलमनुरी जी. हिंगोली (महाराष्ट्र)

पृथ्वीउन्नीसवीं सदी पर विशेष या निश्चित हिस्से में उपलब्ध होनेवाले सभी सजीवों के ईर्दगिर्द की, स्थिति याने पर्यावरण मूलतः फ्रेंच शब्द से अंग्रेजी में (म्दअपतवदउमदजद्ध शब्द प्रचलित हुआ। यह स्थिति एक या अनेक तरह से बनती है। उसमें एक या अनेक सजीवोंका अस्तिव रहता है। सजीव निर्जीव घटक,निसर्ग निर्मित घटक या मानव निर्मित घटक इन सब को मिलाकर पर्यावरण निर्माण होता है।यह पर्यावरण स्थल काल एवं जीव सापेक्ष रहता है। प्रतिकूलता के अनुसार प्राणी,वनस्पति,कीटक और मनुष्य पर इसका परिणाम होता है।। 5 जून 'पर्यावरण दिवस' विश्वभर मनाया जाता है।। पर्यावरण की परिभाषा– 1. जॉन तर्क–" पृथ्वी पर पर्यावरण का आकलन और मनुष्य जीवन का पर्यावरण पर होनेवाला प्रभाव याने पर्यावरण शास्त्र है।" 2.–" पर्यावरण पर निर्माण होने वाली समस्याए और उसपर होनेवाले उपाय का 3. अध्ययन पर्यावरण शास्त्र में किया जाता है।" डैनियल डी. चिरास–" जैविक और अजैविक घटक इनके आपसी क्रियाओंका अध्ययन करनेवाला पर्यावरण शास्त्र है। 4. सजीवों के और मानवों के समुहपर या जीवनपर इर्दगिर्द के नैसर्गिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, घटकों का एक साथ प्रभाव गिरता है। इस प्रभाव के शास्त्रीय अध्ययन को पर्यावरण कहते है।" पर्यावरण के प्रकारों पर उसको वर्गीकृत किया जा सकता है। 1. भौतिक (नैसर्गिक) पर्यावरण(मिट्टी,पानी,हवामान) 2. सामाजिक सांस्कृतिक (मानवनिर्मित) पर्यावरण–(लोकसंख्या, शहरों) 3.जैविक पर्यावरण (सूक्ष्म जीवजंतु, प्राणी,वनस्पति) इन सब जे साथ साथ साहित्य में भी पर्यावरण की स्थिति क्या है।इसे देखा जा सकता है। वृक्षारोपण की महिमा का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रंथों में काफी रहाहै। 'मत्स्यपुराण' में लिखा है कि –'दस कुएं एक तालाब के बराबर है। दस तालाब एक झिलके बराबर है। दस झीले एक पुत्र के बराबर है। एवं एक पुत्र एक वृक्ष के बराबर है। ' आदिम युग से ही मानव प्रकृति सौंदर्य द्वारा अनुप्राणित होता रहा है। सत्य तो यह है कि, प्रकृति में सौंदर्य है। प्रकृति में कमलो के कोमल सौंदर्य से लेकर पर्वत शिखरों और समुद्र का उदात्त सौंदर्य विद्यमान है। ईश्वरीय रचना मात्र ही प्रकृति है। प्रकृति सौंदर्य का मानव द्वारा प्रकृति के विस्तार चयन एवं विभिन्न संयोगों का प्रतिफल है। प्रकृति सौंदर्य का अपार भंडार है।प्रकृति का उदय विशाल है। वह सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिए सदैव से ही समान रूप उदार रही है। यनक मानवीय का उदार प्रांगण प्रकृति है। आधुनिक हिंदी

काव्यों में प्रकृति सौंदर्य का बहुविध वर्णन प्रस्तुत है। प्रातः कालीन सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है। कि उषा सुनहला वस्त्र पहनकर आ गई।"प्राकृतिक सौंदर्य वृद्धि में विभिन्न फलकों का असीम योगदान है। पर्वत, शिखर, मरुस्थल, हरे–भरे मैदान,वृक्ष, झरने, पुष्प फूल,विविध पशु आदि प्रकृति सौंदर्य को प्रकटित करे के विभिन्न साधन रहे है। लेकिन आज दिन ब दिन पर्यावरण का ह्रास होता हुआ नजर आ रहा है।साहित्य में भी इसका दर्शन हुआ है।आज मनुष्यों ने जंगलों को काटने का कार्य किया है। और वह भी केवल विकास के नाम से उन्हें प्रगति का पागलपन चढ़ हुआ था। इसलिए उन्हें रोकने की आवश्यकता है।इसलिए कवियत्री उषा श्रीवास्तव ने अपनी जंगल 1कि कविता में लिखा है–
" जंगल बहुत कट गए है/ बाहर के भी,/ अंदर के भी/ अनचीन्हे विकास की धुन में/ अनजानी प्रगति के पागलपन में/ उन्हें और मत काटो। जीवन की छाया मयी हरितमा/ और अंतर की नीलम शांति। दोनो को वे संभाल लेंगे।" 1

उनके अनुसार अगर हैं देश मे अंतर बाह्य शांति चाहते है। और जीवन को जगमय हराभरा बनाने के लिए जंगल को काटना नही चाहिए। आज का मनुष्य यंत्रवत बना हुआ है। उसके मस्तिष्क को कंप्यूटर की भाँती अलग अलग प्रकार के काम लगते जा रहे है। अधिक विकसित बौद्धिकता की आवश्यकता आ रही है। और अधिक बौद्धिकता कान की वजह से मस्तिष्क तपता चला जाता है। इसलिए कवियत्री ने जंगल 2 कविता में कहा है–"जलते आकाशऔर तपते हुए मस्तक के बीच/ जंगल का ही तो हाथ है। जो रुका रहता है।/एक को बदलो का चंदन लेप देता है।/दूसरे को फूल–पत्ते का पर्याय खो जाएगा।"

ऊपर के तपते आकाश और तपते मस्तक के बीच को सही सलामत रखने का संदेश दिया है। क्योंकि जंगल ही कि वजह से बदल आते हैं और शांति देने का कार्य करते है। और अगर जंगलो को हटा दिया गया तो मनुष्य शीतलता को ही खो देगा। " उन्नीसवीं सदी में विश्वभर में पर्यावरण का विनाश बहुत ही तेजी के साथ हुआ।भारत के राजा महाराजाओं में शिकार एक शौक था। इस शिकार के कारण अनेक दुर्लभ जानवरों की संख्या घटती गई।' अपनी वीरता को बतलाने के लिए उन लोगो ने हर एक जंगली प्राणियों को मौत के घाट उतार दिया था।दूसरी और कस्बो और शहरों के विकास के लिए जंगल नष्ट किये जाने लगे। कभी इस देश मे घने जंगल थे। परंतु बढ़ती आबादी तथा व्यक्तिगत शौक और फैशन के नाम पर पर्यावरण का तेजी से विनाश शुरू हुआ। बीसवीं सदी के छठे सातवे दशक में इस विनाश के परिणाम समझ मे आने लगे। वर्ष का प्रमाण

कम हुआ। गर्मी बढ़ती गई, पर्यावरण में स्थित प्राणवायु की मात्रा घटती गई। यंत्रो तथा यातायात के साधनों के कारण हवा में प्रदूषण बढ़ता गया। कारखानों के कारण पानी दूषित हुआ और मनुष्य ,संस्कृति संकट में आ गई। यूरोप में पर्यावरण के असंतुलन को लेकर अनेक अध्ययन शुरू हुए। जो निष्कर्ष प्राप्त हुए उससे घबरा गए और फिर ''धरती बचाओ' अभियान की शुरूआत हुई। पर्यावरण विनाश आज मनुष्य जाति के सम्मुख खड़ी एक गंभीर समस्या है। इससे निपटने के लिए अनेक कानून बनाये जा रहे है। नदियों के पनियो को शुद्ध करने के की मुहिम चलाई जा रही है। वृक्ष संगोपन तथा जंगल सुरक्षा के लिए चिपको आंदोलन शुरू किए गये है। दुनिया की प्रत्येक सरकार को इस संबंध में कड़े से कड़े कानून बनाने का आग्रह किया जा रहा हूं।जनसंख्या में असामान्य वृद्धि भी वास्तव में एक पर्यावरण विषयक समस्या है। इससे निपटने के लिए। अनेक कानून बनाये जा रहे हैं।आज विश्वभर के वैज्ञानिक तथा इससे संबंधित विशेषज्ञ इकठ्ठे होकर इस पृथ्वी को सुरक्षि और स्वस्थ बनाने के लिए। प्रयत्नशील है। विश्वस्तर पर यह सब हो रहा है। व्यक्तिस्तर पर भी प्रयत्न होना जरूरी है। हमे हमारे आचरण में ही बदलाव लाना होगा। पर्यावरण और मनुष्य जीवन का गहरा संबंध है इस संतुलन में ही हमारे अस्तित्व की सुरक्षितता है। इसलिए इसके प्रति गंभीर होना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। आज जल की स्थिति इसप्रकार हुई है कि जल के लिए मानवों को तरसना पड़ रहा है। उसके कारण देश पूरा सफेद पड़ता जा रहा है। लेकिन सभी हाथ ही मलते रह रहे हैं। इसलिए कवि कहते है।–" छोड़ता निशिदिन विश्वास/पाकर यह श्याम देश श्याम वेश /और स्वेत–स्यामल केश है!हाथ मल रहा हूँ मैं /जल नही रहा हूँ मैं।" समाज के सभी मनुष्यों को पर्यावरण रक्षा के लिए जल बचाने के लिए संदेश दिए जा रहे है। इसमे कवियत्री डॉ. बीना गुप्ता ने भी कहा है। –"महचित का वरदान–यह जल/ बूँद बूँद बचा लो / जल–मूल जीवन का, जग का,/ बचा लो 'पानी' अपना/ पानी उत गया तो/ क्या बचा?।" 3- इसीलिए जल ही जीवन जीवन है। जल है तो जीवन है। सृष्टि को सजग बनाने के लिए श्रम की आवश्यकता है। बूँद जल का बचाना है क्यो की पानी समाप्त हुआ तो अपना पानी आने पत, प्रतिष्ठा भी उतर सकती है। उसे भी हमे बचना है।जल प्रदूषण निरंतर देश मे होता जा रहा है। इसलिए कवियत्री ने गंगा के रुदन को बताते हुए यह कहा है। कि वह अपना संरक्षण माँग रही है।क्योंकि अब हमें यह अहसास होना चाहिए कि माँ गंगा से ही हमारा अस्तित्व है।– आह! यह गंगा इस कविता में कवियत्री डॉ.सुरचना त्रिवेदीजी ने कहा है।–" किन्तु कलुषता मानव मन की दिखती माँ के निर्मल तन

पर/पॉलीथिन, उच्छिष्ट, मलिनता देता माँ के मृदुल वसन पर/ इसपर भी जब तुष्टि न मिली, बांध–बंधनों में कस डाला / घोल दिया इसकी लहरों में जहर,डाल सीवर का नाला। आह ! आज यह गंगा माता रोती और बिलखती हर क्षण/ अपने ही घर के आँगन में माँग रही अपना संरक्षण/ है मानव ! अब भी तुम चेतो, माँ से ही अस्तित्व तुम्हारा/ ये गंगा माँ थाती अपनी क्या तुमने यह तथ्य विचार.... तकर लो संकल्प आज ही/ इसका सब विधि रक्षण कर ले,,/ पावनता–शीतलता से ये/ तन–मन–जीवन पवन कर ले।" 4-

पर्यावरण का रक्षण अगर करना है तो वन का रक्षण करना चाहिए यह वन शब्द वन कविता के माध्यम से लाल बिहारी लाल कहते है। ––"वैदिक कालीन मानव / भोजन के लिए, फल–फूल पर आश्रित था,/आज भी भोजन के लिए मानव/ इन्ही वनों पर आश्रित है।/आज वनों का महत्त्व बढ़ गया है।/ इसका उपयोग अब खाने के अलावा/ औषधि एवं अन्य रूपों में भी होने लगा है।/।"5- यह आज तक प्रचलित है। इसका महत्त्व आज बढ़ता गया है। पर्यावरण संतुलन। के लिए भूमि के एक तिहाई हिस्से पर वनों को लगाने की जरूरत है। लेकिन अब उसकी मात्रा एक चौथाई से भी कम रह गई है। आज इसे बचाने की सख्त आवश्यकता है नही तो वनों की गोद मे विकास करनेवाली सभ्यता वनों के कारण ही विनाश की गोद मे समै जाएगी इसीलिए उसे लोप होने की नही बल्कि रोपण की आवश्यकता है।पादप का रोना कविया में लाल बिहारी लाल ये कवि कहते है। –" पादप को अधुनिक युग मे ।वैज्ञानिकों ने वनों को तीन रूपों में डाल है। शाक, झाडी, वृक्ष इन तीन रूपो में भी जीवों के काम आते है। जीवन से मृत्यु तक हर प्रकार से यह जीवों को ऊर्जा दिलाने का और फर्ज निभाकर अनमोल सहयोग देते है।" 6- लेकिन मनुष्य जीव इनके साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं।ईनक अस्तित्व संकट में पड़ गया है। जीवों की हवा खराब हो जाएगी और जीवों को जीने के लिए प्राणवायु ऑक्सीजन की कमी हो जाएगी तब जीवों को अपने जान बचाने के लिए डर–ब–दे भटकना पड़ेगा। इसलिए अभी समय है। सुधर जाओ वन के होने की और उसके रोने की आहट समझो इसीलिए कवि मौसम कविता के द्वारा बढ़ती हुई आबादी को रोकने का संदेश देते हुए कहते है। ––" प्रकृति में मौसम/ पहले सा नही रह/समय पर आता तो है–/ परंतु वो बात नही/जो पहले होती थी।/ इसका मुख्य कारण बढ़ती हुई आबादी है।/ जनसंख्या विस्फोट से/ संसाधनों पर तेजी से/ दबाव बढ़ रहा है।"7- बदलते मौसम के साथ जनसंख्या वृद्धि हुई तो समस्त जीवों के सामने संकट उत्पन्न होंगे ऊपर से प्रदूषण का कहर और बढ़ेगा।इसके

साथ ही शहर की की सारी समस्याएं हैं, उसमे कहि बिजली की,तो कई कभी दान पानी की रोजगार की, नोकरी की, आबादी की, समस्याए है। इसे रोकना जरूरी है। वरना मनुष्यो को हि उसके रक्षण का संकल्प करना चाहिए शहर इस कविता में कवि कहते है –" यह एक गिलास दूध से/ तो बेहतर है गांव का एक गिलास पानी/ यहां के ए.सी. युक्त हवा से तो/ बेहतर है गांव के पीपल की छाव/ गांव हर मामले में शहर से बेहतर है/ ....तुम इस घुटन भरे वातावरण में/ जी भी नही सकोगे/ तब तुम्हें जीने के लिए/ कंधों पर ऑक्सीजन का/ सिलेंडर लेकर चलना पड़ेगा।/ जय तुम ऐसी/ जिंदगी चाहते हो?/।" 8- आज देश की आबादी मनुष्य की पावन शीतल करने के लिए और उसे जीवन देने के लिए वही सहायता कर सकती है।इसीलिए शहर हो या गांव आबादी पर लगाम लगनी चाहिए। आजादी के लगभग 75 साल साल बीत चुके है।फिर भी देश की अवस्था दिन–ब–दिन बिगड़ती जा रही है।देश की जनता आज भी स्तब्ध है।छायादार वृक्ष अधिक से अधिक कटते जा रहे है फिर भी जनता स्तब्ध है इसलिए आजादी के बाद कविता में टेकचंद गुलाटी लवणजी कहते है।–" देश की जनता जनता स्तब्ध है/छायादार पेड़ थे, ज्यादातर कट गए।/।" 9- अमीरों के यह गमलों में मनी प्लांट सजते है आज की शहरी संकृति की कृत्रिमता को लेकर यथार्थ से दूर, कविता में गाफिल स्वामी यह कवि कहते है। ––" अमीरों के यहां/ गमलों में लगे/ अलमारियों में सजे/ उस मनी प्लांट से/ तो बेहतर है/ पीपल व पलास का पेड़/ जिसकी छाव में/ राहगीर पनाह तो पाते है।" 10- क्यो की जो नैसर्गिक है वही मनुष्य के लिए अधिक बेहतर है। पर्यावरण का ह्रास निरन्तर मनुष्य की ओर से होता जा रहा है। हम अपने लिए विनाश करते ही जा रहे है। लेकिन अपनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए विरासत ने हम उन्हें वृक्ष हीन बनाते जा रहे है। क्या वृक्षहिं भूमि ही देकर जाएंगे तो उन्हें सांस लेने के लिए मास्क पहनना पड़ेगा।इसीलिए कवि देवेंद्रकुमार मिश्रा उनकी कविता में कहते है।–" एज ऐसा हिंदुस्तान दे जाओगे/ जिसकी रीढ़ टूटी हो, ढांचा चरमराया हो,/ शासक भ्रष्ट और भविष्य अंधकारमय हो/ एक ऐसा भारत दे जाओगे।"11- धर्म जाती, समाज के नाम पर जमीन के टुकड़े टुकड़े करके दोगे अपने बच्चों को कारखानों से निकली दूषित वायु,दूषित जल, ये सभी हम अपने बच्चों को विरासत में कुछ बी अच्छी बातें नही दे पाएंगे। देश मे चहू और पर्यावरण संरक्षण का अभियान चलाया जा रहा है। उसका प्रबोधन जगह जगह पर कराया जा रहा है। जमीन को साफ कराने का हवा ने से जहर हटा देने का पानी का प्रदूषण कर करने का, पर्यावरण

संरक्षण का, अभियान चलाया जा रहा है। इसके साथ ही जंगल रक्षण जीव रक्षण वनों, पेड़ो का रक्षण कर रहे है। भौतिकता के बाद भी जीव एवं अजीवों का असंतुलन मिटाया जा रहा है। फ्लो में स्वाद फूलों में खुशबू बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए। इसीलिए लाल बिहारीलाल अपनी कविता पर्यावरण संरक्षण में कहते है। –" हम प्रयावरण संरक्षित करने का अभियान चला रहे/भूमि से कहर,हवा से जहर, पानी से गदला हटा रहे/ हम पर्यावरण संरक्षित करने का अभियान चला रहे।"12- पेड़, पौधे सुख जाएंगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि जीवन ही समाप्त हो रहा है।निराला कहते है। ' आम की डाल जो सुखी दिखी कह रही है अब यह पिक या शिखी नही आते पंक्ति में वह दु लिखी। नही जिसका अर्थ जीवन ढह गया है। स्नेह निर्झर बह गया है।' वह पेड़ी की कतार न होने से श्रमजीवी वर्गों के लोग दिनरात मेहनत करते है। कड़ी से कड़ी धूप में भी वह निरंतर कार्य करते है। ऐसे श्रमिको के लिए कम से कम छायादार वृक्षो का होना भी जरूरी है।–" नही छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार तले, उठी झुलसती हुई, रुई ज्यो जलती हुई बहु,गर्द चिंगारी छा गई।"

निष्कर्ष – इस प्रकार कवियों ने हिंदी साहित्य के काव्य में पर्यावरण संरक्षण के लिए अपने साहित्य के माध्यम से अनेक प्रयास किये है। लोंगो का प्रबोधन कराने का प्रयास काव्य के माध्यम से किया है। और पर्यावरण ह्रास का चित्र भी प्रस्तुत किया है। जैसे कवि बच्चन ने कहा है कि–"नीड़ का निर्माण फिर फिर/नेह का आह्‌वान फिर फिर " जैसे जरूरत अगर हौ तो मनुष्य बार बार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कराने का प्रयास करता है। उसी प्रकार उसे पर्यावरण रक्षण के लिए बार बार प्रयास करना ही होगा। पर्यावरण संरक्षण के लिए कई संस्थाएं कार्य कर रही है। 'संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम।'संयुक्त राष्ट्र का आर्थिक आयोग।'अंतरराष्ट्रीय जैव कर्यक्रम। ' विश्ववन्य जीव कोष इसके अतिरिक्त के देशों में पर्यावरण संरक्षण मंत्रालय तथा अन्य एजंसी भी कार्यरत है यह संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम सन 1972 में शुरू हुआ था वह आज तक चलता जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.जंगल–1, उषा श्रीवास्तव, बस इसी एक आस में–सं.विकास मिश्र उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.17

2. जंगल–2 वही–पृ.17

3.बचाले पानी अपना–डॉ.बीना गुप्ता, बस इसी एक आस में सं.विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन,गाजियाबाद।पृ. 65

4.आह! यह गंगा–डर.सुरचना त्रिवेदी, बस इसी एक आस में, सं.विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.81

5. वन– लाल बिहारीलाल ,बस इसी एक आस में–सं विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन ,गाजियाबाद।प्रु.122

6.पादप का रोना– लाल बिहारी लाल, बस इसी एक आस में –सं. विकास मिश्र, उधोग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.123,124

7.मौसम–लाल बिहारी लाल, बस इसी एक आस में, सं.विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रजशन गाजियाबाद पृ.120

8.शहर– लाल बिहारी लाल,बस इसी एक आस में, सं. विकास मिश्र, उधोगनगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.126, 127

9. आजादी के बाद–टेकचंद गुलाटी,, बस इसी एक आस में –सं. विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन ,गाजियाबाद। पृ.93

10. यथार्थ से दूर–गाफिल स्वामी,बस इसी एक आस में, सं.विकास मिश्र,उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.97

11. 10 नंबर–देवेंद्रकुमार मिश्रा–बस इसी एक आस में, सं.विकास मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद। पृ.116

12. .पर्यावरण संरक्षण–लाल बिहारी लाल, बस इसी एक आस में, सं.–विकास मिश्र,उद्योग नगर प्रकाशन ,गाजियाबाद। प्रु.118

31.निर्मल वर्मा की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज की महिलाओं का यथार्थ चित्रण

–शिंदे संतोष सखाराम
शोधार्थी (हिंदी विभाग) बा.आ.म.वि. औरंगाबाद

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की विकास यात्रा को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो निर्मल वर्मा का साहित्य, चिंतन, भाषा, संस्कृति आदि अन्य साहित्यकारों से दिखाई देता है । वे हिंदी साहित्य में हमेशा नयी वस्तु और नया शिल्प लेकर प्रविष्ट होते हुए दिखाई देते हैं । निर्मल वर्मा का यथार्थ को देखने का नजरिया और उसे ग्रहण करने का उनका विशिष्ट ढंग उनके कथा–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है । निर्मल वर्मा उन श्रेष्ठ साहित्यकारों में से हैं जो दरअसल हमारी मानसिक गुलामी से स्वतंत्रता दिलाने का प्रयास करते हैं । उन्होंने आधुनिक हिंदी कथा–साहित्य के क्षेत्र में अपनी अलग ख्याति प्राप्त की है । हिंदी कथा–साहित्य को प्रगति की ओर बढ़ाने में उनका विशेष योगदान रहा है । उन्होंने आधुनिक हिंदी कथा–साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है ।

आज वर्तमान समय में समाज में बदवाल के कारण मनुष्य मन की आचारण गत विविध दशाएं निर्माण हुई हैं । उसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं एवं स्थितियों के अनुरूप जीने के तौर–तरिके अपनाएँ हैं । आज मनुष्य शंका, उलझण, विषमता–बोध, असंगति तथा अनिश्चय की मानसिकता से ग्रसित है । सन् 1950 के आसपास नयी युगीन परिस्थितियों के अनुसार सामजिक कहानी का जन्म हुआ । इन कहानियों में परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति और समाज का संबंध स्थापित करने की चेष्टा की गई । इन कहानियों में विचार आयडिया के स्थान पर भोगा हुआ सामाजिक यथार्थ ही अधिक व्यक्त हुआ है । आज के दौर में साहित्यकार अपनी रचनाओं में मनुष्य मानव नियति के संबंध में चिंतित हो उठे और व्यक्तिगत अनुभूति को अधिक महत्व देते हुए नजर आते हैं ।

निर्मल वर्मा उन साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है । उनकी कहानियों में आधुनिक युग की विवशता, हार, लाचारी, घुटन, निराशा, टूटते संबंध, भय, सेक्स आदि आयाम परिलक्षित होते हैं । उनकी कहानियाँ मानव मन की जटिलताओं, समाज की जटिलताओं और मानवीय रिश्तों के रहस्य की कहानियाँ हैं । उनकी कहानियों में आधुनिक जीवन में व्याप्त मूल्यों का विघटन, संयुक्त परिवार का टूटन, संबंधों में उदासीनता, तीसरे व्यक्ति के आगमन से दुःखमय हुआ दांपत्य जीवन, जीवन की

विकृतियाँ, प्राचीन परंपराओं विरोध, नैतिकता के बंधनों का त्याग, नये उभरते मानवीय संबंध आदि आधुनिक प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं । आज का युग यथार्थ एवं उससे जूझते हुए मनुष्य का चित्रण ही उनकी कहानिय़ों का मुख्य विषय रहा है । आज भौतिकवाद और निर्थकता बोध से संत्रस्त व्यक्ति इस संसार में अपने को नितांत अकेला पाता है । अकेलेपन की उपज यह हमारी परिस्थितियों से होती है । जीवन और परिस्थितियों के फलस्वरूप व्यक्ति को अकेलेपन की अनुभूति होती है । इसी अकेलेपन को निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है ।

निर्मल वर्मा की अधिकतर कहानियों के पात्र अकेलेपन से जूझते हुए नजर आते हैं । 'परिंदे' कहानी की नायिका लतिका अकेली है । लतिका के अकेलेपन का उसके परिवेश से गहरा ताल्लुक है । निर्मल वर्मा की कहानियों का अकेलापन एक खास वर्ग का है । लतिका अपने प्रेमी के मृत्यु के उपरांत क्रमशः अकेलेपन को एक कवच के तौर पर ओढ़ती चली जाती है– "पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था– अब आदि हो गयी हूँ ।" यहां लतिका के माध्यम से अकेलापन अभिव्यक्त हुआ है । जो हमारे समाज के मध्यवर्ग की महिलाओं का अकेलापन है । व्यक्ति परिवेश से टूट कर समाज व फिर अंत में खुद से ही अकेला एवं टूटा हुआ महसूस करता है ।

निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिक प्रेम पर आधारित स्त्री–पुरुष संबंधों का यथार्थ भी विशेष रूप से दिखाई देता है । आज आधुनिक युग में मानवीय संबंधों में अधिकतर बदलाव दांपत्य जीवन में दिखाई देता है । आज आधुनिक युग में विवाह का आधार प्रेम, आस्था नहीं है । इसे सामाजिक समझौता एवं साथ–साथ रहने की आवश्यकता मात्र समझा जाता है । इस संदर्भ में हिंदी के वरिष्ठ आलोचक राजेंद्र यादव का कथन है– "व्यक्ति–व्यक्ति के संबंध में सबसे अधिक जटिल नाटकीय और अनिवार्य संबंध स्त्री–पुरुष का आपसी संबंध है इसीलिए वही लेखकों को असाधारण रूप से आकर्षित भी करते हैं ।" प्रेम के पति–पत्नी संबंध के परिवेश को समझकर निर्मल वर्मा ने बिल्कुल एक नये नजरिया से देखा है और प्रेम के विविध रूपों को अपनी कहानियों में दिखाया है । 'अंतर' कहानी निर्मल वर्मा ने प्रेम के यथार्थ रूप को दिखाया है । कहानी में नायिका वैवाहिक बंधन के पहले ही गर्भवती हो जाती है और नायक उसका अबॉर्शन कराने के लिए अस्पताल ले जाता है । नर्स से वह यों कहता है– "वह मेरी पत्नी नही है– उसने कहा– मेरा मतबल है, अभी तक हम विवाहित नहीं है...। उसने डेसपेरेट होकर मुस्कुराने की कोशिश की । फिर उसे लगा की यह स्पष्टिकरण न केवल निरर्थक है, बल्कि मुर्खतापूर्ण भी ।" आज

आधुनिक युग में हम देखते हैं कि प्रेम की असफलता के कारण चाहे जो भी हो किंतु परिणाम महिलाओं को ही भुगतने पड़ते हैं । यहाँ कहानीकार ने प्रेम का नया रूप दिखाया है ।

'धूप का एक टूकड़ा' कहानी वैवाहिक जीवन में तनावों का एहसास कराती है । इस कहानी में नायिका को अपनी शादी के आठ साल बाद एक दिन ऐसा लगता है कि पति के साथ उसके संबंधों में कोई जीवित अनुभूति नहीं रही । उनके आपसी संबंधों में बदलाव आया है जो एक भयानक स्थिति है । "बरसों पहले की गूँज, जो उसके अंगों से निकलकर मेरी आत्मा में बस जाती थी, अब कहीं न थी । मैं उसी तरह उसकी देह को टोह रही थी, जैसे कुछ लोग पुराने खंडहरों में अपने नाम खोजते हैं, जो मुद्दत पहले उन्होंने दीवारों पर लिखे थे । लेकिन मेरा नाम वहां कहीं न था ।" इस तरह से वह अपने पति से अलग होने का फैसला करती है । आज आधुनिक युग में संबंधों में बहुत बदलाव होते हुए नजर आते हैं । इसी परिवारिक संबंधों के बदलाव को निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया है ।

स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में देशी–विदेशी, परिवेश में मानवीय रिश्तों, खासकर स्त्री–पुरुष संबंधों को एक नये रूप से दिखाया है । आज आधुनिक समय में बदलते परिवेश के कारण अलगाव, अजनबीपन, अकेलापन, स्त्री–पुरुष के संबंधों में आए परिवर्तन आदि का यथार्थ चित्रण निर्मल वर्मा की कहानियों में हुआ है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1-परिंदे, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पुनरावृत्ति 1998

2- कहानी स्वरूप और संवेदना, राजेंद्र यादव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा संस्करण 2007

3- जलती झाड़ी, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 1979

4- कव्वे और काला पानी, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1985

32.कबूतरा आदिवासी जनजाति का दस्तावेज : अल्मा कबूतरी

– *डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे*
शोधकर्ता, महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा जनपद लातूर

मैत्रेयी पुष्पा यह अनुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है। बाल्यावस्था में मिली मंदा और उसकी नियति का रूपांतरण 'इदन्नमम्'उपन्यास में हुआ। सिर्कुरा गांव के पहाड़ी पीछे बसे कबूतरा आरोपित जनजातियों पर किए जाने वाले अत्याचारों का रेखांकन सन 2000 में अल्मा कबूतरी उपन्यास के रूप में हुआ हैं। 'अल्मा कबूतरी' एक यथार्थवादी तथा सभ्य समाज को झकझोर ने वाली कृति है। भारत में आज भी कुछ ऐसी अभागी जनजातियां हैं जिसके जीवन मैं आज तक आजादी का सूरज उग नहीं पाया। अब वह क्या जाने आजादी का अर्थ ? यही जनजातियां सभ्य समाज की नजरों में उपेक्षा घृणा के पात्र बन पुलिस अत्याचार का शिकार हो जाती है। और तो और दुर्भाग्य की बात यह है कि, कानून ने भी इन्हें नहीं बख्शा। यद्यपि देश की आजादी के बाद इन जनजातियों को सम्मान नागरिकता के अधिकार तो प्राप्त हो गये, पर जीवनयापन का कोई सम्मानजनक साधन उपलब्ध न होने के कारण इनके पुरुष अपराधीकरण और स्त्रियां देह व्यापार के लिए लाचार हैं। वे किसी समान नागरिकता के अधिकार को नहीं जानते, जानते हैं बस इतना कि, पेट के लिए रोटी लगती है, रोटी कमाने के लिए अपराध या देह व्यापार इनकी जिंदगी का हिस्सा और लाचारी भी बन गयी है। भारत की 75 साल की आजादी ने भी इन की नई पीढ़ी को सम्मान पूर्वक जीवन का कोई विकल्प नहीं दिया। कबूतरा एक ऐसा ही समाज है जिस की दास्तान, सीख को मैत्रेयी ने करीब से देखा है ,अनुभव किया है ,इसी अनुभव को बेहद यथार्थता के साथ प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मुख्यतः बुंदेलखंड में बसने वाली कबूतरा जनजाति के जीवन को कथानक का विषय बनाया है। यह उपन्यास यथार्थवादी उपन्यास है। इस रचना की सृजन प्रक्रिया हेतु मैत्रेयी पुष्पा को पहाड़ी के उस पार रहने वाले कबूतराओं के डेरों तक जाना पड़ा ,कई सालों तक शोध करना पड़ा, घटनाओं को जुटाना पड़ा, तब जाकर एक सशक्त रचना का निर्माण हो सका। इस उपन्यास के पात्र भी यथार्थवादी है।अल्मा ,मंसाराम (मूल नाम सुबरणसिन्ह मैत्रैयी का चचेरा भाई) कदम भाई आदि तमाम पात्र उन पर हुए अन्याय–अत्याचारों को वास्तविक रूप में व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय तमाम आदिवासी समाज तथा उस समाज मे नारी की हैसियत को आंकने का निर्णायक प्रयास किया है। कथा भूमि बुंदेलखंड की विलुप्त होती आदिवासी

कबुतरा जनजाति है। यह अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित हो रही है। जल, जमीन,यहां तक कि आकाश और हवा के आजाद इस्तेमाल से वंचित समाज का आईना प्रस्तुत उपन्यास है। कबूतरा जनजाति अपने आपको रानी पद्मिनी , झलकारी बाई और राणा प्रताप की संताने कहता है। पहाड़ी जंगलों में दर–दर भटकना शिकार करना तथा अपने जीविकोपार्जन के लिए चोरी करना चोरिया ना करें तो और क्या करें क्योंकि यह लोग किसी भी मूलभूत सुविधाओं के अधिकारी नहीं है। कबूतरा मैत्रेयी कबूतरांओं जीवन पद्धति पर प्रकाश डालते हुए लिखती है – "हमारे लिए वह ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं, जो हमारी असावधानियों के दरारों से झपटा मारकर वापस अपनी दुनिया में जा छुपती है। कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहते हैं या जेल में... स्त्रियां शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर।" 1 प्रस्तुत मंतव्य में मैत्रेयी पुष्पा दो समाज का जिक्र करती है, एक वह जो सभी ओर से विवशता का जीवन जी रहा है जो सर्वहारा है। इस वर्ग की औरतें अपने ही पुरुष के सामने पर पुरुष के बिस्तर पर सोने के लिए विवश है। दूसरा वह समाज जो अपने आप को सभ्य मानता है। जो दूसरों की गरीबी– लाचारी का नाजायज लाभ उठाना कोई इनसे सीखे। इसे कबूतरा जाति कज्जा समाज मानता है। उपन्यास का शीर्षक नायिका प्रधान है।

कथानक का आरंभ होता है कदमबाई और मंसाराम जो कि कज्जा है। जबकि कदमबाई कबूतरा आदिवासी स्त्री है। इनका आपसी संबंध कोई आंतरिक प्रेम का रूपांतरण ना होकर समाज की दो विपरीत दिशाओं के आपसी टकराहट का परिणाम है। मंसाराम ने की हुई धोखेबाजी का बदला कदमबाई नहीं ले सकी। यही उसकी सबसे बड़ी हार है। मंसाराम कदमबाई के पति जंगलिया को चोरी करवा कर धोखे से पुलिस की मुठभेड़ में मरवा डालता है। इधर कदमबाई अपने पति से मिलने के लिए अपने डेरे से थोड़ी दूर एक खेत में रात के वक्त पहुंचती है। जिस जगह जंगलिया को पहुंचना था उस जगह मंसाराम पहुंचाता है और जंगलिया की भूमिका निभाता है। उनके इस मिलन प्रसंग को मैत्रेयी इन शब्दों में व्यक्त करती है – "वादों के हिसाब से वह पास आया, वह छाया को देखते ही मदहोश हो गई। गदराई हुई गेहूं की बाली पेट को गुदगुदा रही थी, गुन–गुनी भावों ने उसका बदन बांध लिया। हाय! सदा घागरा उतारता आता था। आज पहले चोली के बटन खोल रहा है। एकांत में फुर्सत को आ गया? याद नहीं की घड़िया गिनी – चुनी है? कदमबाई ने घागरा खुद ही नीचे को सरका दिया। बंद आंखों में अपने ही गोरे बदन की छाया जगमगाए , आंखों पर रखें हाथों की उंगलियों से झांकना चाहती थी कि गर्म सांसों

ने ओठों पर कब्जा कर लिया। सारे डर भाइयों को दबाने के खातिर उसने अपनी पूर्व को भी किया आनंद लोक में कदमबाई दोगुनी ताकत से भिड़ रही थी। मिलन के डोर से बंधी स्त्री हर लमहे नई से नई मुद्राए अपनाने लगी। अब केवल वही वह थी, बाकी कोई न था। देह पर बोझ नहीं सिर्फ लहरें थीं।बॉहे ! कहॉ, भीचतें जाने की होड के कसाव थे।धरती ,धरती न थी देह के साथ उठती –दबती चादर ! आसमान न थ तारों का झमकता झूलना...देर तक वह तरंगों के साथ खेलती रही। धरती के आकाश तक झूलने पर संवारा... और उस रात में उस फसल ने, उस प्यार में कदम के गर्भ में एक अंश बूंद बढ़ने के लिए छोड़ दी।"2 यही एक बूंद परिपक्व होकर राणा के रूप में जन्म लेती है। इसी धोखे ने कदमबाई के दिल में कज्जा समाज के प्रति बदले की ज्वाला धधक रही थी। कदमबाई आदिवासी समाज की उन तमाम स्त्रियों का प्रतीक है जो इस तरह से सभ्य समाज की शिकार हो जाती है। न जाने कब कौन? कैसे ? इनके साथ धोखेबाजी करेगा क्षणभर का विश्वास नहीं है। समाज की स्त्रियों तथा पुरुषों का सभ्य समाज शोषण करता है और यह बात आम हो चली है जो पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करती हैं। कदमबाई कबूतरों पर होने वाले अत्याचारों की भुक्तभोगी स्त्री है।

टकराहट मनुष्य समाज के जीवंतता का प्रतिरूप है। प्रस्तुत उपन्यास में सभ्य और असभ्य कहलाने वाले दो समाज के संघर्ष का चित्रण हुआ है। यह संघर्ष है कबूतरा आदिवासी और सभ्य समाज के बीच। कबूतरा जाति की औरतें सभ्य समाज से अपना बदला लेने हेतु एन–केन प्रकारेण संघर्ष करती है। कदमबाई और भूरीबाई यह स्त्री चरित्र इसके प्रमाण हैं। कदमबाई तो कामयाब नहीं हो पाई पर भूरी काफी हद तक एक सभ्य समाज का सामना करती है। भूरी का अपना तरीका है लड़ने का। वह बस्ती की पहली मां है जिसने अपने बेटे रामसिंह को कुल्हाड़ी, डंडा ना थमाकर पोथी–पाटी पकड़ाई। इसके लिए भूरी कज्जाओं, पुलिसों के बिस्तर पर सोती रही। अपना शरीर बेचती है पर रामसिंह को शिक्षित कर एक अच्छा किरदार वाला व्यक्ति बनाती है। ताकि वह सभ्य समाज से लड़ सके। रामसिंह सभ्य समाज में रहने भी लगता है पर उस समाज उसे रास ना आया फिर वह कब कबूतरा का जीवन जीने के लिए अभिशप्त बन गया। रामसिंह पुलिस के लिए खतरनाक बीमारी बन जाता है। तो पुलिस की नाक में दम कर देता है। इसी रामसिंह से अल्मा का जन्म हुआ। जो अपने समाज के लिए संघर्ष करती है। जिसके चरित्र में परिवर्तन की लावा सुलगती दिखाई देती है।

अल्मा इस उपन्यास का उत्कर्षवादी स्त्री चरित्र है। मानो कबूतरा जाति उन्नयन के लिए ही किसका जन्म हुआ है। अल्मा पढ़े–लिखे पिता की पुत्री है। पिता रामसिंह की हत्या के बाद अल्मा पर भी सभ्य समाज के हमले होते हैं। दुर्जन अल्मा को कबूतरा के घर पहुंचा देता है। दुर्जन रुपयों का लोभी है। जिसने अल्मा को सूरजभान को बेच देता दिया है। अल्मा सूरजभान के यहां कैद है, वही पढ़े–लिखे धीरज के साथ जान पहचान होने से अल्मा उसी की सहायता से सूरजभान की कोठी से भागकर विधानसभा के विधायक श्री राम शास्त्री के घर पहुंचती है। वहां वह श्री रामशास्त्री की रखैल बनकर रहती। धीरे–धीरे अपने पैर जमाती है और श्री रामशास्त्री की मानी हुई पत्नी की तरह रहने लगती है। पर अल्मा को शास्त्री के इशारों पर चलना पड़ता था। शास्त्री की हत्या हो जाने से विधायक की जगह खाली होती है और पार्टी की ओर से उनकी मानी हुई पत्नी अल्मा को प्रत्याशी के रूप में घोषित किया जाता है। अल्मा सियासत से कुछ परिवर्तन जरूर कर पाएगी यह विश्वास पाठकों को दिलाया जाता है प्रस्तुत उपन्यास के जरिए भारतीय आदिवासी समाज एक व्यापक फलक पर आया है कबूतरों की बदनुमा हांलात और कज्जाओं की घृणा ,पुलिस की अमानुष्यता , पुलिस और अपराधियों तथा राजनीतिज्ञों का गठबंधन आदि पर यह उपन्यास प्रकाश डालता है। कबूतरा जनजातियों के स्त्रियों की दशा बड़ी भयावह है, जिसका चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में किया है –"होली के दिन थे। खेतों में गेहूं की फसलें थी। पुलिस और ठेकेदारों का हमला हुआ था। एक गर्भवती औरत को प्रसव होनेवाला था।पानी लगे गेहूं के खेत में औरत कराह रही थी। कराह को पकड़ती हुई पुलिस आगे बढ़ रही थी कि पुलिस को देखकर खेत में छिपे कबूतरा बच्चों का एक कबूतरी ने पत्थर मार–मारकर पहले पुलिस को घायल किया। आगे कोई पेश न चली तो कराहती हुई गर्भवती स्त्री को पत्थर मार–मार कर मौत के घाट उतार दिया। ऐसा सुना था तब विश्वास नहीं हुआ था। इनके पास आने–जाने के दौरान उस घटना का सत्य मेरे भीतर बादलों सा फटने लगा।"3 पुलिस और ठेकेदारों के अत्याचारों का यह प्रमाण है कि, सभ्य समाज तथा ठेकेदार कबूतरों के स्त्रियों को कभी भी छेड़ सकते थे। विरोध होने पर मौत के घाट उतारा जाता था –"अपने पति से जिसने अपनी बहन को छेड़ने वाली कज्जा से हाथापाई की थी बदले में मौत पाई।"4 कबूतरों की जिंदगी मानो कज्जाओं के लिए ही बनी है। यह समाज भूमि से,जल से, जंगल से विस्थापित हो चुका है। आराम इनकी जिंदगी में नहीं है और सुस्ती इनकी मौत में नहीं। किसी एक देश की संख्या से ज्यादा जनसंख्या का ऐसा विडम्बना पुर्ण जीवन किस

लोकतंत्र में होगा? ऐसे कई प्रश्नों से मैत्रेयी पुष्पा पाठकों से मुठभेड़ कराती है। आलोच्य उपन्यास में आदिवासी कबूतरा जनजाति का विस्थापित जीवन तथा स्त्रियों की यातनात्मक जिंदगी का खुला आईना पाठकों के सामने रखा है

पृष्ठभूमि :–इस शोध आलेख के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखी उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा जनजातियों की व्यथा कथा के एवज की पड़ताल की जाएगी।

कार्यक्षेत्र :–प्रस्तुत शोधालेख का कार्यक्षेत्र मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में चित्रित बुंदेलखंड के पहाड़ी इलाकों में रहने वाले कबूतरा जनजातियों से संलग्न है। उपन्यास में कबूतरा जनजातियों की संस्कृति, भाषा तथा उनकी दशा–दिशा को बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। कबूतरा जैसी अनेक अदिवासी विलुप्त होती जनजातियों का जीवन बेहद चुनौतियों से भरा पड़ा है। और इसी चुनौतियों का अध्ययन प्रस्तुत शोध आलेख के अंतर्गत किया गया।

अनुसंधान का उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध आलेख को लिखने के पीछे प्रमुख उपदेश इस प्रकार हैं –

1) आदिवासियों की पारंपरिक जीवन पद्धति संस्कृति का अध्ययन करना।

2) विशेषता विलुप्त होती कबूतरा जनजातियों की विभिन्न समस्याओं से अवगत कराना।

3)जनजातियों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार की रोकथाम के लिए सख्त कानून की और उपलब्ध कानून को सख्ती से लागू करने की जरूरत को प्रस्तुत करना

4) आदिवासियों के लिए जंगल, जमीन आरक्षित कर उन्हें सुरक्षित करने के उपाय का सुझाव देना।

5) आदिवासी जनजातियों की नई पीढ़ी को सम्मानपूर्वक जीवन के विकल्प की तलाश करना।

शोधालेख का निष्कर्षः–मैत्रेयी पुष्पा एकमात्र ऐसी लेखिका है जिन्होने मात्र महिलाओं की समस्या को उठाया बल्कि महिलाओं मे गांव की पीछडी जातियों की विशेषतः दलित ,आदिवासी ,उपेक्षित, प्रताडित स्त्री वर्ग को लेखन के केंद्र लाया है। इसका प्रमाण है 'अल्मा कबूतरी'उपन्यास। प्रस्तुत उपन्यास कबूतरा जनजातियों की सामाजिक, अर्थिक, पारिवारिक, शैक्षिक स्थिति का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। एक ओर कबूतरा जनजाति उच्च वर्ग के अन्याय एवं अत्याचार का शिकार है तो दूसरी ओर से सरकारी यंत्रणा से भी बेजार है। विशेषतः पुलिसों द्वारा रात–बेरात कभी भी कबूतरा कबिलों पर हमला करना,बिना वजह किसी को भी गिरफ्तार करना ऐसे ढेरों उदाहरण उपन्यास मे मिलते है। कज्जाओं तथा

व्यवस्था का प्रतिरोध करके यह जनजाति आपने वजुद के लिए जद्दोजहद कर रही है। कदमबाई और भूरीबाई का जीवन संघर्ष बेहद प्रेरणादायी है। उसमे नयी पीढी की स्त्री अल्मा का जीवन तो सुविधाओं से भरा है किंतु उसकी दशा भी एक रखैल से ज्यादा नहीं है। अल्मा राजनीति मे प्रवेश कर आपना और आपने समाज को आगे बढाने का एक आश्वासक स्वर देती है। यौन शोषण, शारीरिक शोषण कबूतरा जनजाति के स्त्रियों के जिंदगी का हिस्सा बन गया है। कदमबाई, भूरीबाई, अल्मा यह स्त्री चरित्र आदिवासी स्त्री जीवन की दैनिय स्थिति के उदाहरण है। यह रचना कोई काल्पनिक न होकर यथार्थवादी है।

संदर्भ ग्रंथः

1) पुष्पा मैत्रेयी –अल्मा कबूतरी –पृष्ठ संख्या 430

2) पुष्पा मैत्रेयी– अल्मा कबूतरी –पृष्ठ संख्या 22

3) पुष्पा मैत्रेयी– गुड़िया भीतर गुड़िया –पृष्ठ संख्या 274

4) पुष्पा मैत्रेयी– गुड़िया भीतर गुड़िया –पृष्ठ संख्या 275

आधार ग्रंथः

1) मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य संपा– दया दीक्षित सामयिक बुक दरियागंज नई दिल्ली

2) मैत्रेयी पुष्पाःस्त्री होने की कथा– संपादक –सिं विजय बहादुर –किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली

3) मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों मे स्त्री जीवन संघर्ष–डॉ. शिवशेट्टे गोविंद–विकास प्रकाशन कानपूर

33.'स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य'

–श्रुतिकीर्ति सिंह
राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (UGC NET) शोधार्थी

एक निश्चित सामाजिक सन्दर्भ में भाषा के जरिए किसी एक विषय को गहराई से लेकर उसके आस–पास के पारिवारिक, सामाजिक पक्षों पर होते हुई बहस, व्याख्या, तात्पर्य एवं मान्यताओं के निर्णय की प्रक्रिया को विमर्श कहा जा सकता है। 'वृहद हिंदी शब्दकोश' में 'विमर्श' शब्द का अर्थ **"विमर्श यानी समालोपना, परामः परीक्षा, किसी बात पर अच्छी तरह विचार करना"**;1द्ध

'विमर्श' शब्द के साथ जब स्त्री शब्द जुड़ता है तब स्त्री का स्त्री होने के कारण पुरुष सत्ता द्वारा जो शोषण होता आ रहा है उसकी प्रतिक्रिया में संघर्ष और स्वयं को मनुष्य रूप में पहचान दिलाने, समाज में सद्भावना पूर्ण व्यवहार पाने के प्रयासों का एक नाम बनता है।

या यूँ कहें कि सदियों से शोषण और दमन चक्र की भुक्ति भोगी स्त्री का पुरुष सत्ता के प्रति स्त्री चेतना ही स्त्री विमर्श की जन्मदात्री बन सकी जहाँ स्त्री को अपनी नारी अस्मिता में 'मैं' की चिंता का एहसास हुआ वहीं से स्त्री विमर्श की शुरुआत हैं।

स्त्री विशर्म स्त्री को सामाजिक, आर्थिक, दैहिक बन्धनों को तोड़कर स्वयं के बहुमुखी विकास की दिशा में अग्रसर करता है। स्त्री केवल माँ, बहन, पुत्री, पत्नी या प्रेमिका नहीं वह भी समाज के उत्थान पतन में पुरुष वर्ग के बराबर ही जिम्मेदारी को समझने, स्वयं को मानसिक और शारीरिक अनुभवों को बिना शर्मिन्दगी के खुलकर अभिव्यक्ति करने में भूमिका के रूप में स्त्री विमर्श आता पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का निरंतर शोषण होता रहा है भारतीय समाज में वह शूद्र की श्रेणी में रखी गयी है केवल भोग्या मानी गयी है। और पश्चिम में स्त्री को खतरनाक 'सेक्स' कहा गया है और इसी खतरे से समाज को बचाने के लिए या इसे कम करने के लिए ही पुरुष सत्ता द्वारा स्त्री के लिए उसे घर के बाहर कहीं भी कोई अधिकार नहीं मिला है। स्त्री संवेदना को ही नहीं उसकी बौद्धिकता को भी बराबर हेय दृष्टि से देखा गया है। **"चेखव और टी.एस. इलियट जैसे लेखकों ने भी उनका मजाक उड़ाने में कोई कोर–कसर नहीं की, हिंदी आलोचकों ने उपेक्षा की सन् 1984 में 'सारिका' में छपा कि स्त्रियों की रचनाएँ इसलिए छपती हैं कि वे स्त्रियाँ है"**;2द्ध पुरुष तो अपनी अस्मिता का निर्माता स्वयं है लेकिन जब स्त्री भी अपनी

अस्मिता के निर्माण का प्रयास करने लगती है तो समाज, धर्म की ओट लेकर उसे बहिष्कृत, अपमानित और बदचलन, वेश्या जैसे विशेषणों से आरोपित किया जाने लगा। आज का स्त्री विमर्श पुरुष सत्ता की इस तानाशाही को तोड़कर स्त्री को पुरुष पोषित छवि से मुक्ति दिलाने का उद्देश्य बना।

जब पुरुष ने अपने अहंम, वर्चस्व का युद्ध लड़ा तब भी अस्त्र और ढाल स्त्री को ही बनाया। समाज का कोई भी परिवर्तन हो कोई भी हलचल हो त्रासदी स्त्री ही बनी। सामाजिक परिप्रेक्ष्य के बदलते स्वरूप में परिवर्तन स्त्री की दशा और दुर्दशा दोनो की नियत बनती आयी है।

वैदिक काल से पूर्व या वैदिक काल में नारी को धार्मिक, अध्यात्मिक तथा बौद्धिक स्वतंत्रता के साथ पितृसत्तात्मक परिवार में भी सामाजिक अधिकार प्राप्त थे।

"धन की देवी लक्ष्मी, ज्ञान की देवी सरस्वती और शक्ति की देवी दुर्गा से क्या अर्थ निकलता है? अवश्य ही प्राचीन काल में नारी इन सब शक्तियों की अधिकारिणी रही है। 'अर्द्धनारीश्वर' कल्पना उनके समान अधिकार की भी पुष्टि करती है"[;3द्ध] आशारानी ब्होरा।

बाद के युग उत्तर वैदिक या महाभारत, रामायण युग में भारतीय नारी की दशा में गिरावट आई नारी के अधिकार पहले जैसे न रह सके। महाभारत में पाण्डवों का अपनी पत्नी द्रौपदी को जुएं के दाँव पर लगा देना और रामायण में सीता को राम द्वारा वनवास देना, पत्नी पर पति के मनमाने अधिकारों की पुष्टि करते हैं।

बौद्ध काल में स्त्री की स्थिति में किंचित सुधार इतिहास में दर्ज हैं उन्हें शिक्षा, विवाह और धार्मिक कृत्यों में थोड़ी सहभागिता प्राप्त हो सकी थी।

"स्त्रियाँ राज्य में प्रमुख स्थान रखती थीं। आम्रपाली, पुष्पदासी, कोवरिका आदि स्त्रियाँ नगरों में सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थीं"[;4द्ध]

भारत पर मुगलों के आक्रमणों से स्त्री की स्थिति मध्यकाल में दयनीय होती गयी। कभी हिन्दू धर्म की रक्षा, स्त्री सतित्व की रक्षा, रक्त की शुद्धता आदि के नाम पर स्त्रियों पर अनेक बंधन लगाए गए जिससे स्वतंत्र आस्तित्व ही समाप्त हो गया। सती प्रथा, जौहर प्रथा, पर्दा प्रथा स्त्री की नियति बन गई। मुहम्मद बिनकासिम से मुगल सम्राज्य के पतन, ब्रिटिश शासन के पूर्व तक स्त्री पुरुष के उपभोग की वस्तु बन गयी थी स्त्रियों की दशा का यह पतन युग था।

भारतीय समाज में नवयुग के सूत्रपात से नारी मुक्ति का कुछ प्रयास किया जाने लगा। इस युग के महापुरुषों ने नारी के महत्व को न केवल समझा बल्कि उसकी मुक्ति की कामना के लिए अथक प्रयास भी कियें। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, देवेन्द्र नाथ टैगोर जैसे समाज सुधारक बनकर स्त्री जीवन की त्रासदी से बहुविवाह, सतीप्रथा, बाल विवाह, दहेज प्रथा का विरोध करके स्त्री शिक्षा से नारी मुक्ति का आवाहन किया।

“राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ एक ज्ञापन पेश किया, जिसमें घोषणा की गई कि सती प्रथा वास्तव में प्रत्येक शास्त्र के अनुसार साथ ही सभी राष्ट्रों की सामान्य सूझबूझ के अनुसार निरी हत्या है”[5]

ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज जैसी समाज सुधारक संस्थाओं ने स्त्री को शिक्षित कर समाज में उचित स्थान दिलाने, पुरुष वर्ग की ओर से उपेक्षा और भेदभाव पूर्ण नीति का विरोध किया।

साहित्य समाज का स्वच्छ दर्पण है जो समाज की प्रत्येक हलचल को अपने द्वारा प्रतिबिंम्बित करता रहा। समाज में समानता, नैतिकता और जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना, समाज की अनैतिकता और पतन के प्रति सचेष्ट करने का कार्य साहित्य का मुख्य ध्येय होता है। तभी तो स्त्री विमर्श साहित्य में उपज सका। और स्त्री लेखन के रूप में समाज की विभिषिका को तहस–नहस करने का बीड़ा उठाया। आज का स्त्री विमर्श अपनी अबला और दया की पात्र होने के मर्द मुहावरे से बाहर निकल कर शिक्षित होकर शिक्षा द्वारा सामाजिक कार्यों में सहभागिता निभा रही है। गाँधी और अम्बेडकर के कथनों को सत्य कर रही है। देश निर्माण में पुरुष से कंधा से कंधा मिलाकर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से आत्मनिर्भर कर रही है। **“स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है यदि शक्ति का अभिप्राय पाशाविक शक्ति से है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है”**[6]

“जब तक स्त्री सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में भाग न लेगी तब तक स्वस्थ्य सामाजिक विकास संभव नहीं”[7]

भारतीय साहित्य में आधुनिकता के पितामह और नवयुग प्रवर्तक भारतेन्दु भी स्त्री शिक्षा की कवायद करते हैं जिसे उन्होंने अपने साहित्य में चन्द्रावली से लेकर वैदिकीहिसा और नीलदेवी की भूमिका में प्रस्तुत किया।

“मातृभागिनी सखी तुल्या आर्य ललना गण”[8]

द्विवेदी युगीन साहित्यकार, कवि, कथाकार में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध या गिरिधर शर्मा हो अपनी अनूठी मौलिकता में ढालकर स्त्रियों की संवेदना, उनके सामाजिक कष्टों और अन्धविश्वासों में जकड़ी पुरुष मानसिकता पर .... जमकर कुठाराघात किया है।

साहित्य का छायावाद युग तो स्त्री वेदना और उसकी तड़पती संवेदना लेकर चलने के कारण नारी हिमायती या स्त्री और प्रकृति का ही काव्य कहकर उपेक्षित भी हुआ। जयशंकर प्रसाद ने नारी की संवेदना में हिंदी साहित्य को ही नही अपितु विश्व साहित्य में नारी जीवन की सबसे सुन्दर पंक्तियाँ दी है।

"नारी तुल केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में"[9]

स्त्री जीवन में सदैव त्याग ही त्याग है वह पुरुष को पूर्ण बनाने में स्वयं का सर्वस्य अर्पण कर देती है स्त्री केवल अपना शरीर और मन ही नही अपने सुनहरे स्वप्नों को भी बिना किसी शर्त के सहज भाव से अर्पण कर देती है। पंत जी नारी को सहचरी मानकर उसके साथ समता, मित्रवत व्यवहार को पावन गंगा स्नान कहते हैं। तो निराला के साहित्य में सरोज स्मृति, राम की शक्तिपूजा और तुलसीदास जैसे श्रेष्ठ साहित्य में उनके विचार पत्नी, भार्या, प्रिया और प्रेयसी के साथ–साथ पुत्री रूप में नारी महत्व का विचित्र संगम दिखता है। जो सामान्य मानव के हृदय में संवेदना को छूकर धीरे से उसे स्त्री की मार्मिक पीड़ा का अनुभव देता है।

"पहले दोनो के भाव और कार्य अलग–अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यों का एक ही साम्य होना आवश्यक है तभी तो गृहस्थ धर्म में स्वतंत्रता बढ़ेगी परालम्बन न रह जायेगा"[10]

स्त्री विमर्श पर रचनात्मक साहित्य में स्त्रियों ने ही नही जागरूक पुरुष लेखकों ने भी अपना सराहनीय योगदान दिया। प्रेमचन्द्र जैसे सामाजिक कथाकार कभी ग्रामीण से शहरी, अनपढ़ से उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री या निरा अंधविश्वासी पति परायणी स्त्री से पुरुष की सत्ता तोड़ने वाली नारी पात्रों का सृजन करके अपनी कलम और रंग शब्दों से स्त्री विमर्श की भूमिका गढ़ी, स्त्री विमर्श कोई युद्ध नहीं बल्कि परंम्परा, धर्म, कानून, विवाह, परिवार एवं समाज में स्त्री को समानता, स्वतंत्रता एवं स्त्री को वस्तु से मनुष्य का दर्जा दिलाने की दिशा में कदम है।

"स्त्री की चुनौती अपने समीकरण को छोड़कर पुरुष के समीकरण को पाना नहीं बल्कि पुरुष वर्ग के साथ समता को लेकर वृहत सत्य की परिधि तक जाना एक स्त्री के सहयोग और त्याग से परिवार बनता है और एक सम्पन्न परिवार एक स्वस्थ्य समाज का निर्माता होता है।"[11]

स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण है तभी तो शायद उसने अर्द्धांगनी, सहचर्या, जीवन संगिनी और पुरुष की आधी शक्ति का विशेषण दिया। समाज निर्माण में स्त्री का उतना ही महत्व है जितना पुरुषों का फिर समाज महिला शक्ति की उपेक्षा कैसे कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्त्री पुरुष के सह सम्बन्ध की महत्ता को समझते हुए महिला शक्ति का सम्मान करके स्त्री गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली शक्तियों को कुचलने की कोशिश होनी चाहिए। स्वस्थ्य मानसिकता वाले समाज की रचना पूर्ण करनी होगी। किंतु शक्ति का स्वरूप कहकर उसकी उपासना का पराक्रम रचकर स्त्री को मात्र 'देवी और दानवी' दो पाटों में विभाजित कर दिया। कैसी विडम्बना है समता न देकर उसे देवी कहकर नये–नये बन्धनों में डालकर 'पाषाणी' बना दिया। ये कैसा सम्मान पत्थर मानकर पूजा के योग्य कहना और हाड़–मांस की देवी को निर्जीव समझकर वस्तु भाव भोगकर उपेक्षा करना।

स्त्री कभी नहीं चाहती की वो पूजी जाए बिना गुणों के किसी को सम्मान क्यों पुरुष और स्त्री के नाम पर, लिंगात्मकता के आधार पर सम्मान की अधिकारिणी नहीं होना चाहती।

"दुनियाँ में सबसे कठिन स्थिति है बिना गुणों के सम्मान का अधिकारी होना, सहज होना मुश्किल हो जाता है जीवन जीना कठिन बन जाता है।"[12]

तब विचार भी कैसे किया जा सकता है कि स्त्री पूजा की अधिकारिणी बनना चाहती है। वह तो समान वर्ताव और सभी (स्त्री–पुरुष) में बराबर की न हो बिना विशेषता के स्त्री या पुरुष होने के कारण महान कहलाए और दूसरा उपेक्षित रह जाए यह कदापि स्वीकार्य नहीं।

"नारी इतिहास का सूक्ष्म अंकन करे तो पता चलेगा कि महापाषाण काल से आधुनिक युग तक नारी नर के जीवन का पोषण एवं उन्नयन करती आ रही है लेकिन देवी कहकर पुरुष ने उसे अपने अधिकारों से वंचित किया है उसे पाषाणी प्रतिमा बना दिया और उसके मानवी जीवन को भी नकार दिया, केवल देना ही देना और सहना ही सहना उसके हिस्से में रह गया है और समर्पण उसके भाग्य में कील सा गढ़ गया"[13]

एक स्त्री की संवेदना को शायद दूसरी स्त्री ज्यादा अच्छी तरह अनुभव कर सकती है इसलिए महिला साहित्यकारों ने नारी की वेदना एवं सामाजिक परिस्थितियों का जितना सजीव चित्रण किया है उतना पुरुष साहित्यकार न कर पाए। नारी साहित्यकारों नें नारी चेतना के बारे में अपनी लेखनी से समाज में जागृति उत्पन्न की है उनकी रचनाओं में नारियाँ शिक्षित है तो वे समझदार और परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ चित्रित हुई हैं।

मध्यकाल की प्रसिद्ध और पुरुष साहित्य में भी स्थान पाने वाली मीराबाई ने समाज सुधार व रचनात्मक क्रांति की मशाल जलाई थी। राजपूत घराने की रानी ने राणा–राजाओं ने जुल्मों व पति की सत्ता के खिलाफ बगावत भी की इसी बगावत के कारण वह महल छोड़कर युद्ध–विजय–हिंसा की परम्परा नकार सकी और वैकल्पिक जीवन के लिए स्वतंत्र रूप से अपनी खोज पे डटी रही। पुरुष को प्रकृति ने शरीर बल अधिक दिया है तो स्त्री को दृढ़ता और शरीर सौन्दर्य अधिक। पुरुष संसार में जोश और साहस की कृति है तो वहीं स्त्री धैर्य और चरित्र सिखाने की ज्योति जो करुणा और त्याग प्रेम बरसाने की मूर्ति। दोनों की भिन्न प्रकृति से ही परस्पर पूरकता और जीवन की पूर्णता संभव है। आज के परिवेश में फैले मानवीय दुःख अवसाद, भयानकता, अकेलापन, टूटन जैसी वृत्तियों के शिकार स्त्री–पुरुष दोनों है। कुंठा संत्रास और घुटन आज मानव की सबसे बड़ी नियति है और यही विडम्बना त्रासदी का रूप लेकर नारी की ज्वलंत समस्या हुई।

"लेखकों ने या तो नारी की मूर्ति को अपनी कुंठाओं के अनुसार विकृतियों स तो मरोड़ दिया है या अपनी स्वप्न नारी की तस्वीर उतारी है। वह देवी और दानवी के दो छोरों के बीच टकराती पहेली नहीं हॉड–मांस की मानवी भी है उसे प्रायः सभी एक सिरे से नजर अन्दाज करते रहे हैं।"[14]

पुरुष स्त्री विमर्श राजेन्द्र यादव व मन्नु भण्डारी के पति ने अपने और मनु के रिश्ते को लेकर हंस पत्रिका मई 2000 में एक लेख में लिखा था **"कि औरों की तरह घर और मेज–कुर्सी ला जुटाने के लिए हम लोग साथ नहीं आए थे लिखना और अधिक अच्छा लिखने का वातावरण बनाने का विश्वास ही हमें निकट लाया था–मेरा हमदम मेरा दोस्त लेख"**[15]

मन्नु भण्डारी ने अपनी रचनाओं में समाज की मध्यम वर्गीय नारियों की चेतना को अपनी कलम से अंकित किया– एक सामाजिक मर्यादा तो उन्होंने अपने वास्तविक

जीवन में तोड़कर पितृसत्तात्मक रूढ़ि को नकारा है। जिसमें अपनी स्वेच्छा से जीवन साथी का चुनाव करके स्त्री विमर्श में पदार्पण किया।

आधुनिक जीवन की आर्थिक समस्या पुरुष के साथ–साथ स्त्री की भी उतनी ही है। जिसके लिए आर्थिक उपार्जन में सहयोग देने के लिए घर से बाहर व्यस्त रहना उसकी दिनचर्या का हिस्सा बना।

समस्या तो तब बनती है जब ऐसी स्थिति में सभी आर्थिक क्षमताओं का लाभ परिवार प्रसन्नता पूर्वक उठाता है किन्तु वहीं परम्परागत रूप में माँ, पत्नी, बहू, बेटी, भाभी, इत्यादि सम्बन्धों का सफल दायित्व निभाने की भी आशा रखते हैं। संयुक्त परिवार भारतीय समाज के मूल में है लेकिन अब आर्थिक मानसिकता रूपी जीवन मूल्यों के कारण पारिवारिक रिश्तों में तनाव आ रहा है। **"आपका बंटी उपन्यास में लेखिका ने शकुन के द्वारा यह समझाने का प्रयास किया है कि नारी पहले मात्र शरीर थी, अब तो वह अर्थ भी है उसकी अर्जित सम्पत्ति पति और परिवार की है। परन्तु उसका विकसित होता व्यक्तित्व तनाव का कारण है। उसके निर्णय, उसका व्यक्तित्व किसी को स्वीकार्य नहीं इसलिए अब परिवार टूटने लगे हैं।"**

हम सब जानते है कि जन्म से ही स्त्री की प्रताड़ना शुरु होती है जो उसकी मृत्यु तक पीछा नहीं छोड़ती, इसी आत्मानुभूति के कारण ही महिला साहित्यकारों की आत्मकथा का केन्द्रिय विषय नारी ही रहा है।

विविध जाति धर्म तथा विभिन्न क्षेत्रों की लेखिकाओं ने हिन्दी आत्मकथा का सृजन करके नारी की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति का उद्घाटन किया। आत्मकथाओं में स्त्री पर लगे बंधन, पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण स्त्री दशा विधवा स्त्री की सामाजिक दुर्दशा, जीवन संघर्ष, रूढ़ि–परम्परा एंव ग्रामीण परिवेश में स्त्री का शोषण, शहरी जीवन की त्रासदी झेलती स्त्रियाँ और उनकी समस्याएं चित्रित हो सकी हैं। नारी को इस दुर्गति तक पहुंचाने में किस प्रकार समाज और उसकी पुरुष सोच भूमिका निभाती है। स्त्री विमर्श आर्थिक स्वतंत्रता के प्रतिरोध को संभव बना सकी है। इसी से स्त्री समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आ सका।

आज स्त्री समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं को नकार रही है, स्त्री को दूसरे के नजरियें नहीं बल्कि खुद के दृष्टिकोण से देखने एवं अकेली स्त्री दूसरी स्त्री के जरिए यह साबित कर पाई की भूमिकाओं से परे भी स्त्री का अस्तित्व हो सकता है।

"व्यक्ति–स्वतंत्रता, नारी–स्वतंत्रता की दृष्टि को केन्द्र में रखकर देखने का एक सफल प्रयत्न है";15द्ध

नारी मुक्ति का अर्थ पारिवारिक जीवन से मुक्ति नहीं उसकी बुराईयों से मुक्ति होना चाहिए। स्त्री विमर्श में स्त्री पुरुष से सम्पूर्ण मुक्ति नहीं चाहती वे सम्मान के साथ अपनी पहचान कायम रखते हुए, प्रेम, सुरक्षा और सन्तान की भी कामना करती है। कोई भी स्त्री अपने ममत्व को खोकर बाध्या नहीं कहलाना चाहती इसके लिए पुरुष अनिवार्य है। ममता कालिया ने 'प्रेम कहानी' में अपने स्वेच्छा से किये गये प्रेम और सामाजिक स्वीकृति से किये गये विवाह को समान्तर रखकर दोनों की विडम्बनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

स्त्री अपने त्याग और प्रेम के बदले में सम्मान की आकांक्षा रखती है। लेकिन जब नारी को पद–पद पर अपमानित होना पड़े तो वह उसी अपमान को अपनी ताकत बना लेती है। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन इसी बात की पुष्टि करता है।

"ऐसा लगता है ईसूरी फाग में लेखिका ने ईसूरी के रूप में पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचारों पर अपनी सोच और भावनाओं का समर्थन किया है";16द्ध

विभाजन की विभीषिका के दौरान स्त्रियों पर हुए अत्याचारों और स्त्री दुर्दशा के रोंगटे खड़े कर देने वाले जो चित्र यशपाल ने झूठा सच में प्रस्तुत किये हैं वे अविस्मरणीय हैं।

"यशपाल की दृष्टि जीवन के अन्य पक्षों पर इतनी नहीं जाती जितनी स्त्री शोषण, पीड़न और अपमान पर उसके साथ अत्याचार और पाशविक व्यवहार पर";17द्ध

कारण कुछ भी हो स्त्री की पहचान केवल और केवल देह ही है पुरुष जीवन का कोई भी क्षण हो जीवन की हर परिस्थिति में भुगतान के तौर पर नारी देह ही होती है।

उत्तर आधुनिकता पुरुष का स्त्री पर वर्चस्व को खत्म किये जाने का नारा देता है। कृति का विखण्डन सभी पाठों को एकांकी कहकर नारी के लिए एक पाठ की वकालत करता है।

आज भी राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ देह नीति चलती है। जिसमें कला, संस्कृति, साहित्य सब सरोकार न रहकर व्यापार हो गया है। राजनीति में किसी स्त्री की सफलता के लिए बहुत जरूरी है कि वह महिला प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी हो या खूबसूरत हो या फिर राजनीति में उसकी जड़े गहरी हो और अगर इसमें से कोई गुण नहीं है तो वह स्त्री राजनीति में सुप्रीम पावर द्वारा सीधे–सीधे बिस्तर में खींच ली जायेगी।

मन्नू भण्डारी का महाभोज और रमणिका गुप्ता की आत्मकथा हादसे तो स्त्री की प्रामाणिक व्याख्या हैं। जिसमें स्त्री पारिवारिक समस्याओं तक सीमित न रहकर समाज के व्यापक सन्दर्भ के लिए संघर्षरत है।

स्त्री की नैसर्गिक कामेच्छा को नियंत्रित करने के उद्देश्य से धार्मिक परम्परा के नाम पर पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री की मन मस्तिष्क के साथ–साथ उसकी शारीरिक प्रकृति से खिलवाड़ करता रहा है। क्योंकि शायद उसकी मानसिकता है कि यौन सुख केवल पुरुषों के लिए होता है जबकि स्त्रियों के लिए इसका एकमात्र उद्देश्य मातृत्व होना चाहिए। पुरुष समाज की इसी पाशविक मानसिकता को **'हत्वा की बेटीः दर्दजा'** उपन्यास में **'जय श्री राम लेखिका'** ने अफ्रीका के 28 देशों सहित अमरीका के दक्षिण के जातीय समुदाय की बुत सी स्त्रियों के साथ होने वाले 'फीमेल जेनेटिल म्युटिलेशन' (थ्ण्डण्ळण) या औरत की सुन्नत को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। जिसमें माहा नामक स्त्री अपनी बेटी मासा को इस दर्दनाक क्रीड़ा से बचाने के लिए परिवार, समाज और पति से किये गये संघर्ष को मार्मिकता से दर्शाता है।

महिला लेखकों का रचना संसार विस्तृत फलक पर सृजित हुआ है पिछले कुछ दशकों से उसमें आशातीत गुणात्मक बदलाव आया है। मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के अन्तविरोध और पुरुष प्रधान समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्षरत त्रासद स्थिति के दायरे से बाहर आकर महिला विमर्शकार जीवन के नित नये आयामों का चित्रण करने लगी है। 'तिरोहित' उपन्यास में 'ललना और चच्चो' की युगलबंदी से गीतांजलि श्री जिस स्त्री राग की रचना करती है वह नारी–विमर्श का नया आयाम है।

"तिरोहित के वृतांत में स्त्री समलैंगिकता का प्रश्न शारीरिक पसन्द या यौन विकल्प तक सीमित न होकर स्त्री की उस व्यापक दुनिया में रचा बसा है जिसे नारीवादी सिद्धान्त तक 'एंड्रीन रिच' नें 'लेस्बियन काटिन्युम' की संज्ञा दी";18द्ध पुरुष सत्ता का प्रतिपक्ष रचती यह नई औरते न तो पश्चिमी फेमिनिज्म का अनुकरण करती हैं और न ही वह नारी वादी के किसी स्वीकृत सांचे में ढली हैं। ''घर–परिवार और समाज के पाखण्डी मुखौटों को वेपर्दा होने की प्रक्रिया से उपजा ललना और चच्चों का 'पारस्परिक अवलम्बन' जिस 'लेस्बियन कांटिन्युम' को रचता है वह पुरुष सत्ता का ध्वस्तीकरण है'' स्त्री जीवन के दुःखों के कारण आर्थिक रूप से पुरुष वर्ग ही अवलम्बित होना या यों कहें कि अशिक्षा और आर्थिक समस्या ही नारी शोषण की जड़ है।

“एक आदमी की आमदनी से तो एक आदमी का भी पेट नहीं भरता जबकि अब फुलिया के हाथ में ही सहदेव मिसिर की इज्जत और अपने बाप की दुनियाँ है उसकी बोली में जरा भी हेर–फेर हुआ की सहदेव की इज्जत धूल में मिल जाएगी और उसके बाप की दुनिया भी उजड़ जाएगी”[19]

यही कारण है दलित महिला को दोहरा अभिशाप झेलना पड़ता है सवर्णवादी प्रेमप्रपंच के पीछे की नियत दलित नारी को भोग्या एवं रखैल बनाने की ही रही। प्रेमचन्द्र साहित्य में सैकड़ों उदाहरण इसी तथ्य को उजागर करते हैं। गोदान की सिलिया, नोहरी ठाकुर की कुआँ की गंगी। जैसे पात्रों की निर्मित का प्रयोजन धर्म, जाति, वर्ग के नाम पर शोषित स्त्री का और शोषण करने के लिए दलित और स्त्री चित्रित किया गया है। भोग्या भी ऐसी कि जिसके साथ कुलशील पुरुष सो तो सकता है, बच्चे भी पैदा कर सकता है लेकिन पानी नहीं पी सकता है। गोदान में सिलिया की माँ का मातादीन से यह कहना कि **“तुम बड़े नेमी–धरमी हो उसके साथ सोओगे लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे”**[20]

स्त्री लेखिका और कुछ पुरुष लेखक भी आज जब अलग हटकर लिखनेका साहस करते हैं और पुरुष सत्ता के स्वीकृत रूपकों को चुनौती दे रहे हैं तो पुरुष वर्ग ऐसे स्त्री–विमर्श को शंका और घृणा की दृष्टि से देख रहा है।

आमतौर पर नारीवाद के नाम पर जिस बात की चर्चा की जाती है वह मूलतः पश्चिमी देशों के अनुभवों पर आधारित है। जिसमें नारी अस्मिता को सबसे ज्यादा बल मिला और स्त्री–विमर्श में नारीवाद नारा बन गया।

मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोवती, प्रभाखेतान के साहित्य में नारी को पुरुष मुहावरों में ढाला गया किन्तु अब के नारी विमर्श कारों में चित्रा चतुर्वेदी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, चित्रा मुद्गल, कमल कुमार, शिवानी, अलका सारावगी इत्यादि कथा लेखिकाओं ने समकालीन परिवेश में मानव जीवन की सम्रागता के साथ ‘स्त्री’ जीवन को सामाजिक सन्दर्भ में साथ लेकर साहित्य में अभिव्यक्ति दी है ऐसा लगता है की भविष्य में हिंदी साहित्य को नई पहचान का श्रेय महिला लेखिकाओं द्वारा मिलेगा।

स्त्री विमर्श अपने समय और समाज में नारी जीवन की वास्तविकताओं को और उनके जीवन की विडंम्बना की तह में जाकर संभावनाओं को तलाश करने और वैचारिक पार्श्वभूमि प्रदान करना है। स्त्री विमर्श का मुख्य मुद्दा स्त्री को सारे सामाजिक अधिकारों को दिलाने के साथ पुरुष के समकक्ष समता और सम्मान दिलाने की वकालत में तार्किक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि भी देता है।

स्त्री विमर्श नारी मुक्ति आंदोलन जागरण, प्रगति, संघर्ष और विद्रोह का कुल मिलाकर संगम है। जो भारतीय संदर्भ में नारी मुक्ति की बात कुप्रथाओं व रूढ़ियों से बहु आयामी शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

पश्चिम का नारीवाद आरम्भ में तो शोषण के विरुद्ध संघर्ष था जो अतिवादों एवं फिसलन के कारण पुरुष विरोधी मानसिकता और यौन उच्छृखंलता पर केन्द्रित होकर रह गया।

भारतीय स्त्री विमर्श में पश्चिमी नारी मुक्ति आन्दोलन जैसी दिशाहीनता अभी दिखायी नहीं देती। भारतीय विचारवंतो ने नारी के गुणों व उसकी क्षमता को स्वीकारा है न कि उसकी रूप सौन्दर्यता को जो स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में स्थापित करके पुरुष भेद रहित समाज की कल्पना करता है। नारी का सिर्फ नारी (मानवी) रूप को समाज में वस्तु भोग से हटाकर मानव संवेदना की अभिव्यक्त करने में समता और सम्मान के साथ पुरुष वर्ग से कदमताल करती हुई सहज जीवन की हकदार ही स्त्री विमर्श है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही समता, सहजता, समता के बिंदु पर खड़े नजर आते हैं। स्त्री–विमर्श तुलनात्मक न बनकर प्रत्येक मानव को उसकी विशिष्टता के साथ स्वीकार करना है।

संदर्भ

;1द्ध वृहत हिंदी शब्दकोश–संपादक आबिद रिझवी, मेरठ (पृष्ठ–122)

;2द्ध हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह–राधाकृष्णन प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बारहवां संस्करणः जनवरी, 2021 जगतपुरी, दिल्ली–110051

;3द्ध आशा रानी ब्होराः भारतीय नारीः दशा दिशा (पृष्ठ–173)

;4द्ध डॉ. बल्लभ तिवारी : हिंदी काव्य में नारी (पृष्ठ–82)

;5द्ध प्रोफेसर किसन चोपड़ा : भारतीय विचारपंत (पृष्ठ–7)

;6द्ध यू.एस. मोहन राव : महात्मा गाँधी का सन्देश (पृष्ठ–42)

;7द्ध हरदान हर्ष : भीमराव अम्बेडकर : जीवन और दर्शन (पृष्ठ–7)

;8द्ध जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श (पृष्ठ–171)

;9द्ध जयशंकर प्रसाद : कामायनी लज्जासर्ग (पृष्ठ–33) प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद

;10द्ध डॉ. बच्चन सिंह : आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास (पृष्ठ–165) लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज

;11द्ध मोहन राकेश : आषाढ़ का एक दिन में 'मातुल का कथन' (पृष्ठ–64) राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6

;12द्ध महादेवी वर्मा : श्रंखला की कड़ियाँ (हिंदी गद्य का विकास : रामचन्द्र तिवारी (पृष्ठ–967, विश्वविद्यालय प्रकाशन विशालाक्षी भवन वाराणसी में संकलित)

;13द्ध राजेन्द्र यादव : हंस पत्रिका मई, 2000 का अंक (पृष्ठ–14) मेरा हमदम मेरा दोस्त लेख में

;14द्ध वीरेन्द्र यादव : उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता– राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली (पृष्ठ–177)

;15द्ध पुष्पाल सिंह : आलोचना पत्रिका, वर्ष 34 अंक 75 अक्टूबर–दिसम्बर (पृष्ठ–96)

;16द्ध प्रो. गोपाल राय : हिंदी उपन्यास का इतिहास– राजकमल प्रकाशन सातवां संस्करण–2010, नई दिल्ली (पृष्ठ–126)

;17द्ध वीरेन्द्र यादव : उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता–राजकमल प्रकाशन छात्र संस्करण : 2017, नई दिल्ली (पृष्ठ–176)

;18द्ध वीरेन्द्र यादव : उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता–राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 छात्र संस्करण : 2017 (पृष्ठ–185)

;19द्ध फणीश्वर नाथ रेणु : मैला आंचल 1954 (पृष्ठ–116)

;20द्ध प्रेमचन्द्र : गोदान प्रकाशक स्मगबपवद ठववोए छमू क्मसीप (पृष्ठ–243)

34.दलित विमर्श : एक अध्ययन

–डॉ.सुधिरकुमार गौतम,
सहा. प्राध्यापक, एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह (म.प्र.)

भारतीय समाज में दलित वर्ग के लिए अनेक शब्द प्रयोग में लाये जाते रहे है जैसे – शूद्र, अछूत, बहिष्कृत, अंत्यज, पददलित, दास, दस्यु, अस्पृश्य, हरिजन, चांडाल आदि। दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है – मसला हुआ, रों या कुचला हुआ, नष्ट किया हुआ, दरिद्र और पीडित, दलित वर्ग का व्यक्ति। विभिन्न विचारकों ने दलित शब्द को अपने–अपने ढंग से परिभाषिक किया है। डॉ.एनीबीसेन्ट ने दरिद्र और पीडितों के लिए 'डिप्रैस्ड' शब्द का प्रयोग किया है। दलित पैंथर्स के घोषणा पत्र में अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन, मजदूर, गरीब–किसान, खानाबदोश जाति, आदिवासी और नारी समाज को दलित कहा गया है। मानव समाज में हर वह व्यक्ति या वर्ग दलित है जो कि किसी भी तरह के शोषण व अत्याचार का शिकार है। इसके अतिरिक्त माना गया कि–सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक या आर्थिक या फिर अन्य मानवीय अधिकारों से वंचित, वह वर्ग जिसे न्याय नही मिल सका दलित है।

वाल्मीकि के अनुसार दलितों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। उनकी मान्यतानुसार दलित ही दलित की पीडा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणित अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आशय की पुष्टि के तौर पर रचित अपनी आत्मकथा जूठन में उन्होंने वंचित वर्ग की समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट किया है। दलित विमर्श आज के युग का एक ज्वलंत मुद्दा है। भारतीय साहित्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हो रही है। दलित साहित्य को लेकर कई लेखक संगठन बन चुके है और आज यह एक आंदोलन का रूप लेता जा रहा है। स्वाभाविक रूप से साहित्य, समाज और राजनीति पर इसका व्यापक असर पड रहा है। दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन और दमन हुआ है। दलित लेखक केवल भारती लिखते हैं, दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे काम करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियां आती है, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।

दलित आन्दोलन दलित साहित्य का वैचारिक आधार है। डॉ. अंबेडकर का जीवन–संघर्ष ज्योतिबा फुले तथा महात्मा बुद्ध का दर्शन उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि हैं। सभी

दलित रचनाकार इस बिन्दु पर एकमत हैं कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामंती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राम्हणवादी सोच और वर्चस्व के विरोध में उन्होंने आंदोलन खडा किया था। यही कारण है कि जहाँ दलित रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट विचारक माना वही डॉ. अंबेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया। डॉ. अंबेडकर ने अनेक स्थलों पर जोर देकर कहा है कि दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। दलित चिंतन में राष्ट्र पूरे भारतीय परिवार या कौम के रूप में है जबकि ब्राम्हणों के चिंतन में राष्ट्र इस रूप में मौजूद नही है। उनके यहाँ न दलित है, न पिछडी जातियां है और न अल्पसंख्यक वर्ग है। इसलिए हिन्दू राष्ट्र और हिंदू राष्ट्रवाद दोनों खंडित चेतना के रूप में है। दूसरे शब्दों में वर्ण व्यवस्था ही हिन्दू राष्ट्र का मूलाधार है। इसिलीए केवल भारती के शब्दों में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है।

करोंडों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राम्हणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था। दलित चिंतकों ने इतिहास की पुर्नव्याख्या करने की कोशिश की है। इनके अनुसार गलत इतिहास–बोध के कारण लोगों ने दलितों और स्त्रियों को इतिहास–हीन मान लिया है, जबकि भारत के इतिहास में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वे इतिहासवान है। सिर्फ जरूरत दलितों और स्त्रियों द्वारा अपने इतिहास को खोजने की है। डॉ. अंबेडकर पहले भारतीय इतिहासकार है जिन्होंने इतिहास में दलितों की उपस्थिति को रेखांकित किया है। उन्होंने इतिहास लेखन में दो तथ्यों को स्वीकार किए जाने की बात कही है। पहली बात यह कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और भारत तीन प्रकार का रहा – ब्राम्हण भारत, बौद्ध भारत और हिन्दु भारत। इनकी अपनी–अपनी संस्कृतियां रही। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमणों के पहले भारत का इतिहास, ब्राम्हणों और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है।

दलित विमर्श सबसे प्रखर रूप में दलित आत्मकथाओं के रूप में सामने आया। दलित साहित्यकारों ने अपनी ही कहानी और अपने अनुभव के माध्यम से दलित उत्पीडन और दलित संघर्ष को रेखांकित किया। ओमप्रकाश वाल्मिकी की जूठन पहली दलित आत्मकथा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो एक लंबा संघर्ष करना पड, 'जूठन' इसे गंभीरता से उठाती है। इसमें चित्रित दलितों की वेदना

और उनका संघर्ष पाठक की संवेदना से जुडकर मानवीय संवेदना को जगाने की कोशिश करते हैं। तुलसी राम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' एवं मणिकर्णिका पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए जूझते एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है साथ ही हाल ही के वर्षों में डॉ. श्योराज सिंह 'बेचैन' की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' प्रकाशित हुई है। जिसमें एक दलित बालक के बचपन का गला बहुत ही बेरहमी से घोटने का प्रयास किया गया, लेकिन लेखक का बाल–मन डरा नहीं जुटा रहा शिक्षा की लड़ाई के लिए

दलित कहानियों मे सामाजिक परिवेशगत पीडाएं, शोषण के विविध आयाम खुल कर और तर्क संगत रूप से अभिव्यक्त हुए है। ग्रामीण जीवन में अशिक्षित दलित का जो शोषण होता रहा है, वह किसी भी देश और समाज के लिए गहरी शर्मिंदगी का सबक होना चाहिए था। 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में इसी तरह के शोषण को जब पाठक पढ़ता है, तो वह समाज में व्याप्त शोषण की संस्कृति के प्रति गहरी निराशा से भर उठता है। ब्याज पर दिए जाने वाले हिसाब में किस तरह एक सम्पन्न व्यक्ति, एक गरीब दलित को ठगता है और एक झूठ को महिमा–मण्डित करता है, वह पाठक की संवेदना को झकजोर कर रख देता है।

महात्मा ज्योतिराव फुले सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिराव फुले का जन्म सन 1827 में पुणे (महाराष्ट्र) मे हुआ। इन्होंने शिक्षा के महत्व को जन–जन तक पहुचाने के लिए लगभग 18 पाठशालाएं खोली ये पाठशालाएं मुख्य रूप से शुद्रो और महिलाओ के लिए था। महात्मा फुले ने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की थी और इसी वर्ष उनकी क्रांतिकारी पुस्तक गुलामगिरी प्रकाशित हुई थी। इस समय तक रानाडे का प्रार्थना समाज अस्तित्व में आ चुका था। दलित आंदोलन जिन महापुरूषों से शक्ति ग्रहण करता है उनमें ज्योतिबा फुले के अलावा केरल के नारायण गुरू (1854), तामिलनाडु के पीरियार रामास्वामी नायकर (1879–1973), उत्तर भारत के स्वामी अछूतानंद (1879–1933), बंगाल के चांद गुरू (1850–1930), मध्यप्रदेश के गुरू घासीदास (1756) आदि प्रमुख हैं। ज्योतिबा फुले के नवजागरण के उपरांत महाराष्ट्र में जो दलित चेतना उभरी उसका राजनैतिक प्रभाव हमें 1923 में देखने को मिलता है जब बंबई की विधान परिषद ने यह प्रस्ताव पारित किया कि दलित वर्ग के लोगों को भी सार्वजनिक सुविधाओं और संस्थाओं के उपयोग का समान अधिकार होगा। महाड़ में अछूतो का पानी के लिए सत्याग्रह इसी अधिकार को प्राप्त करने के लिए था।

1927 में ब्रिटिश सरकार ने भारत की संवैधानिक समस्या को सुलझाने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया। डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलितों ने कमीशन का समर्थन किया और मांग कि की हिन्दुओं से अलग उन्हें भी एक विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग माना जाए और उनके लिए मुसलमानों की तरह का प्रतिनिधित्व दिया जाए। इतना ही नहीं, भारत के भावी संविधान की रूपरेखा तय करने के लिए जब लंदन में गोलमेज कॉन्फरन्स की घोषणा हुई तो इसमें दलितों के प्रतिनिधि के रूप में डॉ. अंबेडकर और आर.श्रीनिवास को आमंत्रित किया गया था। स्वामी अछूतानन्द (6 मई 1869–20 जुलाई 1933) ने लोक छंद में रचित 'आदिवंश का डंका' में गीत, गजल, भजन और रसिया के छन्दों का मिश्रण किया है इसमें सुप्त दलित समाज को जगाने की बात करते हुए सबसे पहले वे कहते है कि दलित प्राचीनतम हिन्दू है जो कभी समाज के सरदार थे, उन्हें जबरन शुद्र बनाकर गुलामी की जन्जीरों में जकड लिया। वे इन जन्जीरो को तोडने की बात करते है बुद्ध की मुक्त कंठ से प्रशंसा करनेवाले इस कवि ने दलितों का आवाहन करते हुए कहा है कि कौम को अज्ञानता की नींद से जगाते चलो तथा सवर्णों की चेतावनी देते हुए वे उनके बाहरी पाखण्ड का पर्दाफाश करते है। आधुनिक भारत में सामाजिक प्रतीक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम लिया जाता है। अम्बेडकर सामाजिक न्याय के उत्कट सेनानी थे उन्होंने दलित वर्गो के उत्थान और उनके लिए जीवन की न्याय सम्मत और सम्मानजनक दशाएँ सुनिश्चित करने के अभियान के प्रति अपना जीवन समर्पित कर दिया।

बिहारी लाल हरित (13 दिसम्बर 1913–26 जून 1999) हिन्दी दलित कविता के प्रसिद्ध हस्ताक्षर रहे हैं। हीरा डोम और अछूतानंद जैसे प्रारंभिक दलित रचनाकारों की श्रेणी में हरित का नाम लिया जाता है। दलित समाज के प्रसिद्ध नारे जय भीम की सजना का श्रेय बिहारीलाल हरित को है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. कंवलभारती, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह 'बेचैन', डॉ. कुसुम वियोगी, रजनी तिलक दलित–चेतना के उल्लेखनीय लेखक है। हिन्दी दलित–लेखक में महिला रचनाकारों की संख्या नगण्य है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जन्म 30 जून 1950 बरला गांव, मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) जिला मृत्यु 17 नवम्बर 2013 (उम्र 63) देहरादून व्यवसाय रचनाकार राष्ट्रीयता – भारतीय नागरिकता–भारत। वर्तमान दलित साहित्य के प्रतिनिधी रचनाकारों में से एक है। अनकी हिन्दी दलित साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मोहनदास नैमिशराय ख्यातनाम दलित साहित्यकार एवं बयान के संपादक है। झलकारी बाई के जीवन पर वीरांगना झलकारी बाई नामक एक पुस्तक सहित 35 से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी

हैं, जिसमें उपन्यास, कथा संग्रह, आत्मकथा तथा आलेख इत्यादि शामिल हैं। वे सामाजिक न्यास संदेश के संपादक भी है।

निष्कर्ष :–

हिंदी दलित साहित्य में कई महाकाव्य रचे गए जिनमें बिहारीलाल हरितकृत्य भीमआयन जग जीवन ज्योति कथा वीरांगना झलकारी बाई प्रसिद्ध है। इस प्रकार सन 40 से लेकर 80 के दशक तक दलित समाज में अंबेडकरी आंदोलन के प्रचार प्रसार में हरित जी की महत्वपूर्ण साहित्यक सभा गीता रही है। इनकी काव्य संवेदना का निर्माण असमानता शोषण और अन्याय के प्रतिकार का उद्वेलन है जिसका संबंध समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने से है। हरित जी दलित चेतना के समर्थ रचनाकार है जिन की कविताओं में प्रतिरोध की भावना प्रबल दिखती है। दलित विमर्स से संबंधित अनेक विवादास्पद मुद्दे है। दलित किसे माना जाना चाहिए। उन्हें जो जन्म से अवर्ण हैं, जिन्हे हिन्दे समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था के अनुसार 'शूद्र' माना जाता है या उन्हे जो 'अछुत' समझे जाते है। 'शूद्र' और 'अछूत' ये दोनों श्रेणियाँ जन्म के आधार पर होती है अर्थात् इस श्रेणी में आनेवाले लोगों के साथ सामाजिक और आर्थिक भेदभाव इसलिए किया जाता है। क्योंकि इनका जन्म ऐसे समाजों में हुआ जिन्हे उत्पीडित और शोषित करना समाज के दूसरे वर्णों द्वारा अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझा जाता है अवर्ण जातियों मे किसी की आर्थिक स्थिति बेहतर हो जाती है तो भी उनकी सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आता।

संदर्भ :–

१. डॉ. सिमा रानी – अस्मितामूलक विमर्श और साहित्य, अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, 2017.

२. गूगल सर्च – विकिपुस्तक

३. ओमप्रकाश वाल्मीकि – जूठन (आत्मकथा)

४. तुलसीराम – मुर्दहिया (आत्मकथा)

५. मोहनदास नैमिशराय – अपना गाँव (कहानी)

६. कौशल्या वैसन्त्री – दोहरा अभिशाप (आत्मकथा)

७. डॉ. श्योराज सिंह 'बेचैन'–मेरा बचपन मेरे कंधो पर

35.समाज और साहित्य में थर्ड जेंडर

–प्रा.डॉ.सुरेखा प्रेमचंद मंत्री
श्रीमती नानकीबाई वाधवानी कला महा. यवतमाल

एक ओर वर्ग है जो न स्त्री है और ना ही पुरूष है, लेकिन हमेशा से समाज का अभिन्न हिस्सा रहा है। जिसे समाज 'तीसरी दुनिया,' 'थर्ड जेंडर,' 'किन्नर,' 'हिजडा' वृहन्नला, शिखंडी, मौगा, छक्का, खोजा आदि के रूप में जानते है। थर्ड जेंडर का अर्थ है–'ट्रांसजेंडर' इन्हें टी.जी. समुदाय भी कहा जाता है। हिंदी में 'किन्नर', पंजाबी में खुसरा, तेलगु में नपुंसककुडू, उर्दू में हिजडा, अंग्रेजी में म्नदनबी, गुजराती में पवैयया, कन्नड में जोगप्पा आदि शब्द प्रचलित है। आज सरकार और सामाजिक संगठनों ने इन्हें तीसरे लिंग का संबोधन दिया है। थर्डजेंडर अर्थात न नर, न नारी या फिर दोनों के गुणों का समुच्चय लेकिन अर्धनारीश्वर के इस देश में इनकी न कोई पहचान है, न मान–सम्मान, न शिक्षा, न रोजगार। मात्र पुत्र विवाह या पुत्र जन्म के अवसर पर तालियॉ पीट–पीटकर या नाच–गाकर दुआएँ देना और जिजीविषा अर्जित करने तक ही इनका अस्तित्व सीमित है। पर समाज इन्हें हेय मानता है, सौतेला व्यवहार करता है, घृणा की दृष्टि से देखता है। ऐसा लगता है वह किसी ओर दुनिया के लोग हो। इनके हिस्से में मात्र अपमान, अवहेलना है। आज भारत में किन्नरों की अनुमानित संख्या दस लाख के आसपास है और यह छोटा–सा तबका सामान्य जीवन के लिए लगातार संघर्ष कर रहा है।

थर्डजेंडर का अस्तित्व इतना ही पुराना है, जितना मानव जाति में नर और नारी का। सभी भाषा में तीसरा लिंग नपुंसक लिंग है। इसके अंतर्गत ऐसे पदार्थ आते है, जिन्हें पुल्लिंग या स्त्रीलिंग के अंर्तगत नही रखा जा सकता। अंग्रेजी में भी इसे न्यूटर जेंडर कहॉ गया है। कहते है कि परमेश्वर, भगवान, अल्लाह, वाहेगुरू ने सिर्फ ढाई बात बनाई थी– औरत, मर्द और किन्नर। औरत और मर्द सृष्टि में संर्वधन करेंगे और किन्नर ईश्वर से उनके लिए शुभकामनाएँ मांगेगे। पुरानों, ग्रंथों में किन्नरों का उल्लेख मिलता है। रामायण में अयोध्याकांड में वनवास जा रहे भगवान राम ने सभी नर–नारी को वापीस कर दिया पर यह वर्ग चौदह वर्ष उनके प्रतिक्षा में रहा। महाभारत में भी अर्जुन और शिखंडी के प्रसंग मिलते है। जैन साहित्य में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने इनकी उपयोगिता का जिक्र किया है। किन्नर राज दरबारों में काम करते थें। इन्हें महलों में सुरक्षाकर्मी के रूप में रखा जाता था। अलाउद्दीन और जहांगीर के यहॉ सेना और प्रशासन में उच्चाधिकारी ही नही, जागीरदार भी थे। स्त्री–पुरूष दोनों बनने की क्षमता के कारण उन्हें जासूस का पद दिया जाता था। स्वतंत्रता संग्राम में इन्हों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामतः ब्रिटिश सरकार ने हिजडा समुदाय को अपराधी घोषित कर दिया था।

1994 में मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन ने इन्हें चुनाव का अधिकार दिया। पॉच वर्ष बाद 1999 में कोई ट्रांसजेंडर पहली बार एम. एल. ए. चुना गया। भारतीय संविधान में प्रयुक्त

'व्यक्ति' या 'नागरिक' शब्द थर्डजेंडर के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। दस वर्ष की कानून लडाई के बाद सुप्रीम कोर्ट ने इन्हें बराबरी का दर्जा देकर सम्मान से जीने का हक दिया। 15 अप्रैल,2014 को हर सरकारी दस्तावेज में महिला और पुरूष के साथ–साथ थर्डजेंडर के कॉलम का विधान किया गया। आज सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद थर्डजेंडर को अन्य नागरिकों की तरह मौलिक अधिकार प्राप्त है। इसे पिछडा वर्ग घोषित करके शैक्षणिकता में और नौकरी के लिए इनके आरक्षण की मोहिम भी चल रही है। चिकित्सा से बच्चा गोद लेने का अधिकार, अलग शौचालय, पासपोर्ट, राशन कार्ड, आधार कार्ड, स्कॉलशिप, पेंशन, पैन कार्ड, बिल, बैंक खाता, लोन, यात्रा में सुविधाएँ भी बडे मुद्दे है। 2016 में कॅबिनेट में ट्रांसजेंडर को पर्सनल बिल भरने की मंजूरी मिली। संवैधानिक संरक्षण और संघर्ष के कारण कल और आज के किन्नर की स्थिति में काफी अंतर आया है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने किन्नरों को आगे लाने में और इनके अधिकारों की आवाज उभरने लगी। यह सामाजिक कार्यकर्ता के साथ–साथ भरतनाट्यम नर्तिका, लेखिका और टी. वी. कलाकार है। उनकी आत्मकथा ''मी हिजडा, मी लक्ष्मी'' मराठी, गुजराती और अंग्रेजी में मिलती है। वह संयुक्त राष्ट्र संघ में एशिया पैसिफिक का प्रतिनिधित्व करनेवाली प्रथम ट्रांसपर्सन थी। वह किन्नर समाज का टोरंटो और अन्य देशों में प्रतिनिधित्व कर चुकी है। 'अस्तित्व' नाम की संस्था द्वारा वह इस समुदाय विकास के लिए लगातार प्रयासरत है। राजस्थान की गंगाकुमारी पूरे संघर्ष के बाद 2017 में पुलिस में भतर्ी हुई। पृथिका याशिनी देश की प्रथम ट्रांसजेंडर सब इंस्पेक्टर बनी। कलकत्ता में जन्मी जोयिता मंडल प्रथम जज बनी। शबनम मौसी प्रथम किन्नर विधायक है। मानवी बंदोपाध्याय ने पश्चिम बंगाल के कृशन नगर विमेन कॉलेज में प्रिन्सिपल का पदभार संभाला। छत्तीसगढ के रायगढ में मधु किन्नर मेयर पद पर आसीन होनेवाली प्रथम ट्रांसजेंडर है। क्लासिकल नर्तकी पद्मिनी प्रकाश पहली न्यूज एंकर है। वह सौदर्य प्रतियोगिताओं में भाग भी लेती है। रोज वैकटेश्वर पहलीबार टी.वी. होस्ट बनी। उनके पास इंजीनियरिंग में स्नातक और बायो इंजीनियरिंग में मास्टर की डिग्री हासिल है। विद्या स्माइली प्रथम पूर्णकालिक ट्रांसजेंडर थिएटर कलाकार है। कल्कि सुब्रहमण्यम लेखक और कलाकार है साथ ही अपने जॉति के उत्थान के लिए कार्यरत है। उन्हीं के पास जनसंचार में स्नातकोत्तर की डिग्री है। विजयेती वसंत मोगली भी ढेरों मुश्किलों का सामना करने के बाद सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में स्थापित हुई। पर दुखी मन से किन्नर की सामाजिक स्थिति पर कहती है कि किन्नर की सामाजिक स्थिति एक पालतू कुत्ते से भी बदत्तर है।

जनसंचार के माध्यमों की बात करे तो फिल्मों में किन्नरों का थोडा बहुत हास्यपद रोल तो दिख जाता है, पर 1974 में पहली बार किसी बडे कलाकार संजीवकुमार ने ''नया दिन नई रात'' में ट्रांसजेंडर का रोल किया। 1997 में महेश भट की ''तमन्ना'' में किन्नर बने परेश रावल पराई बेटी के लिए अपनी बेटी जैसी संवेदनाएँ रखते दिखाई देते है। ''दरमियॉ इन बिट्वीन'' में मॉ किरण खैर की बेटी किन्नर है और वह चाह कर भी बेटी को किन्न्र समाज की अँधेरी बंद

गलियों से बचा नही पाती उसे सामान्य बच्चों जैसी परवरिश नही कर पाती। दिव्या माथुर अपनी कहानी ''एक शाम भर की बातें'' में ब्रिटेन के संदर्भ में लिखती है–''होमोसेक्युलर, लैस्बियंस, हैट्रोसेक्सुयल होना वहाॅ की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। टी. वी. का क्रमों में यही लोग छाए रहते है।''यह विषय वर्तमान साहित्य में अपनी पैठ वना चुका है। यह अल्पसंख्यक अस्मिताओं पर विर्मश का दौर है। दशकों पहले से दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श से आच्छादित साहित्य का फलक आज तीसरी सत्ता पर कलम उठाने के लिए बाध्य हो गया है। बाध्यता उस बात की कही जा सकती है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहाॅ जाता है, वह सामाजिक से अधिक हो ही नही सकता। उसकी सदा से सामाजिक संबंधताएँ और सरोकार रहे है। साहित्य का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था में परिर्वतन करना भले न हो, फिर भी संकीर्ण मानसिकता को बदलने में सहायक की भूमिका निभाता ही है। समय–समय पर होनेवाले आंदोलनों को साहित्य ने मजबूत जमीन प्रदान की है। प्रेमचंद ने साहित्य को युही जलती हुई मशाल नही कहाॅ है। 'मशाल' शब्द जितना 'रोशनी' से संबंधित है, उससे कही ज्यादा 'आग' के अर्थ का द्योतक है। वही आग और रोशनी आज किन्नर विमर्श के रूप में सामने हैं। यह साहित्य की संबंधता ही है, जो इधर कुछ वर्षो में इस विषय पर गंभीर चर्चाएँ हुई है।

निर्मला मुराडिया के उपन्यास ''गुलाम मंडी'' में इसी तिरस्कृत वर्ग के किन्नरों को नायकत्व दिया गया है। महेंद्र भीष्म के ''किन्नर कथा'' में इस लिंग को पुरूष–स्त्री के अलावा एक सशक्त समुदाय माना गया है, जो इंसान समझा जाने पर देश–समाज के विकास में भी योगदान दे सकता है। राजघराने में जन्मी सोना किन्नर गुरू पायल सिंह के जीवन संघर्षपर आत्मकथात्मक उपन्यास है। परिवार में विकलांग बच्चा पैदा होने पर उस की परवरिश की जाती है, तो किन्नर के जन्म को कलंक मान उससे मुक्त होने के प्रयास क्यो? उसका कसूर क्या है? प्रदीप सौरभ की ''तीसरी ताली'', नीरजा माधव का ''यमदीप'', चित्रा मुदगल का ''पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा'', भगवंत अनमोल का ''जिंदगी 50–50'' उपन्यास किन्नर जीवन के अनन्य पहलू खोलते, दुश्वारियों से दो–चार कराते उन्हें मनुष्यत्व देते है। मछेन्द्र मोरे के नाटक ''जानेमन...इधर'' के अनुसार किन्त्र प्राकृतिक रचना नही। यह वंशवृध्दि के लिए किन्नर गुरू द्वारा मर्द को किन्नर बनाने का परिणाम है। महेंद्र भीष्म के उपन्यास किन्नर कथापर आधारित नाटक लखनउ की हेल्प यू संस्था की सांस्कृतिक संध्या योजना के तहत संत गाडगे ऑडिटोरियम में मंचित किया गया। सुरेश मेहता के नाटक ''किन्नर गाथा'' के मंचन के समय दीनानगर के किन्नर संप्रदाय के प्रधान बाबा प्रवीण ने इसका आगाज करके इसे एकदम सजीव बना दिया।

कहानी में थर्डजेंडर की व्याथा कथा की उम्र कहानी विधा के समांतर ही है। 1920 के आसपास प्रकाशित पांडेय बेचेन शर्मा उग्र के कहानी संग्रह ''चॉकलेट'' और महाप्राण निराला के ''चतुरी चमार'' में ऐसी कहानियाॅ मिलती है। शिवप्रसाद सिंह की ''बिंदा महाराज''अधेड हो रहे किन्नर की बहुआयामी विडंबनाएँ लिए है। एक प्राकृतिक शाप के कारण बिंदा महाराज क्रूर समाज

में उपेक्षित और शापित जीवन जीने के लिए विवश है। किंदा महाराज ने नई कहानी के दौर की बहुचर्चित, बहुपठित, बहुसमीक्षित, लोकप्रिय कहानी रही है। कांदबरी मेहरा की ''हिजडा'' में नायिका के कॉलेज के दिनों की मर्दनुमा सहपाठी रागिनी जिजीविषा के कारण हिजडों के समुदाय में शामिल हो जाती है। कहानी कहती है कि मॉ की मौत बेटियों के सर से बाप का साया भी छीन लेती है। उन्हें तो सिर्फ बेटियों से छुटकारा चाहिए फिर वह किसी जीजा की रखैल बने या हिजडा बन घर–घर नाचे? उन्हें कोई सरोकार नही। किरण सिंह की कहानी ''संज्ञा'' उस समाज का मनोविज्ञान लिए है, जो बच्चे के किन्नर रूप को स्वीकारने की क्षमता ही नही रखता। कहानीकार कहते है–''इस धरती के बासिंदों ने तुम्हारी जाति के लिए नरक की व्यवस्था की है। उस नरक के लोग पहाडी पर तुम्हारे जन्म के सात साल बाद आकर बस गए है। वह लोग कपडा उठाकर नाचते है और भीख मांगते है। लोग उन्हें गालियॉ देते है और छूकते है। उनके मुॅहपर दरवाजा बंद कर लेते है, घेरकर मारते है। तुम्हारे बारे में पता लग गया तो वह लोग तुम्हें भी छीनने आ जाएगें।'' बलजीत सैली की ''अभी और कितने नरक'' का नायक भी जिंदगी के इस मजाक को भोग रहा है। उनके पास पुरूष का शरीर तो है, पर हरकते औरतोंवाली है। नियति के इस त्रासदी का पता उसे तब चला, जब वह पॉचवी में पढना था और उसे स्कूल से निकाल दिया गया। एक ओर स्कूल के लडके, पंचरवाला और दूसरे लोग उससे अश्लिल हरकते करते है, दूसरी ओर हिजडे उसे अपने दल में मिलाना चाहते है, मॉ–बाप की परेशानियॉ अलग है। वह जानता है कि मसखरा बने रहने की विवशता सीने में छिपाकर ही उसे दिन–कटी करनी है। वेब दुनिया पोर्टल में भी कई कहानियॉ पढने को मिल रही है। जैसे गरिमा संजय दूबे की ''पन्ना बा'' आदि..।

काव्य जगत भी थर्डजेंडर के दर्द से अछूता नही है। निशा माथुर की ''छोटी–सी खोली में नन्हा जीवन की तनहाईयॉ तथा नीरज मेहता की ''मैं हूॅ किन्नर'' में किन्नर मिलाप और इंसानियत की गुहार मन छू लेती है। ''हॉ मैं हूॅ किन्नर.....पहन लेता हूॅ चूडी, बिंदी, गजरा, पायल ओढ लेती हूॅ चुनरी किंतु खुद की देह देख समझा नही। मैं पुरूष हूॅ या स्त्री।'' कहने का तात्पर्य यह है कि– स्त्री–पुरूष पर व्यक्तित्व के कारण थर्डजेंडर न कभी समाज की मुख्य धारा का अंग बन सके है और न साहित्य का लेकिन संघर्ष जारी है। संवैधानिक लडाई में कुछ जीत लिया है कुछ पाना बाकी है, लेकिन सामाजिक सोच से लडाई जारी है।

संदर्भ ग्रंथ

1 दिव्या माथुर, एक शाम भर बाते, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली,2000

2 निर्मला मुराडिया, गुलाम मंडी, सामयिक, दिल्ली, 2016

3 महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक, दिल्ली, 2011

4 वही, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016

5 प्रदीप सौरभ, तीसरी बाली, वाणी, दिल्ली, 2011

6 नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक, दिल्ली, 2009

7 चित्रा मुदगल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा

36.बाल विमर्श

–डा.उज्वला अशोक राणे
गोवा शिरोड़ा फोंडा

साहित्य को विविध श्रेणियों में बाँटा गया है। साहित्य सृजन कि एक श्रेणी है बाल साहित्य। बाल साहित्य से अभिप्राय है, बच्चों के लिए लिखा जानेवाला साहित्य है, जिसको बच्चें रुचि ूर्ण ढंग ाढ़ सके।

राष्ट्र निर्माण के लिए युवा ीढ़ी का महत्व ूर्ण स्थान है। आज की युवा ीढ़ी ही, कल देश के नागरिक होंगे तथा अ ने अच्छे व्यकित्व से कल देश का भविष्य सुनहरा करने के सक्षम होंगे अगर अच्छे व्यकित्व, अच्छी भावनाए रखनेवाले कल देश की सेवा करने में भी ीछे नहीं रह सकते। आज हम यह सोचते है कि, आज के बच्चें कल के नागरिक है, इसलिए उन्हें सही और अच्छे मूल्यों से अवगत करना जरूरी हैं , क्योंकि छोटे बच्चे मिट्टी के घड़ों की तरह होते है, उन्हें जिस भी आकार में ढालो वो ढल जाते है ,क्योंकि बच न में बच्चों का व्यकित्व उनके हाव–भाव बदले जा सकते हैं। जब बच्चा जो सुनता है जों देखता उसका उन चीजों र गहरा प्रभाव ाड़ता हैं। बच्चें अ ने आस– ास के लोगों तथा माँ–बा। से ज्यादा सीखते है। जब बच्चें माँ के कोख़ में ालते रहते है, तो वो बहूत कुछ सीखना शुरु कर देते है। गर्भावस्था माँ जो कुछ सुनती है, या फिर सोचती है , उसका प्रभाव बच्चों र ाड़ता है। इसके उ रान्त जन्म के बाद बच्चें अ ने आस– ास के समाज से चीजों कों ग्रहण करने की कोशिश में लगे रहते है। बच्चों के ास ग्रहण शक्ति के साथ–साथ जिज्ञासा ज्यादा होती हैं। हर चीज को लेकर बच्चों के अन्दर अनेक प्रश्न होते है, और उनके सवालों का जो भी जवाब उन्हें मिल जाता है, वह उसे सज मानकर चलता है, वहीं उसके दिमाग में बैठ जाता हैं। बच्चे बड़ो की अनुकरण करना ासन्द करता है। जों वे देखता है, उसकी नलक करने के लिए बच्चें बहूत उतावले हो जाते हैं।

आज कल जिस तरह के अ राध समाज में बढ़ रहें है , जीससे यह साफ़ नजर आता है, कि आज के नागरिकों में जीवन मूल्यों की कमी है , इस सन्दर्भ में बाल साहित्य की भूमिका महत्व ूर्ण हैं। एक साल से लेकर ान्द्रह साल तक का समय बच्चों के जिंदगी में अहम होता हैं, और इनके दिमाग में ज्ञान तथा नई–नई चीजों की जानकारी प्रा त करने की इच्छा शक्ति तीव्र होती हैं। जब बच्चें 18 साल के हो जाते है तब, उनके दिमाग में कुछ नया कर दिखाने कि एक जीज्ञासा जाग उठती है। लेकिन आज भी हमारे भारत देश में बाल–विवाह , भ्रूण–हत्या, अत्याचार यह वेसे हि है। भारत में बाल साहित्य केवल

मनोरंजन का साधन मात्र बन गया है , इसलिए बाल साहित्य को उतना महत्व नहीं मिल ।ाया है।

आज की इस व्यस्त ज़िन्दगी में माँ–बा। के ।ास बच्चों के लिए समय ही नहीं होता है , की वे उन्हें सही मार्गदर्शन या सलाह दे सके। तकनीकी के विकास भी बच्चों कों बाल साहित्य से दूर कर रहा है। आज बच्चें हिंसात्मक फिल्में, मोबाइल गेम आदि में व्यस्त रहते हैं, जों कि उन।र हिंसात्मक प्रभाव छोड़ता है। हमारे समाज में बाल साहित्य के लिए कोंई स्थान नहीं नजर आता। बाल साहित्य को सिर्फ मनोरंजन का साधन मात्र माना जाता है। बाल साहित्य बाल मनोविज्ञान के आधार।र लिखा जाता है ,जिस में बालकों कि मानसिक क्रियाओं का वर्णन तथा उनके वैज्ञानिक ढंग से समझने कि किशिश लगी रहतीं है।

।श्चात्य समीक्षक वसीली सुखोम्लिन्सकी के अनुसार " बाल साहित्य बच्चों के लिए अजीबोगरीब,रोमांचक तथा प्रेरक घटनाओं का विवरण ही नहीं होता है ,अ।तु उनके लिए तो यह एक ूरा संसार होता, जिसमें वे रहते हैं , संघर्ष करते है ,बुराई का अ।नी अच्छाई से मुकाबला करते है। कथा और कहानियों में बच्चों की आत्मिक शक्ति को शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है , वैसे ही जैसे खेलकूद में गति, और संगीत में धुन उसे व्यक्त करती है। बच्चा कहानी सुनना ही नही चाहता बल्कि सुनाना भी चाहता है, जैसे कि वह खेल देखने के साथ–साथ खेलना भी चाहता हैं।

बाल साहित्य में एक तरफ़ मनोविज्ञान से युक्त, सार युक्त ,लिखा जा चूका है। आजकल बाल साहित्य की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो रही है। दिन प्रति दिन नयी सुचनाएँ सामने आती हैं यह बच्चों कों कितना प्रभावित करेंगी यह कहना संभव नहीं हैं।

हिन्दी में बहूत बाल साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द ने भी बच्चों के लिए कहानियों का निर्माण किया हुआ हैं। सन 1930 में हंस ।त्रिका के सम्।ादकीय में लिखा है ,कि बालक प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अ।नी रक्षा आ। कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण–दोष को भीतर से देखे। यही नही प्रेमचन्दजी ने अ।नी ईदगाह कहानी में आर्थिक विषमता के साथ–साथ जीवन के आधारभूत यथार्थ को एक बच्चे के माध्मय से ।ाठकों के सामने प्रस्तुत किया हैए। प्रेमचन्द के आलावा भी अन्य रचनाकार भी है, जिन्होंने बाल साहित्य।र लिखा है, अयोध्या सिहं उ।ाध्याय ,श्रीधर।ाठक , हरिकृष्ण देवसर और अमृतलाल नागर। 'आ।का बंटी ' एक कालजयी उ।न्यास हैं ,इसे हिन्दी साहित्य की एक मूल्यवान उ।लब्धि के रू। में देखा जाता

है, बच्चों के मनोविज्ञान।र लिखे मन्नू भंडारी के इस उ।न्यास को हिन्दी साहित्य के इतिहास में मील का।त्थर माना जाता है। साल 1970 में यह उ।न्यास लिखा गया था, लेकिन।ांच दशक बाद भी दर्जनों संस्करण और कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

आज राष्ट्रीय स्थर।र बाल साहित्य का महत्व तो निर्विवाद है। बच्चों के लिए लिखना एक बड़ी चुनोती की बात है , लेकिन बच्चों को सही दिशा दिखाये बिना समाज को बदलना भी संभव नही है , बड़ो के लिए लिखने से समाज बदला नही जाएगा, यही नहीं अगर बच्चों को सही शिक्षा मार्गदर्शन आदर्श प्रदान करने में सक्षम हुए तो ही एक नये भविष्य का निर्माण किया जा सकता है।

निष्कर्ष :–– अंत में निष्कर्षतःयही कहा जा सकता है, कि समाज और व्यक्ति के निर्माण के लिए बाल साहित्य कि अहम भूमिका है, क्योंकि आज बाल साहित्य।र कही।र भी बाते या चर्चाओ का आयोजन नहीं हो।ा रहा हैं। यहाँ तक की बाल साहित्य को।ाठ्यक्रम में भी शामिल नहीं किया गया है। आज बाल अ।राध हो भी रहे है, और कम भी हो रहे है क्योंकि कुछ नियमों तथा बाल अ।राध के कानून कि वजहों से, लेकिन बाल अ।राध कों जड़ से निकालने के लिए साहित्य ही उसकी मदद कर सकता हैं। साहित्य के जरिए तथा बच्चों।र आधारित फिल्मों कि सहायता से अ।राध कम कर सकते है। वैसे तो अ।राध कभी कम नहीं होंगे भला इनके माध्यम से समाज तथा बच्चों में एक सुधार कि कोशिश हो सकती है। वैसे तो आज अगर नाबालिग बच्चें कोई अ।राध करते है, तो उनकों सुधारघर बेज दिया जाता है, लेकिन बचच्चों कों चाहें जीतना भी सुधार घर भेजो।र अ।राध से जुड़े बच्चे कभी भी सुधर नहीं सकतें क्योंकि उन के मन में एक अ।राध कि प्रवत्ति ज़ाग चुकी होती है। इन सब का एक ही माध्यम है साहित्य, और वो है बाल साहित्य। आज ऐसा होना चाहिए कि बच्चों को एक अलग सा मंच देना चाहिए ताकि वो खुलकर बात कर सकें।

संदर्भ सूची :––– साहित्य अमृत –2009] गगनांचल :दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक –2015

37.ग्रामीण जीवन मे महिलाओ की वर्तमान स्थिती

–डॉ.उमाकांत सिताराम साळवकर
विभागाध्यक्ष, नॅशनल कला व विज्ञान महाविद्यालय अंभई,
ता. सिल्लोड, जि. औरंगाबाद, महाराष्ट्र

भारत में सामाजिक प्रवृत्तियाँ की स्थिती सदैव एक जैसी नही रही है बल्कि भारत में स्त्रि के विभिन्न स्वरूप है जैसे वह लक्ष्मी, विद्याशक्ति और सौदर्य का प्रतिक है। जितना आदर भारतीय स्त्री का अपने देश मे है उतना संभवतः संसार के किसी भी देश में देखने और पढने को नही मिलता है। पर दूख है कि उसकी दुर्बलताओं पर एकाधिकार कर लिया और उसे अपनी दासी बनाकर एक भोग की वस्तू के जैसा जीवन व्यापन करना पडा। विभीन्न समाज सुधारकोने स्त्री उध्दार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसमे राजा राममोहन राय, स्वामी सरस्वती, विवेकानंद, केशव दास गोविंद रानडे और म. गांधी ने अहम भूमिका निभाई है।स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रि ने अपने अधिकारो और कर्तव्यो के प्रति नई चेतना जगाई। इसलिए वे आज छोटे पद से लेकर बडे–बडे पदो पर कर्तव्य रत है। इसके साथ साथ ग्रामीण क्षेत्र मे स्त्रियो की स्थिती शहरो के परिप्रेक्ष मे आज भी सोचनीय और दयनीय बनी हूई है। इसका मूख्य कारण सामाजिक रूढी परंपरा में पिछडा पन होना।

ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियो की स्थिति एवं कारणःग्रामीण क्षेत्रों के गाव कस्बो, झुग्गी झोपडीयो में स्त्रि सामाजिक रूप से बहुत पिछडे हूई है, गरीबी और बेकारी, बेबसी, लाचारी झोपडीयो में कराह रही है, व्यक्ति व्यक्ति को दो। समय का भोजन भी नही मिल पाता है। उनके लिए रहने को खूला आसमान और भूमी है। न उसके पार घर है न खाने को दो समय का भोजन और न शरीर को ढकने को वस्त्र, शिक्षा उनसे काफी दूर है, अन्धविश्वास और रूढियो ने उनकी चेतना को भावना हीन बना दिया है। इन निर्धन समाज में स्त्रियो की स्थिति अत्यंत दयनीय और सोचनीय है। इन स्त्रियो ने अपने अधिकारो के प्रती जागरूक होनी चाहिए।

विवाह परंपराःग्रामिण क्षेत्र में विवाह के ऐसे कठोर रूढीवादी नियम है जो लडका और लडकी को ज्यादा से ज्यादा नियमो से जकडती है। पुरूषो को विभिन्न छूट दि गई है। विवाह की ऐसी परंपरा है जिसमे स्त्री ही पिसती गई वह आज भी कुछ जगह गाव, कस्बो मे स्त्रि अपनी पसंद से विवाह नही कर सकती भले ही वे शिक्षीत हो। आज भी ग्रामीण क्षेत्रो में स्त्रि की शिक्षा योग्यता और कूशलता ग्रामिण जीवन में महत्व नही दिया जाता।

बाल–विवाह:समाज का वास्तविक रूप हमे गर देखना है तो हमे गावो, कस्बो आदिवासी के बस्ती मे विदारक रूप दिखाई देता है काफी छोटी आयू मे ही लडकी का विवाह कर उस पर ग्रहस्ती का भार लाद दिया जाता है। छोटी आयू मे ही माता बनने के कारण वे रोग ग्रस्त होती है। इस प्रकार की परिस्थितियो में स्त्री की स्थिति परिवार और समाज दोनो मे दयनीय बनती जा रही है।

संयुक्त परिवार:संयुक्त परिवार में महीला की अपनी कोई इच्छा एव कोई अधिकार नही होते उसे सुबह सबसे पहले उठना पडता है रात में सबसे बाद में सोना होता है। वास्तव मे संयुक्त परिवार ने स्त्रियो को दासी बनाकर रखा गया उसे अन्धविश्वासी और रूढीवादी बनाया गया है। उसे बचपन सेही चूला, बरतन माजना, आदि घरेलू कामो को लगाया जाता है वे असंख्य यातनाओ को सहते हूऐ स्त्रि ने पूरूषो के अत्याचारो के विरूध्द आवाज नही उठाई है।ग्रामिण स्त्री अशिक्षित, निर्धन वे स्वय किसी प्रकार का कार्य नही कर सकती जिससे वे खूद की स्थिती सूधार ना सके। ग्रामिण क्षेत्रो मे हमेशा ही चौकटी के बाहर जाकर नौकरी करना परिवारीक नियमो के विरूध्द समझा गया है। परिवार मे स्त्रियो की स्थिति गूलामो से कम नही सूबहा से लेकर रात तक उसे काम ही काम करना पडता है। बावजूद इसके पति से डाट, मार और गाली सूनने को मिलती है।

परिवारीक विघटन:संयुक्त परिवार के चलते भाई भाईयो मे जमीन जायदाद के कारण आज साधारणतः विवाह के पश्चात पति–पत्नी अपना घर अलग बसाते नजर आये है। संयुक्त परीवार के घरोमे झगडे आणि अधिक मात्रामे होने कारण नवयूवक अब अलग रहना पसंद कर रहे है। गांव की स्त्रिया अब घर के बाहर काम, मजूरी, नौकरी आदि को जाती हूई नजर आयी है। अपने अधिकार तथा कर्तव्यो को समझने की कोसीश कर रही है।

बदलता परिवेश:सरकार अशिक्षित तथा अज्ञानता को दूर करने के लिए गांव–गांव मे बेसीक स्कूल, पाठशालाएँ आदि शिक्षा संबधीत अनेक योजनाएँ बनाकर शिक्षा का प्रसार हो रहा है। कस्बो में लडकीयो के हाई–स्कूल, डिग्री कॉलेज खोले गये इनके परिणामस्वरूप अब ग्रामीण समाज मे शिक्षित लडकीया शिक्षा पाने हेतू स्कुलो, महाविद्यालयो दिखाई दे रही है। इन लडकीयोको अपने परिवार में सम्मान एव इनकी राय भी परिवारो मे ली जा रही है। जब की पहले इस सम्मान एव शिक्षा उसकी आशा आकांक्षाओ को दबा दिया जाता था।

टेलीव्हीजन से ग्राम्य जिवन में आया बदलाव:ग्रामिण जिवन मे नगरो, शहरो की तरह आज गावो मे टेलिव्हीजन पर दिखाई जाने वाली धारावाहीक एव भिन्न विभिन्न कार्यक्रमो कें प्रसारण से ग्रामीण स्त्रियो के जिवन के स्थिति में बदलाव आया हूआ दिखाई देता है।

टेलिव्हीजन, मोबाईल आदि के साधनो मे प्रगति होने से गाँव, कस्बो, नगरो और महानगरो से जूडने से ग्राम्य जिवन मे समाचारपत्रो, सिनेमा, टी.व्ही. केबल आदि के माध्यमोद्वारा गांव में नगर की संस्कृति और सभ्यता पहूच रही है। अब ग्रामिण स्त्रिया अधिक मात्रामें नगरो मे आकर आपनी आवश्यकता के अनूसार चिजे खरीदती हूई दिखाई दे रही है। नगरोसे संपर्क स्त्रियो के आधुनिक, प्रगतिशिल बनाने साहयक होता दिख रहा है।

महिला प्रशिक्षण संस्थाएःसरकार महिला सक्षमिकरण को चलते गाव, कस्बो एव नगरो मे महिला प्रशिक्षण संस्थाओ को अनूदान देते हूए इन प्रशिक्षण संस्थाओ मे कपडा–सिलना और काटना, कालीन बनाना किचन से जूडे बारीक काम कॉटन को बूनना, माचिस बनाना आदि ऐसे कई कोर्सेस है जो परिवारीक कार्योसे मुक्त होकर स्त्रियाँ इन कार्योमे अतिरिक्त आय प्राप्त करने हेतू उने प्रशिक्षीत किया जाता है। इससे उनकी स्थिति में थोडा–बहुत सुधार आता हूआ दिखाई देता है।

स्वयं–सेवक महिला के संदर्भ मेःआज अनेक प्रकार की योजनाओ में महिला स्वंय सेविकाये घर घर जाकर स्थियो को स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, बच्चो के पालन पोशन, महिला बचत योजना, आदि के बारेमे दे स्वय सेवक महिला कार्यरत है इससे देश की प्रगति का परिचय होता दिखाई देता है। स्त्रियोपर इन सभी चीजो का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पडता है और वे नये तरीकिसे अपनी स्थिति का मुल्यांकन कर समाज के साथ चलने का प्रयास करती है। यही सभी तथ्य उसकी आर्थिक सामाजिक स्थिति, सोच और मानसिकता मे भी परिवर्तन लाने हेतू मदत करते है।

ग्रामिण समाज की स्त्रियो की स्थिति पूर्व जैसे नही रही उसकी परिवारिक और सामाजिक स्थिति में विभिन्न परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पडते है संयुक्त परिवार टूटने से उनके अधिकारो में परिवर्तन आया है और उनकी आर्थिक स्थिति स्त्री सशक्त होती दिखाई दे रही है। वे गाव जो कस्बो तथा नगरो के निकट है जहा लडकीयो के स्कूल और कॉलेज है जहा लडकिया शिक्षित होकर आपने आधिकारो के प्रति जागरूक होती नजर आ रही है।

संदर्भः

1. देहातो मे सामाजिक आर्थिक संबधो का बदलता हुआ प्रतिमान, लेखक योगेन्द सिह आवृती 1958.
2. भारत मे परिवर्तीत हूए गाव, लेखक एस.सी.दूबे, आवृती 1958.

38.सुशीला टाकभौरे की कविताओं में दलित स्त्री का सामाजिक यथार्थ

–प्रा. डॉ. यशवंतकर संतोषकुमार लक्ष्मण
कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, गढी,तहसिल. गेवराई जि. बीड

भारतीय समाज जीवन में आज इक्कसवीं सदी में भी स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुए हैं। आज भी हमारा पितृसत्तात्मक एवं वर्चस्ववादी पुरुष मन स्त्री को अपने समान मानने के पक्ष में नहीं है। वह आज भी स्त्री को अपने नियंत्रण में रखने में ही अपने पुरुषत्व की जय मानता है। आज स्त्री पढ़–लिखकर सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधों से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। आज वह हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है। वह हर क्षेत्र में आगे बढ़कर पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित समाज को दिखा रही है कि हम भी आपसे किसी मामले में कम नहीं है। लेकिन इस वास्तविकता के बावजूद भी हमारा पितृसत्तात्मक एवं परंपरावादी मानसिकता वाला समाज इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है। वह आज भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को निरंतर नकारता जा रहा है। आज वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से भी आगे है लेकिन पुरु"ावादी मानसिकता उसे अपने वर्चस्व में ही बनाये रखना चाहती है।

स्त्री के साथ होने वाले इस सामाजिक भेदभाव के संदर्भ में हिंदी के आलोचक राजेंद्र यादव का कथन उचित ही प्रतीत होता है– राजेंद्र यादव समाज में न्याय शब्द को समझाते हपुए कहते हैं– "मेरी समझ में न्याय का अर्थ होता है बराबर का व्यवहार और बराबर का स्टेटस। जो अवसर या सुविधा आप अपने लिये चाहते हैं, वहीं दूसरों के लिए भी दे यही न्याय है मैं समझता हूँ कि दुनिया का सारा साहित्य इसी न्याय की पुकार है। सामाजिक याय का अर्थ है कि दूसरों के अधिकार न मारे जायें, दूसरे का अवसर न मारा जाये और उसे उसका प्राप्य मिले।" इसका अर्थ अगर देखा जाए तो लेखक कहता है समाज में स्त्री–पुरुष को समान न्याय मिलना चाहिए। स्त्री–पुरुष को प्रधानता देता यह उद्धहरण दिखाई देता है। भारत देश पितृसत्तात्मक देश है। यहाँ घर की मुख्य डोर पुरुष के हाथ में होती है। आज भी हमारे यहाँ शादी करवानी हो तो पूछा जाता है लड़का कितना कमाता है ? यह बात स्त्री को नहीं पूछी जाती। उसे बस घर संभालना और खाना बनाना आ गया तो वह शादी के लिए पात्र मानी जाती है। ऐसा देखा जाए तो पुरुष पर अधिक भार होता है। घर में पैसे कमाके लाने का। शायद इसी वजह से पुरुष स्त्री पर अपना अधिक वर्चस्व दिखाने का प्रयत्न करता है। कहीं–कहीं ऐसा भी है अगर पत्नी बाहर

काम करके पैसे जोड़कर लाए तो पैसे स्वीकार भी नहीं किए जाते हैं। क्योंकि वे घर की औरत ने कमाकर लाए हैं। स्त्री–पुरुष गाड़ी के वह दो पहिए हैं जिनके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। घर और बाहर दोनों के काम संपूर्ण करना दोनों का कर्तव्य होता है। इसमें कोई छोटा या बड़ा ऐसा नहीं होता। स्त्री–पुरुष एक–दूसरे के बिना अधुरे हैं यह भी हम कह सकते हैं। पितृसत्ता के संदर्भ में गोपा जोशी का यह कथन उचित ही है– "पितृसत्ता शक्ति के उन रिश्तों को दर्शाती है जिनके माध्यम से पुरुषों का स्त्रीपर वर्चस्व स्थापित होता है। पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था को इंगित करती है, जिसमें नारी को हर प्रकार से पुरुष के अधीन रखा जाता है रक सके व्यक्तित्व के विकास के वरोध को धार्मिक और नैतिक जामा पहना जाता है। धर्म तथा नैतिकता के नाम पर ही सके बचपन से ही से संस्कार दिये जाते हैं कि वह अपनी सुरक्षा व अपने लिए निर्णय लेने के लिए पुरुषों पर ताउम्र निर्भर रहें।" अगर मनुष्य स्त्री–पुरुष में शारीरिक विविधता को छोड़कर मानसिक रित्या एक–दूसरे को देखे तो शायद स्त्री–पुरुष यह बेद निर्माण नहीं होगा और दोनों अच्छे से समाज में एक जागृति बनकर रह सकते हैं।

सुशीला टाकभौरे की कविता में सहजता से नारी की स्थिति का, उसकी वेदना–संवेदना और उसके विरोध का भाव नजर आता है।

"मैं ढूँढ़ती हूँ क्षितिज–रेखा
पूर्व से पश्चिम की ओर
मैं जान लेना चाहती हूँ
क्षितिज के उस पार क्या है।"

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री ने समग्र स्त्री मन की आकांक्षा को उजागर किया है। स्त्री भी स्वतंत्र होकर जीना चाहती है, सफलता के नये–नये शिखर पार करना चाहती है। लेकिन हमारा पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित समाज स्त्री को इस प्रकार की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं है। इस पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को अनेक बंधंनों की बेडियों में जकड़कर रखा है। निःसंदेह यह काव्य पंक्तियाँ आज की स्त्रियों को क्षितिज को पार करने की प्रेरणा देती हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इनके जीवन की डोर पुरुषों के हाथों में होती है। इसी असमान व्यवस्था को फटकारते हुए कवयित्री लिखती है–

"यह कौनसा समाज है
बरसों से ठहरा है

बरसों से उसके पैरों में वही हाथों में
व्याप्त, अपवित्रता का बोझ
दासता लाचारी बेबसी
कोई परिवर्तन नहीं।

यह स्थिति एक दलित स्त्री की बरसों से है। उसे अनेक धर्मग्रंथों के हवाले से बंधंनों की बेड़ियों में जकड़कर रखा गया है। वह अपनी व्यथा की अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाती थी। सुशीला टाकभौरे ने भारतीय समाज की स्त्री की दयनीयता को अपनी कविताओं के माध्यम से बहुत ही कुशलता से अभिव्यक्त किया है।

। दलित स्त्रियों की इसी सच्चाई को सुशीला टाकभौरे ने अपनी 'मेहंदी' नामक कविता में निम्न प्रकार उजागर किया है–

"त्याग तपस्यारत नारी सहती है ऐसी ही पीड़ा
पीड़ा में पाती सुख, पीड़ा में सौंदर्य निहारती
आकती अपने जीवन का मेहंदी सा उत्सर्ग
संस्कार वश
बंदिनी, नारी, पंगुनारी
कितनी महान ? कितनी अबला
सहती कितने दुःख–दर्द।"

दलित स्त्रियों को दोहरे अभिशाप की पीड़ा को झेलना पड़ता है। क्योंकि वे स्त्री होने के साथ–साथ दलित होती है। इसलिए समाज व्यवस्था में उसे दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ता है। पुरुषवादी सत्ता ने दलित स्त्री को इतना दबाया हुआ है कि वह अपने आपको असहाय एवं अबला भी मानने लगती है। दलित स्त्री की इसी त्रासदी को सुशीला टाकभौरे ने अपनी 'विद्रोहिणी' नामक कविता में उजागर किया है–

"माँ बाप ने पैदा किया था
गूँगा !
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही
निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे
कितने पड़ाव आये।"

कवयित्री की उपर्युक्त पंक्तियों से भारतीय समाज में दलित स्त्रियों की विड़बना उभकर हमारे सामने आ जाती है। हमारे पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री को कभी इंसान के रूप में देखा ही नहीं गया है। उसके साथ इस समाज व्यवस्था ने जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया है। यहाँ का परिवेश प्रायः उसके प्रतिकूल रहा है। इस परिवेश में वे कभी सम्मान से जी नहीं पायी है। उसके पीछड़ेपन के लिए यहाँ का परिवेश भी जिम्मेदार है जो यहाँ के पुरुषों द्वारा ही निर्मित है।

सुशीला टाकभौरे की समग्र कविताओं का अवलोकन करने के उपरांत निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सुशीला टाकभौरे की कविताओं में समानता का स्वर मिलता है तथा वर्णवादी समाज को खुलकर चुनौती दी है। उनकी कविता दलित समुदाय की स्त्रियों को अपनी स्थिति का अहसास कराती हैं। वही दलित स्त्री का भी संत्रास, पीड़ा, टीस से मुक्ति के लिए आह्वान करती है। दलित स्त्रियों को सामाजिक परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने के लिए निरंतर प्रेरित करती हैं। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ दलित स्त्रियों को संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं साथ ही साथ उनमें अन्याय–अत्याचार तथा शोषम के खिलाफ लड़ने के लिए शक्ति प्रदान करती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनकी कविताएँ अक्षय ऊर्जा स्रोत के रूप में काम करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1-उत्पीड़ितों का मानवधिकार, रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, शब्द संधान प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2011

2- तुमने उसे कब पहचान (काव्य–संग्रह) सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर प्रथम संस्करण 1995

3- दलित साहित्य का मूल्यांकन, डॉ. चमनलाल, राजपाल एण्ड सन्स संस्करण 2012

4- यह तुम भी जानो (काव्य–संग्रह) सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण 1994

5- स्वाति बूँद और खारे मोती (काव्य–संग्रह) सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण 2005

6- स्त्री उपेक्षिता, सीमोन द बोउआर (अनुवादक प्रभा खेतान) संस्करण 1992

39.हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित दलित विमर्श

–प्रा.युवराज राजाराम मुळये
हिंदी विभाग प्रमुख,
श्री. सिध्देश्वर महाविद्यालय, माजलगांव,

'दलित' विमर्श को समझने के लिए 'दलित' शब्द से सबसे पहले परिचित होना आवश्यक है। जादातर लोग तो दलितों द्वारा लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते है। 'दलित' शब्द का अर्थ है, दबाया गया, कुचला गया, शोषित, पीड़ित, उत्पीड़ित या जिनका हक्क छीना गया हो। दलित साहित्य वर्तमान का एक ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना संपूर्ण हिंदी साहित्य को समझना ही गलत होगा। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में 'दलित' सम्बोधन वर्ण व्यवस्था के निचले पायदान पर होने के कारण शताब्दियों से शोषण, दमन व सामाजिक असमानता के शिकार असवर्ण वर्ग के लिए किया जाता है। जब वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार न होकर जन्मानुसार हो गयी तो शूद्र समझी जाने वाली जातियों को शिक्षा व सामाजिक न्याय से वंचित होना पड़ा और कालान्तर में इनकी अस्मिता विलीन हो गयी। आधुनिक काल में भारतीय नव जागरण के साथ निम्नवर्ण की दुरावस्था की ओर सुधारकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इस सन्दर्भ में एक ओर तो अस्पृश्यता एवं वर्णगत असमानता को दूर करने हेतु राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी जैसे विभूतियों ने –समाज सुधार' के प्रयत्न किये तो दूसरी ओर ज्योतिबा फुले, नारायण गुरू तथा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जैसे दलित वर्ग की विभूतियों ने 'परिवर्तन' का स्वर बुलन्द किया। उत्तर आधुनिक दलित विमर्श ने हाशिये के वर्गों को केन्द्र में लाने के लिये 'व्यवस्था परिवर्तन' पर बल दिया और बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में दलित–विमर्श तीव्रता से उभरा। दलित–विमर्श का प्रारम्भ मराठी साहित्य से हुआ, तदुपरान्त हिन्दी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तेलगू, व तमिल में भी दलितों द्वारा रचित साहित्य के स्वर सुनायी देने लगे। हिन्दी में ओम प्रकाश वाल्मीकि, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, मोहनदास नैमिशराय, कँवल भारती, डॉ0धर्मवीर भारती जैसे अनेक दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य की विशेष स्थिति और आवश्यकताओं को रेखांकित करते हुये प्रतिपादित किया है कि दलितों के द्वारा दलितों के जीवन पर लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। किसी गैर दलित या सवर्ण द्वारा लिखे गये दलित सम्बन्धी साहित्य को वे दलित साहित्य मानने को तैयार नहीं है। उनकी दृष्टि में ऐसा साहित्य सहानुभूति या दया का साहित्य है, चेतना

का नहीं वह चाहे प्रेमचन्द्र या निराला का ही दलित साहित्य क्यों न हो? प्रेम कुमार मणि के अनुसार – ''दलितों के द्वारा दलितों के लिये लिखा जा रहा साहित्य दलित–साहित्य है।'' 1

सबसे पहले हमें यह पता करना चाहिए कि, दलित साहित्य के सन्दर्भ में आलोचकों के दो मत हैं – एक वर्ग दलितों की नियति पर रचित साहित्य को दलित साहित्य मानता है, चाहे उसका लेखक सवर्ण ही क्यों न हो? इसके विपरीत कुछ लेखक दलितों द्वारा दलितों के लिये लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य की संज्ञा देते हैं। इन साहित्यकारों का मानना है कि सवर्णों द्वारा जो यथार्थ भोगा ही नहीं गया उसकी प्रमाणिक अनुभूति को वह कैसे अभिव्यक्त कर सकता है? मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि ''दलित साहित्य दलितों का ही हो सकता है, क्योंकि उन्होंने जो नारकीय उपेक्षापूर्ण जीवन भोगा है वह कल्पना की वस्तु नहीं वह उनका भोगा हुआ यथार्थ और जख्मी लोगों का दस्तावेज है।'' 2

हालॉकि दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नही करते क्योंकि उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी भी दलित जीवन की पीड़ाओं को नहीं झेला हैं। दलित साहित्य के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये डॉ0 जयप्रकाश कर्दम कहते हैं, ''दलितों द्वारा लिखा गया ऐसा साहित्य दलित साहित्य है जो उन्हें अपना दमन और शोषण करनेवालों के विरूद्ध संघर्ष के लिये प्रेरित करें। उनके अन्दर सम्मान और स्वाभिमान से जीने की भावना पैदा करे। भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, परलोक आदि में विश्वास की बजाय वैज्ञानिक सोच का विकास करें। वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था सहित उन तमाम शोषणमूलक व्यवस्थाओं का विरोध करने की सीख दे जो असमानता, अन्याय और अमानवीयता की जनक या पोषक है।'' 3 मराठी लेखक डॉ0 खांडेकर दलित–साहित्य का मूल स्वर हिन्दू धर्म पर आधारित परम्पराओं, रूढ़ियों और विचारों के विरूद्ध मानते हुये लिखते हैं – ''दलित साहित्य केवल प्रतिकार या प्रतिशोध नहीं है या केवल नकार या निषेध नहीं हैं, बल्कि जो कुछ मंगल और शुभ है उन सबकी निर्मित के लिये यह पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है। यह विद्रोह हिन्दू धर्म पर आधारित परम्पराओं, रूढ़ियों और विचारों से है और उस समाज के विरूद्ध जिसने उन्हें पद दलित, शूद्र और अस्पृश्य नाम देकर अन्याय, अत्याचारों के द्वारा मन में छिपी बर्बरता का पूरा–पूरा परिचय दिया। यह कहना उचित होगा कि 'विद्रोह' ही दलित साहित्य का मूल धर्म और उसकी विशिष्टता है। 4

दलित साहित्य का विस्तार वह हिंदी साहित्य में आने के बाद ही हुआ है। हिन्दी साहित्य में दलित–विमर्श मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के साथ आरम्भ हुआ था। जब जातिगत संकीर्णता अपने चरम पर पहुँच गयी तो निम्नवर्ण का आक्रोश उभरा। मानव मात्र में एक ही परमतत्व के दर्शन करने वाली भारतीय संस्कृति में जातिगत कट्टरता का मूलोच्छेद करने के लिये जो सन्त आगे बढ़े वे उन निम्न जातियों से आये थे, जिन्होंने अत्याचार को सहन किया था इसलिये वे जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। नामदेव, कबीर और रविदास जैसे संतों ने दलितों की पीड़ा को अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है।

दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आजादी ें लिए लिख रहे है। हिन्दी साहित्य में दलितों के जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाने में सर्वप्रथम प्रेमचन्द का नाम आता है। दलित जीवन से जुड़ी प्रेमचन्द की कई कहानियाँ हैं। कुछ कहानियों में दलितों की समस्यायें सीधे–सीधे उठायी गयी हैं। इनमें मुख्य पात्र दलित हैं। प्रथम प्रकार की कहानियों में दलित–प्रश्न है, जबकि द्वितीय प्रकार की कहानियाँ दलित जीवन से सम्बन्धित हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में दलित पात्र व जीवन किसी–न–किसी रूप में आदि से अन्त तक आया है। दलित–प्रश्न से सम्बन्धित प्रेमचन्द की कहानियों में दो प्रकार के दलित पात्र हैं। एक वे जो ब्राह्मण वादी मान्यताओं में रचे–बसे हैं तथा दूसरे वे जो इसका प्रतिरोध करते हैं। दलितों पर केन्द्रित प्रेमचन्द की चार कहानियाँ उल्लेख्य हैं– 'कफन', 'मन्दिर', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', और 'दूध का दाम'। 'सद्गति' का दुःखी एवं 'मन्दिर' की सुखिया ब्राह्मणवादी मान्यताओं को स्वीकार कर चुके हैं। सदियों से चली आ रही शोषण मूलक मान्यताएँ इनके लिये स्वाभाविक बन गयी लगती हैं। 'सद्गति' के 'दुखी' को इन मान्यताओं में विश्वास की कैसी त्रासद सद्गति मिलती है? इस सद्गति से व्यवस्था की क्रूरता उजागर होती है। 'मंदिर' की सुखिया मंदिर में घुसने के लिये चोरी–चुपके प्रतिरोध करती है। धर्म के ठेकेदार सुखिया की पिटाई करते हैं और उसके बेटे की हत्या कर देते हैं। यह कहानी गैर दलितों की अमानवीयता, क्रूरता एवं दलितों के शोषण के दुष्टचक्र की जटिलता को अभिव्यक्त करती है। 'ठाकुर का कुआँ ' कहानी में ब्राह्मणवादी व्यवस्था में दलितों के छूआछूत के दंश का चित्रण है साथ ही दलित स्त्रियों की दशा भी चित्रित है जहाँ उन्हें शारीरिक व भावनात्मक शोषण का शिकार होना पड़ता है। गंगी सोचती है "अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर तो बारहों मास जुआँ होता है। यही साहू जी तो घी मे तेल

मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे। हाँ! मुँह से हमसे ऊँचे है। हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे हैं। कभी गांव आ जाती हूँ तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं। 5

'दूध का दाम' कहानी में प्रेमचन्द जी ने गैर दलितों की धूर्तता एवं पाखण्ड के चक्र में फँसे दलित
बालक के करूण यथार्थ का चित्रण किया है जो हर बार घोड़ा बनने से इसलिये इन्कार करता है, क्योंकि वह सवर्णों की चालाकी समझ चुका है। इस कहानी में गैर दलितों की अवसरवादिता अभिव्यक्त हुई है। जमीदार का बेटा मंगल की मां का स्तनपान करके बड़ा हुआ है, पर बड़ा होने पर वही मंगल भंगी जाति का होने के कारण
अस्पृश्य है। दूध का दाम उसे कुत्ते की भांति जूठन देकर चुकाया जाता है। प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास में दलितों के मन्दिर–प्रवेश का समर्थन किया है। वे दलितों के प्रति भेद–भाव का दोषी समाज को मानते हुए दलितों में क्रान्ति उत्पन्न करना चाहते थे। उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया कि दलित अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों। 'कर्मभूमि' में डॉ. शान्तिकुमार कहते हैं– ''क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी का बीड़ा लेकर आये हो ? तुम तन–मन से दूसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो। तुम मन्दिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है? क्या तुम सदैव इसी भाँति पतित और दलित बने रहना चाहते हो ? ''6

दलित साहित्य का प्रारंभ 1980 के बाद आत्मकथा लेखन से हूआ। कथाकार राजेंद्र यादव ने विख्यात दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित आत्मकथा 'जूठन' को कई अंशों में 'हंस' में प्रकाशित किया जिसने संपूर्ण भारतीय साहित्य में अपना स्थान बनाया। अमृतलाल नगर ने 'नाच्यों बहुत गोपाल' में सामाजिक विषमता के साथ संवाद करता एवं अस्तित्व के लिये संघर्षरत दलित मध्य वर्ग चित्रित है। उनका मानना है कि दलित (भंगी) समाज के शोषण और दमन का कारण समाज निर्मित व्यवस्था है। समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित सन्दर्भों की दृष्टि से शैलेश मटियानी का नाम उल्लेखनीय है। 'अहिंसा', 'जुलूस', 'हारा हुआ', 'संगीत भरी संध्या', 'माँ तुम आओ', 'अलाप', 'लाटी', 'भँवरे की जात', 'आँधी से आँधी तक', ' परिवर्तन', 'आक्रोश', 'भय', 'आवरण', 'दो दुखों का एक सुख', ' चुनाव', 'प्रेममुक्ति', 'चिट्ठी के चार अक्षर', 'वृत्ति', 'सतजुगिया',

'गोपुली', 'गफूरन', 'गृहस्थी', 'इब्बूमंगल', 'प्यास', 'शरण्य की ओर' आदि कहानियाँ दलित जीवन सन्दर्भों से सम्बन्धित हैं। इन कहानियों में दलित वर्ग से सम्बन्धित चरित्र मुख्यतः तीन रूपों में चित्रित हुए हैं। पहला वह जो भारतीय समाज की अमानवीयता से लाचार होकर समझौता करता दिखाई देता है। दूसरा वह जो समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो व्यक्त करता है, किन्तु उसका आक्रोश इतना दबा होता है कि अंततः टूटकर समझौता की विवशता को झेलता है। तीसरा वह जो अपनी मान मर्यादा एवं हितों के लिये समाज व्यवस्था से सीधे टकराता है।

युवा कहानीकारों में अजय नावरिया, अनिता भारती, दिलीप काठेरिया, कैलाश वानखेडे आदि का नाम लिया जाता हैं। माँ तुम आओ' कहानी में गैर दलितों की अमानवीयता और दलित वर्ग से सम्बद्ध चरित्रों को दलित होने के बोध के स्तरों से गुजरते हुए चित्रित किया गया है। इस कहानी से दलित वर्ग से सम्बद्ध 'बच्चू' बाल चरित्र और बड़ी माँ नारी चरित्र को गैर दलित चरित्र माधो काका दलित होने के त्रासद बोध के धरातल पर ले जाता हुआ चित्रित हुआ है। 'हत्यारे' कहानी में दलितों की भावनाओं को भड़काकर राजनीति करने वाले नेताओं की कुत्सित चेष्टायें अनावृत हुई हैं। इस कहानी में हरफल चन्द्र अपनी बिरादरी को क्रान्ति का आह्वान करता चित्रित हुआ है, "तो मैं आप लोगों से कह रहा था कि हम हरिजन भाइयों पर जोर जुल्म की हुकूमत चलाने के वे नादिरशाही जमाने गुजर चुके, जो हमारे बाप–दादाओं के पीठों पर अपने जालिम निशान छोड़ गये हैं। ....अब वक्त आ गया है कि हम हरिजन दुनियाँ में अपने नामो निशान छोड़ जायें।" 7

निष्कर्ष :– अतः हम कह सकते है कि इस देश में जातिवाद की समस्या भयावाह है। परंतु आज दलित साहित्य में जड़–रूढ़ जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्षरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त कर सके। जबकि प्रकृति ने किसी के साथ भेद–भाव नहीं किया तो समाज में भेदभाव क्यों ? आज दलित साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोषित वर्ग की समस्याओं को सामने लाने वाले दलित साहित्य का भविष्य उज्जवल है। इसमें दो राय नहीं हो सकती। इस संपूर्ण आलेख के सार रूप में मैं कह सकता हूॅ कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चार वर्ण थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार थी। कालान्तर में यह जन्मानुसार हो गयी और चतुर्थ वर्ग को सबसे निचले पायदान पर होने के कारण शोषण व अमानुशिक व्यवहार का शिकार

बनना पड़ा। जब व्यक्ति की पहचान उसकी शिक्षा या निपुणता से नहीं बल्कि जाति के आधार पर होने लगी तो शूद्र समझी जाने वाली जातियाँ पद दलित की जाने लगीं।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम मध्यकालीन सन्तों के काव्य में जातिगत संकीर्णता की सशक्त स्वर में भर्त्सना दिखायी देती है। नामदेव, कबीर, रैदास आदि सन्त कवि जो निम्न जातियों से आये थे, जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। उनके साहित्य में घट–घट में एक ही परमतत्व का दर्शन करने वाली भारतीय संस्कृति का जयघोष है। आधुनिक काल में साहित्यकारों ने जातिगत रूढ़ियों के मूलोच्छेद के लिये प्रतिबद्वता व्यक्त की। उत्तर आधुनिक युग में दलितों में अस्तित्व बोध की पीड़ा को लेकर प्रस्फुटित स्फुलिंग दहकता अंगारा बन जड़ व्यवस्था को दग्ध करने को मचल उठा। दलित साहित्यकारों ने आप बीती की अभिव्यक्ति की। मोहनदास नैमिशराय, सूरज पाल चौहान, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिम्बाले, जयप्रकाश कर्दम, श्योराजसिंह बेचैन, रजतरानी, सुदेश तनवीर ने साहित्य की विविध विधाओं में शोषण और अपमान की प्रतिक्रिया की दर्द भरी और रोषपूर्ण अभिव्यक्ति की। दलित पत्रिकाओं (शंबूक,युद्वरत, आम आदमी) का प्रकाशन हुआ। दलित चेतना के आधार पर हिन्दी साहित्य का पुनर्पाठ किया गया और 1914 में सरस्वती में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' को हिन्दी की प्रथम दलित रचना के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई। आज दलित साहित्यकार परम्परागत काव्यशास्त्र और सौन्दर्य बोध के स्थान पर साहित्य की नवीन कसौटी की खोज कर रहें हैं तथा अफ्रीका की अश्वेत जातियों के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं । इन साहित्यकारों ने काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को नकारा है तथा अन्याय का विरोध करने के कारण इनकी भाषा चुटीली एवं व्यंग्यात्मक है। इस साहित्य के द्वारा दलित अस्मिता को सफलता पूर्वक रेखांकित किया गया है, किन्तु यदि जातिवादी क्रोध प्रतिहिंसा एवं घृणा के रूप में सामने आती हैं, तो चिन्तनीय है। निःसंदेह जातिवाद की समस्या सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र की समस्या है। आज दलित विमर्श को संवैधानिक शक्ति प्राप्त है और दलित साहित्य में जड़ रूढ़िवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। सदियों से दलित, शोषित अपना अधिकार प्राप्त कर सकें। यदि प्रकृति अपने संसाधनों के अवदान में भेद नहीं करती तो समाज में भेदभाव क्यों? यह निष्कर्ष अंतिमता मेरे शोध आलेख से निकालना चाहता हूँ।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि :–1.प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005 2.प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005 3. वाड़्मय – दलित विशेषांक, अंक 8 जनवरी–मार्च 2006 पृष्ठ 124 4. प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005 5. प्रेमचन्द्र – मानसरोवर भाग – 1 पृष्ठ 125 6. कर्मभूमि – प्रेमचन्द्र भाग – 2 पृष्ठ 19 7. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ –3, प्रकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 168

40.पर्यावरण संवर्धन : मानवी जबाबदारी

–डॉ.जगन्नाथ धोंडीराम चव्हाण
सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, श्री. बंकटस्वामी महाविद्यालय बीड.

प्रस्तावना

वृक्षवल्ली आम्हा सोयरे वनचरे
पक्षीही सुस्वरें आळविती
येणे सुख रुचे एकांताचा वास
नाही गुणदोष अंगी येत

संत तुकाराम महाराज यांनी सुमारे साडे तीनशे वर्षांपूर्वी अशा सुंदर शब्दात निसर्गाशी नाते सांगितलेले आहे. पर्यावरण हे आपल्या निवासस्थानाचे आजूबाजूचे क्षेत्र आहे. ही अनुकूल परिस्थिती आहे ज्यात मनुष्य, प्राणी किंवा वनस्पती जगतात. यात अजैविक (भौतिक किंवा निर्जीव) आणि जैविक (जिवंत) वातावरण दोन्ही समाविष्ट आहेत. वातावरण मनुष्यासह जीवांचे जीवन नियंत्रित करते. हे वातावरण किंवा परिस्थिती ज्यामध्ये जीव राहतो ते हवा, पाणी, जमीन इत्यादी विविध घटकांनी बनलेले असतात. हे घटक जिवंत राहण्यासाठी वातावरणात सुसंवादी संतुलन निर्माण करण्यासाठी निश्चित प्रमाणात आढळतात.

अगदी लहान वयातच आपले पर्यावरण कसे वाचवायचे आणि या ग्रहाच्या पृथ्वीला सुंदर होण्यास मदत कशी करावी याबद्दल आपले शिक्षण आहे. एखाद्या सजीव प्राण्याची मानसिक स्थिती आणि शारीरिक तरतूदी तयार करण्यात पर्यावरण महत्त्वपूर्ण भूमिका बजावते. कालांतराने, ते सजीव वस्तूंना आकार देते. पर्यावरणीय समस्यांसह ग्रह पृथ्वीचा भविष्यात जास्त परिणाम होईल.म्हणूनच, पर्यावरण वाचविणे अत्यंत आवश्यक आहे, कारण; अनुकूल वातावरणाचे अस्तित्व त्याच्या हद्दीत जगण्याची व जीवनाची शक्यता निश्चित करते.

सजीवांना त्यांच्या जीवनसंघर्षासाठी आणि उत्क्रांतीमध्ये सभोवालतच्या पर्यावरणाशी जुळवून घ्यावे लागते अथवा अनुकूल असे बदल करावे लागतात. जे सजीव आपल्यात बदल घडवून आणण्यात कमी पडतात किंवा काही कारणास्तव ते स्वतःमध्ये बदल घडवू शकत नाहीत ते नष्ट होतात. जो बदल स्वीकारतो तोच येथे तग धरून राहू शकतो. पर्यावरण आणि मानव यांचे परस्पर संबंध नेहमी बदलत असतात. पर्यावरणाचे रक्षण करणे सर्वांची

जबाबदारी आहे. पर्यावरण संरक्षण प्रत्येकाचे कर्तव्य आहे. 5 जून हा जगभर पर्यावरण दिवस म्हणून साजरा होतो.

पर्यावरणाचे घटक पर्यावरणाचे दोन घटक आहेत:

जैविक घटक: यात वनस्पती, प्राणी आणि सूक्ष्मजीव यासारखे सर्व जैविक घटक किंवा सजीवांचा समावेश आहे.

अजैविक घटक: यात तापमान, प्रकाश, पाऊस, माती, खनिजे इत्यादी सारख्या सजीव घटकांचा स आहे. यात वातावरण, लिथोस्फीयर आणि हायड्रोस्फीयरचा समावेश आहे.

जैविक पर्यावरण

पर्यावरणाचे जैविक घटक म्हणजे पर्यावरणामध्ये उपस्थित सजीव प्राणी ज्यात वनस्पती, प्राणी आणि सूक्ष्मजीव (बॅक्टेरिया आणि बुरशी) समाविष्ट आहेत. या घटकांचे पर्यावरणातील त्यांच्या भूमिकांवर आधारित तीन मुख्य गटांमध्ये वर्गीकरण केले जाऊ शकते. हे खालीलप्रमाणे आहेत.

वनस्पती, एकपेशीय वनस्पती आणि जीवाणूसारखे उत्पादक सूर्यप्रकाशापासून ऊर्जा घेतात आणि कार्बन डाय ऑक्साईड आणि ऑक्सिजनला साखर आणि उर्जेमध्ये रूपांतरित करण्यासाठी वापरतात. ते फूड वेबचा आधार तयार करतात आणि पर्यावरणातील सर्वात मोठे प्राणी आहेत.

ते वातावरणातून अजैविक कार्बन आणि नायट्रोजन शोषून इकोसिस्टमच्या अजैविक घटकांशी परस्पर संबंध स्थापित करतात.

इकोसिस्टममधील शाकाहारी, मांसाहारी आणि सर्वव्यापी सारख्या ग्राहकांना इतर जीवांचे सेवन करण्यापासून त्यांची ऊर्जा मिळते.

उदाहरणार्थ, शाकाहारी लोक उत्पादक खातात, मांसाहारी इतर प्राणी खातात आणि सर्वभक्षी दोन्ही खातात. उत्पादक आणि विघटन करणाऱ्यासह, उपभोक्ता अन्न साखळी आणि अन्नांच्या जाळ्याचा एक भाग आहेत, जिथे ऊर्जा आणि पोषक द्रव्ये एका स्तरातून दुसर्या स्तरावर हस्तांतरित केली जातात.

गांडुळ आणि बुरशी जीवाणूंच्या अनेक प्रजाती कचरा सामग्री आणि मृत जीव नष्ट करतात. ते मृत जीवांमध्ये समाकलित केलेले पोषक द्रव्ये मातीमध्ये परत आणण्याचे महत्त्वपूर्ण पुनर्वापर कार्य तयार करतात जिथून वनस्पती त्यांना पुन्हा घेऊ शकतात.

अजैविक वातावरण

अजैविक वातावरणामध्ये परिसंस्थेचे घटक समाविष्ट आहेत जे पाणी, हवा, तपमान, खडक आणि माती बनविणाऱ्या खनिजांसारख्या निर्जीव घटक आहेत. अजैविक घटक प्रामुख्याने दोन प्रकारचे असतात आणि ते खालीलप्रमाणे आहेत.

हवामान घटकांमध्ये पाऊस, तापमान, प्रकाश, वारा, आर्द्रता इत्यादींचा समावेश आहे. हवामान घटक प्रकाश संश्लेषणासाठी श्वसन आणि कार्बन डाय ऑक्साईडसाठी ऑक्सिजन प्रदान करतात. हे घटक वातावरण आणि पृथ्वीच्या पृष्ठभागाच्या दरम्यान संपूर्ण जलचक्रांवर प्रक्रिया करतात.

मातीचा सामू, टोपोग्राफी खनिजे इत्यादींसह एडॅफिक घटक. पोषक, पाणी, घर आणि जीवांसाठी रचनात्मक वाढणारे माध्यम प्रदान करा. आपण श्वास घेत असलेल्या हवेपासून, आपण घेत असलेल्या पाण्यापर्यंत, आपण ज्या पर्यावरणात राहतो त्या वातावरणात पर्यावरण तयार होते. निरोगी आणि समृद्ध आयुष्य जगण्यासाठी आपले वातावरण स्वच्छ ठेवणे फार आवश्यक आहे. बायोटिक ते अॅबिओटिक पर्यंत पर्यावरणाच्या सर्व घटकांवर पर्यावरणाच्या स्थितीवर खोलवर परिणाम होतो. म्हणूनच निरोगी परिसंस्थेसाठी स्वच्छ वातावरण आवश्यक आहे यात शंका नाही.

स्वच्छ पर्यावरण आवश्यक का आहे?

निरोगी आणि समृद्ध समाज आणि संपूर्ण देशासाठी स्वच्छ आणि सुरक्षित वातावरण खूप महत्वाचे आहे. पृथ्वीवरील जीवनाच्या अस्तित्वासाठी ही मूलभूत आवश्यकता आहे. स्वच्छ वातावरण महत्वाचे आहे याची कारणे खालीलप्रमाणे आहेत.

वनस्पती, प्राणी आणि मानवांसह कोणताही सजीव दूषित वातावरणात टिकू शकत नाही. सर्व सजीव प्रजातींना जगण्यासाठी निरोगी आणि अनुकूल वातावरणाची आवश्यकता असते.

अशुद्ध वातावरणामुळे असंतुलित परिसंस्था आणि विविध प्रकारचे रोग होतात. नैसर्गिक संसाधनांचा नाश झाल्यामुळे जीवनाचे अस्तित्व खूप कठीण होते.

पर्यावरणीय हानीची कारणे

- मानवी लोकसंख्येची वेगवान वाढ ही पर्यावरणाच्या ऱ्हास होण्याचे एक प्रमुख कारण आहे.

- जमीन, अन्न, पाणी, हवा, जीवाश्म इंधन आणि खनिजे यासारख्या नैसर्गिक स्त्रोतांचा वापर.

- जंगलतोड हा आणखी एक प्रमुख घटक आहे जो संपूर्ण पर्यावरण पर्यावरणला अस्वास्थ्यकर बनवितो.

- वायू प्रदूषण, जल प्रदूषण आणि माती प्रदूषण यासारख्या वातावरणाचे प्रदूषण संपूर्ण परिसंस्थेवर विपरीत परिणाम करते.

- ओझोन कमी होणे, ग्लोबल वार्मिंग, ग्रीनहाऊस इफेक्ट, हवामान व हवामान परिस्थितीत बदल, हिमनग वितळणे इत्यादी समस्या. पर्यावरणाच्या नुकसानीमुळे उद्‌भवणारे काही प्रश्न आहेत.

आपले पर्यावरण स्वच्छ आणि निरोगी ठेवण्यासाठी उपाय

- पर्यावरणाचा समतोल साधण्यासाठी आणि ग्रीनहाऊस इफेक्टवर नियंत्रण ठेवण्यासाठी अधिकाधिक झाडे लावावीत.

- 3 आर चे तत्व वापरा; पुन्हा वापरा, कमी वापरा आणि पुनर्निर्माण करा.

- आमची स्थलाकृति स्वच्छ ठेवण्यासाठी, प्लास्टिक पिशव्याचा वापर थांबविणे आवश्यक आहे.

- लोकसंख्येच्या वाढीवर नियंत्रण ठेवा.

पर्यावरण संवर्धनाचे फायदे

- प्रारंभ करणार्यांसाठी, जागतिक हवामान सामान्य राहील. प्रदूषण आणि पर्यावरणीय विध्वंसमुळे ग्लोबल वार्मिंगला हातभार लागला आहे. परिणामी, बरेच मानव आणि प्राणी मरण पावले आहेत. परिणामी, पर्यावरण संवर्धन ग्लोबल वार्मिंग रोखण्यास मदत करेल.

- लोकांचे आरोग्य सुधारेल. प्रदूषण आणि जंगलतोड परिणामी बर्याच लोकांचे आरोग्य बिघडत चालले आहे. पर्यावरण संवर्धन लोकांच्या आरोग्यास नक्कीच मदत करेल. सर्वात महत्त्वाचे म्हणजे, पर्यावरणाचे रक्षण केल्यास असंख्य रोगांचे प्रमाण कमी होईल.

- जर पर्यावरणाची सुटका केली गेली तर प्राण्यांचे नक्कीच रक्षण केले जाईल. पर्यावरणीय संरक्षणामुळे बर् याच प्रजाती नामशेष होणार नाहीत. अनेक संकटात सापडलेल्या प्राण्यांची लोकसंख्याही तशीच वाढेल.

- हिमनग वितळल्यामुळे पाण्याची पातळी वाढेल. पर्यावरणाच्या नुकसानीमुळे भूगर्भातील पाण्याची पातळी मोठ्या प्रमाणात कमी झाली आहे. याव्यतिरिक्त, संपूर्ण जगात शुद्ध पिण्याचे पाणी कमी प्रमाणात पुरवठा होत आहे. परिणामी, मोठ्या संख्येने लोक आजारी आणि मरण पावले. पर्यावरणाचे संवर्धन करून असे प्रश्न टाळता येऊ शकतात.

पर्यावरण—मैत्रीपूर्ण रणनीतीप्रथम आणि महत्त्वाचे म्हणजे वृक्ष लागवडीवर जोर धरला पाहिजे. एक झाड म्हणजे सर्वात महत्त्वाचे म्हणजे ऑक्सिजनचे स्रोत. बांधकामाच्या परिणामी, अनेक झाडे तोडण्यात आली आहेत. परिणामी वातावरणात ऑक्सिजनचे प्रमाण नक्कीच कमी होईल. लागवड केलेल्या झाडांची संख्या जितकी जास्त असेल तितकी ऑक्सिजन तयार होते. परिणामी, लागवड केलेल्या झाडांची संख्या वाढविणे लोकांचे जीवनमान सुधारेल. लोकांनी वन संवर्धनाकडेही लक्ष दिले पाहिजे. जंगले पर्यावरणासाठी अत्यंत महत्त्वाची आहेत. दुसरीकडे, जंगलतोड जगभरातील जंगलांचे आकार कमी करते. शासकीय नेतृत्त्वात वन संवर्धन उपक्रम आवश्यक आहेत. सरकारने वन विनाश हा गुन्हेगारी गुन्हा केला पाहिजे. पर्यावरण संरक्षणाचे आणखी एक महत्त्वाचे तंत्र म्हणजे मातीचे संरक्षण. हे साध्य करण्यासाठी भूस्खलन, पूर आणि मातीची धूप या सर्वांवर नियंत्रण ठेवले पाहिजे. मातीचे संवर्धन करण्यासाठी वनीकरण आणि वृक्ष लागवड करावी. टेरेस शेती आणि नैसर्गिक खतांचा वापर हे इतर दोन पर्याय आहेत.

निष्कर्ष निरोगी आणि संतुलित परिसंस्था राखण्यासाठी मानवांना पर्यावरणाशी जबाबदार व सौहार्दपूर्ण असणे आवश्यक आहे. आम्ही अन्न साखळी किंवा पर्यावरणाच्या घटकांद्वारे तयार केलेल्या फूड वेबवर अवलंबून असतो. म्हणून आपल्या सभोवतालची काळजी घेणे ही या ग्रहावरील जीवनाच्या अस्तित्वासाठी सर्वात जास्त प्राधान्य आहे.

म्हणूनच, आपण पाहू शकतो की पर्यावरण आपल्या कल्पनेपेक्षा जीवनाचे आकार देण्यास अधिक महत्त्वाचे घटक बजावते. हे केवळ शारीरिक कल्याणसाठीच जबाबदार नाही तर आपल्या घटकांच्या मानसिक घटकांवरही परिणाम करू शकते. निरोगी आणि स्वच्छ वातावरणाचा प्रचार करणे ही या पृथ्वीवरील कोणत्याही व्यक्तीची मूलभूत गरज आहे. निरोगी वातावरण जगण्यामुळे आपल्या येणा्या पिढीला निरोगी आयुष्य जगण्यास मदत होते.

थोडक्यात सांगायचे तर, पर्यावरण हा या जगातील एक अमूल्य खजिना आहे. आपले वातावरण गंभीर संकटात आहे. पर्यावरण वाचवण्याची गरज तातडीची आहे. यात काही शंका नाही की ही सध्या मानवतेची सर्वात गंभीर चिंता आहे. या संदर्भात कोणताही विलंब हानिकारक ठरू शकतो.

संदर्भ ग्रंथसूची

1. "महाराष्ट्राची काळजी असणाऱ्या प्रत्येकाला", दुष्काळ हटवू : माणुस जगवू या पदयात्रेचा अहवाल, एप्रिल 2007.
2. स्मिता देवधर, "पर्यावरण आणि मानव".
3. प्रा शैलजा सांगळे "पर्यावरण आणि समाज".
4. निरंजन घाटे "पर्यावरण गाथा". निरंजन घाटे
5. भास्कर देशमुख "पर्यावरण परिस्थिती आणि प्रयत्न".
6. डॉ. रवींद्र भावसार, "पर्यावरण प्रदूषण".
7. पंडित वासुदेवशास्त्री देशपांडे, "पर्यावरण प्रहरी".
8. पद्मा साठे, "पर्यावरण : रोजचा विचार".
9 जॉन्सन बोर्जेस, "डायमंड पर्यावरणशास्त्र शब्दकोश ".
10. डॉ. रविकांत पागनीस, "पर्यावरणाची कथा आणि व्यथा".
11. अतुल देऊळगावकर, "बखर पर्यावरणाची आणि विवेकी पर्यावरणवाद्याची".
12. दिलीप कुलकर्णी, "बदलू या जीवनशैली".

41.हिन्दी ग़ज़ल में दलित चेतना

–डॉ.जियाउर रहमान जाफरी
असिस्टेंट प्रोफेसर स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज गया, बिहार

हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा भक्ति काल में रैदास की कविताओं से शुरू हुई, लेकिन उसे वास्तविक पहचान आधुनिक काल में दलित लेखकों की आत्मकथा से मिली।हिंदी की पहली दलित कथा मोहनदास नैमिशराय की अपने–अपने पिंजरे(1995) मानी जाती ह।उसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि का जूठन(1997) प्रकाशित होता ह।यह दोनों दलित साहित्य के बेहद महत्वपूर्ण आत्मकथा रह।इसमें दलितों का पूरा जीवन दिखाया गया है कि वह किस तरह की जिंदगी जीने को विवश हैं।इसी क्रम में कौशल्या बैसंती का 'दोहरा अभिशाप' (1999) सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत'(2002) धर्मवीर का 'मेरी पत्नी और भेड़िया'(2009) तथा तुलसीराम का 'मुर्दहिया'(2010) आदि का नाम भी लिया जा सकता ह।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो लंबा संघर्ष करना पड़ा जूठन इसे गंभीरता से उठाती ह।मुर्दहिया पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए के लिए संघर्ष एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति ह।दोहरा अभिशाप इस बात को मजबूती से रखती है कि स्त्री अगर दलित भी हो तो उसे दोहरे अभिशाप से गुजारना पड़ता ह।एक उसका स्त्री होना और दूसरा उसका दलित होना।

आधुनिक हिंदी कविता में दलित दस्तक हीरा डोम की काव्य रचना अछूत की शिकायत से मिलती ह।जिसमें कवि भगवान द्वारा भी भेदभाव किए जाने का वर्णन करता है– 'हमनी के दुख भगवनाओं न देखे' कवि प्रश्न करता है एक ही जिस्म हमारा भी है और ब्राह्मण का भी।फिर हम दलितों को वो अधिकार क्यों नहीं ह।सितंबर 1914 की सरस्वती पत्रिका में छपी यह पहली और आखिरी दलित कविता है जिसे भोजपुरी भाषा में लिखा गया था।दलित हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर ह।उसके पास संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार भी नहीं ह।दलित रचनाओं में जहाँ सामाजिक भेदभाव जनित पीड़ा है, वहीं दलित कविताओं में शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के स्वर भी हैं।अन्य कविताओं की तरह दलित कविता मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि इसमें अपनी पीड़ा और अपना आक्रोश ह।दलित कवि डॉ.एन. सिंह ने जिसे 'बे जुबान आदमी की आवाज कहा हैश्स ओमप्रकाश वाल्मीकि, कमल भारती, डॉक्टर युवराज सिंह बेचैन मलखान सिंह, निर्मला पुतुल, जयप्रकाश कर्दम आदि वह दलित कवि है, जिनकी कविताओं में दलित समाज की

वेदना, व्यथा, आक्रोश, आकांक्षा और छटपटाहट साफ दिखाई देती ह।उदाहरण के लिए जयप्रकाश कर्दम की कविता मेरे अधिकार कहाँ है कि कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं :–

तुम कहते हममें यह नहीं
तुम कहते हम सब भाई हैं
फिर क्यों ऊंचे तुम मैं नीचा क्यों
जाति वर्ण की खाई है
तुम चाहो रामराज आए
तुम श्रेष्ठ
शूद्र मैं बना रहा हूं
तुमको सारे अधिकार रहें
मैं वर्जनाओं से लड़ा रहूं ।

ग़ज़ल जो एक सामंतवादी विधा थी, हिंदी में आकर सर्वहारा वर्ग से जुड़ गई।फारसी, अरबी, उर्दू की ज़्यादातर ग़ज़लें प्रेम प्रधान थीं।यहां तक कि हिंदी में भी निराला, त्रिलोचन, रंग और शमशेर ऐसी ही ग़जलें लिखते रहे, लेकिन दुष्यंत ने ग़ज़ल का लहजा बदला जो गजल श्रृंगार की थी वह गजल घर परिवार की बन गई।उसमें अपनी तकलीफों का बयान होने लगा जो ग़ज़ल राज दरबारों में रह कर आई थी मनुष्य की जरूरतों से जुड़ गई उसमें सत्ता और सामंत के प्रति विरोध दिखाई देने लगा।हिंदी का दलित वर्ग भी इसी आशा असमानता का शिकार रहा, भेदभाव छुआछूत और पाकी नापाकी के बने बनाए हुए मानदंडों ने उन्हें हमेशा हाशिए पर रखा वह जिस धर्म के थे उस धर्म के ठेकेदारों ने भी उन्हें खारिज किया।

हिंदी कविता से हिंदी ग़ज़ल की स्थिति इस अर्थ में भी थोड़ी सी अलग है कि हिंदी दलित कविता में दलित कवियों ने ही प्रमुखता से अपने जज्बात रखें।इसलिए उसमें आत्म पीड़ा भी दिखाई पड़ी।हिंदी गजल में एक दो को छोड़ दें तो मुश्किल से ही कोई दलित गजलकार मिलेंगे, जो है वह उतने चर्चित नहीं ह।ऐसे भी हिंदी ग़ज़ल की बीमारी दस बीस ग़ज़लकरों को लेकर ही चलने की ह।उसमें भी गुटबाजी मौजूद है।जहाँ तक मुझे पता है हिंदी गजल में दलित और दलित वर्ग की स्थितियों को तलाश करता हुआ यह हिंदी का पहला रिसर्च आर्टिकल है।

हिंदी ग़ज़ल में कई ऐसे शेयर हैं जिसमें दलित के साहस, संघर्ष, दुख दर्द भेदभाव और शोषण उत्पीड़न का वर्णन किया गया ह।हिंदी गजल का अध्ययन करने पर पता चलता है

कि दलित चेतना को लेकर शायरी करने वाले अदम गोंडवी हिंदी के पहले गजलकार हैं वह स्वयं भी एक प्रकार से इसकी घोषणा करते हुए एक कविता लिखते हैं :–

आइए महसूस करिए जिंदगी के ताप को
मैं चमारों की गली तक ले चलूंगा आपको
जिस गली में भुखमरी की यातना से डूब कर
मर गई पुलिया बिचारी एक कुएं में डूब कर

हिंदी ग़ज़ल में अदम गोंडवी वैसे गजलगो हैं जिन्होंने कभी चापलूसी नहीं की बल्कि तल्ख तेवर अख्तियार किया।वह वास्तव में इस सदी के महान गजलकार और जन कवि हैं।चर्चित कवि ईश मिश्र मानते हैं कि अदम अन्य दलित दबे कुचले वर्गों के साथ कृषक वर्ग के भी बुद्धिजीवी हैं।वहीं मधु खराटे ने माना है आदम ने सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमता, गरीबी नैतिक पतन, दलित चेतना आदि का चित्रण भी अपनी गजलों में खूब किया ह।
अदम की दलित विषयक खेलों में भी यह प्रतिरोध दिखाई देता है :–

तुम्हारी मेज चांदी की तुम्हारा जाम सोने का
यहां जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है

अदम हिंदी के पहले गजलकार हैं जिन्होंने एक– दो शेर नहीं बल्कि दलितों के हालात पर पूरी की पूरी मुसलसल ग़ज़लें कही है देखें एक– दो गजल के कुछ शेर :–

अंत्यज कोरी पासी हैं हम
क्यों कर भारतवासी हैं हम
अपने को क्यों वेद में खोजें
क्या दर्पण विश्वासी हैं हम
छाया भी छूना गर्हित है
ऐसे सत्यानाशी हैं हम
धर्म के ठेकेदार बताएं
किस ग्रह के आधिवासी हैं हम

ऐसी ही उनकी दूसरी एक ग़ज़ल है–

वेद में जिन का हवाला हाशिये पर भी नहीं
वे अभागे आस्था विश्वास लेकर क्या करें
लोकरंजन हो जहां शंबूक वध की आड़ में
उस व्यवस्था का घृणित इतिहास लेकर क्या करें

कितना प्रतिगामी रहा भोगे हुए छण का यथार्थ
शसदी, कुंठा, घुटन, संत्रास लेकर क्या करें

इस तरह की ग़ज़लें लिखना इतना आसान नहीं है इसके लिए अदम को गांव के ठाकुरों का विरोध सहनाा पड़ा।उन्हें ठाकुर जाति पर कलंक की पदवी दी गई अदम के ऐसे शेर भरे पड़े हैं।हिंदी ग़ज़ल परंपरा में अदम को छोड़कर दलित विषय को लेकर बाजाब्ता शायरी करने वाले कोई नहीं है, लेकिन हिंदी के कई महत्वपूर्ण गजलकार हैं जिन्होंने अपनी शायरी में पूरी मजबूती के साथ दलितों की दशा और दिशा का चित्रण किया है, जिसमें अनिरुद्ध सिन्हा, रामकुमार कृषक, विनय मिश्र, नूर मोहम्मद नूर, कमलेश भट्ट कमल, रामचरण राग, और नचिकेता आदि के नाम लिए जा सकते हैं।इनकी गजलें समाज के सबसे निचले और पिछड़े वर्ग तक पहुंची ह।जिसने न मात्र दलित साहित्य को बल्कि गजल साहित्य को भी समृद्ध किया ह। असल में दलित शब्द को समझे बिना दलित चेतना को नहीं समझा जा सकता।दलित समाज का वह तबका है जो आर्थिक दृष्टि से वंचित, शोषित, उत्पीड़ित, दमित और समाज में समझे जाने वाले नीचे कुल का ह।अपमान, बेबसी, उपेक्षा का दंश झेलता हुआ यह बढ़ा हुआ ह।इनका आशियाना वह मलिन बस्ती है जहां से शहर भर की गंदगी गुजरती ह।दलित को छूने मात्र से कोई नापाक हो जाता है, और ऐसी मानसिकता उसे हाशिए पर ढकेल देती ह।हिंदू वर्ण व्यवस्था में चारों जातियों में दलित की गिनती नहीं होती।इसके लिए अछूत, अंत्याजा, पंचम वर्ण आदि शब्द कर लिए गए हैं।इनकी परछाई से ही समाज नष्ट हो जाता ह।इनके मरने पर देवता फूलों की बारिश करते हैं।यह ठाकुर के कुएं में पानी नहीं पी सकते हैं।दलित के लिए यह सारे हिदायत और बंधन हैं।दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम मानते हैं कि प्रत्येक दलित ने अपने जीवन में कभी ना कभी किसी न किसी रूप में अन्याय, अपमान और उपेक्षा का दंश झेला ह।जातिगत उपेक्षा भेदभाव अपमान हेय समझने की मानसिकता अपने ही बीच के एक आदमी को हिंदी गजल स्वीकार नहीं करती।शायर मानता है कि भेदभाव कभी ईश्वर नहीं सिखाता।यही प्रश्न रविदास और कबीर भी करते हैं, और यही सवाल हिंदी का ग़ज़लगो भी करता ह।जब सब कुछ एक हैं तो उस तो उसे निम्न जाति का क्यों समझा जाए :–

जातों –पातों का क्या करें कोईऐसी बातों का क्या करें कोई
यहां पर सब बराबर हैं यह दावा करने वाला भी
उसे ऊपर उठाता है मुझे नीचे गिराता है – बल्ली सिंह चीमा
क्यों महाजन की आंख है हम पर

हम कोई सूद की रकम तो नहीं – बालस्वरूप राही
पूरे ढांचे को बदलने की जरूरत होगी
अब ये हालात नहीं यूं ही संभालने वाले– लक्ष्मी शंकर बाजपेई
यह कहते आए हैं दाई से लेके साईं तक
कि कोई जन्म से छोटा बड़ा नहीं होता – विजय कुमार स्वर्णकार

ऐसा नहीं है कि हिंदी गजल में सिर्फ दलित की पीड़ा ही है बल्कि कई शेर ऐसे भी हैं इसमें दलित वर्ग के बुद्धि, ताकत, संघर्ष का माद्दा और राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना भी दिखाई गई ह।कुछ शेर इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं :–

देश का है हाथ वह भी यह समझ
अब दलित भी है नहीं कम देख ले– मांगन मिश्र मार्तंड
अपने हक के लिए लड़ाई सीधे लड़ना है
लौट ना आए फिर से वही दलालों वाले दि– किशन तिवारी
यह बात कोख से तय कैसे हो गई आखिर
के मेरे छूने से गंगा को पाप लगता है– विजय कुमार स्वर्णकार
उंगली जुबान हाथ नज़र इस्तेमाल कर
बेखौफ हो के वक्त से सीधे सवाल कर– माधव कौशिक
सदियों तक गम मन ही मन में पाले हैं
पर अब हम आवाज उठाने वाले हैं – केपी अनमोल

गजल इशारों में बात करती है लेकिन स्थितियाँ हर वक्त इशारों में बात करने वाली नहीं होती।हिंदी गजल ने शुरू से अपना तल्ख तेवर अख्तियार किया हैं।हिंदी ग़ज़ल के कई ऐसे शेर हैं जिसमें बिना किसी छुपाव के सीधे– सीधे सवाल पूछा गया ह।कुछ शेर मुलाहिजा हो :–हवा मिट्टी या पानी पर सभी का हक बराबर था
बिगड़ कैसे गया पर्यावरण फिर लोकशाही का– दिलीप दर्श
हिकारत इस कदर अच्छा नहीं है
दलित भी आदमी होते हैं साहब– तनवीर साकित
आपके ढंग में चौधराहट हैं
इस तरह मशवरे नहीं होते– महेश कटारे
आज भी तो है वही सामंतशाही मध्ययुग
ले गए औरत उठाकर रोकता कोई नहीं – राम मेश्राम

देख भगवे लिबास का जादू
सब समझते हैं पारसा तुमको – हस्तीमल हस्ती
हमारी मुश्किलें मानो हमारे गम को तुम समझो
कभी तो इस तरह भी हो मुकम्मल हमको तुम समझो – कमलेश भट्ट कमल

कहना न होगा कि हिंदी ग़ज़ल में दलित के कई रूप सामने आते हैं. दलित समाज में सबसे निचले पायदान पर हैं, लेकिन यह भी सच है कि अब दलितों की स्थितियां पहले से बेहतर हुई हैं।वोट की राजनीति ही सही उनके वजूद को समझा जाने लगा है गजल में कई ऐसे शेर मिलेंगे जिसमें यह बदला हुआ मंज़र दिखाई देता है :–

मिले हैं टिकट जबसे भूमाफियों को दलितों की बस्ती बसाने लगे हैं– लवलेश दत्त
टिकी है आंख गुब्बारे पे उसकी करेगा कुछ नया मतलू का बेटा– अनिरुद्ध सिन्हा
गर नहीं सब का तो मैं यह पूछता हूं आपसे यह जमीं किसके लिए है आसमां किसके लिए– माधव कौशिक
दलित की बस्तियां होकर कभी गुजरो मिलेगी हर जगह खुशबू मोहब्बत की– विकास

भाषिक कला की दृष्टि से दलित रचनाएं इंकार की भाषा ह।इसकी भाषा, साहित्य के मानदंडों से थोड़ी अलग ह।इसमें गाली गलौज है, इसके प्रतीक भी जो इस्तेमाल किए गए हैं वह भी वीभत्स और घिनौने हैं।इसका अपना कारण भी है कि दलित साहित्य में उसी परिवेश की बोलियों को जगह दी गई है, जिसमें दलित वर्ग जीते आए हैं।अक्सर दलित पर चर्चा करते हुए यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि गैर दलित साहित्यकारों की रचना दलित विमर्श में शामिल की जाए या नहीं।एक बड़े वर्ग का तर्क है कि गैर दलित ने दलितों पर सिर्फ लिखा है भोगा नहीं ह।उनकी बात मान लेने से ठाकुर का कुआं लिखने वाले प्रेमचंद से चतुरी चमार लिखने वाले निराला तक दलित साहित्य से खारिज कर दिए जाएंग।

तुलसीराम का अलग ही मत है वह पूरी तरह से ब्राह्मणवाद के खिलाफ खड़े हैं।दलित के बड़े चिंतक तुलसीराम की दृष्टि में दलित को बंधनों से अलग अपना रास्ता बनाना होगा।वह समयांतर पत्रिका के एक आलेख में लिखते हैं कि ब्रह्मणवादी जो व्यवस्था है उसको मानने वाले तो गैर ब्राह्मण जाति हैं।जिसमें दलित भी शामिल हैं।दलित भी पूजा उसी देवता का करता है जिस देवता को ब्राह्मण पूजता है, वही कर्मकांड जो ब्राह्मण करता है वही दलित भी करता ह।तो आप उसके खत्म होने के बात कैसे कर सकते हैं।आज के दौर में दलितों को अधार्मिक हो जाना चाहिए ।

यह ठीक है कि दलित आज भी संघर्ष कर रहे हैं अपने स्वाभिमान की लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं लेकिन यह भी सच है कि आज दलित जातियाँ इसमें ब्राह्मण भी शामिल है, का एक बड़ा वर्ग दलितों के साथ खड़ा है उनकी रचनाएँ दलित विमर्श पर आ रही ह।इसलिए दलित साहित्य से उनकी रचनाओं को खारिज करना या सीधे सीधे आरोप मढ़ देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।आज दलित के लिए पद दलित शब्द का भी इस्तेमाल हो रहा है यह अलग प्रश्न है कि पददलित सिर्फ दलित वर्ग हैं या अन्य ऊँचे समझे माने जाने वाले वर्ग भी।यही प्रश्न रैदास भी पूछते हैं 'जन्मजात मत पूछिए का जात अरु पात' और ग़ज़लकार दीप नारायण भी :कौन सी बात पूछते हो तुमक्यों मेरी जात पूछते हो तुम– दीप नारायण

शायर यह मानकर चलता है कि दलित को लंबे दिनों तक उनके अधिकार से वंचित रखा गया स्लम बस्तियों में रहने वाला यह बड़ा वर्ग आज भी शुद्ध हवा, शुद्ध पानी, और शुद्ध भोजन की तलाश में है।उसकी जरूरतों में शिक्षा भी है और सम्मान भी वह सिर्फ वोट के लिए नहीं है अपनी जिंदगी सुधारने के लिए भी बने हैं।रामचरण राग ने इस पर एक मुकम्मल ग़ज़ल लिखी है :–

दलित की चेतना को वोट का अधिकार है केवल
किताबों के अलावा तो दलित लाचार है केवल
युगो से गंदगी का बोझ हम सिर पर उठाते हैं
हमारी इस जिंदगी का बस यही आधार है केवल
हमारे नाम पर होती सियासत की हकीकत है
यहां बस भाषणों में ही दलित उद्धार है केवल
हमें शिक्षा सही लेकर नए प्रतिमान गढ़ने हैं
बिना शिक्षा हमारी जिंदगी बेकार है केवल
भला अंबेडकर का हो दिखाया पथ नया हमको
नहीं तो सांस जीवन पर रही बस भार है केवल– राम चरण राग

ऐसे ही कुछ अन्य शेर भी देखने योग्य हैं :–

कुचला गया है कौन यहां और कितनी बार
गिनती में एक पूरी सदी ही मिसाल है–विनय मिश्र
वे ही पूजित वो ही चर्चित ऐसा वैसा मैं ही क्यों हूं
पांचों उंगली उनकी घी में भूखा प्यासा मैं ही क्यों हूं– विनय मिश्र

उनकी आंखों के सपने को सजा कर देखोहां यह दलित बस्ती है जरा नजर उठा कर देखो– ए. आर. आज़ाद
धंधा ही राजनीति है झंडा उठाइए जय भीम कह के ताज पे कब्जा जमाइये – राम मेश्राम
मेरा तो घर भी जूठा कमरा जूठा आंगन जूठा
मेरे घर आई तो बोलो कहां रहेगी गंगा जी– ज्ञानप्रकाश विवेगगनचुंबी इमारत उठ रही है
चीसों झुग्गियों की जान लेकर – जहीर कुरैशी
पानी तक वो बांट ले गए
जिनसे थे संबंध लहू के – उर्मिलेश
जब हुई नीलाम कोठे पर किसी की आरजू
फिर अहिल्या का सरापा जिस्म पत्थर हो गया – अदम गोंडवी
हुई बरसात तो झुग्गी ने सोचाअचानक अपने छप्पर की दिशा में – जहीर कुरैशी

आलोचक ज्ञानप्रकाश विवेक मानते हैं गजल में कविता से कहीं अधिक चुनौतियाँ हैं।असल में गजल समझ आने वाली विधा ह।यह ज्यादा प्रतीकों, मिथकों और व्यंजनों में विश्वास नहीं करती।इसलिए पाठक जान जाता है कि शायर क्या कहने वाला ह।ग़ज़ल ने अपनी करवटें ली ह।कभी समय से कटकर नहीं रही।गजल ने कभी बादशाहों की बात की जमींदारों की बात की स्त्री पुरुष और बच्चों की बात की, पर आज यही गजल दलितों, वंचितों, गरीबों और हाशिए के लोगों की बात कर रही ह।यह वह प्रेमिका नहीं है जिसे प्रेम में ही दिल लगता है, या आंख, नाक, और कान खोल कर चलने वाली प्रेयसी ह।गजल में जहां बादशाहों का गुणगान होता है, आज वहां दलितों और वंचितों की बातें भी ह।यह वह विधा है जो हालात के मुताबिक कभी रुख नहीं बदलती वो उसके साथ शामिल हो जाती ह।कुछ शेर उल्लेखनीय हैं:–

शुदा के वास्ते इस पर ना डालिए कीचड़ बची हुई है यही शर्ट आखरी मेरी– ज्ञानप्रकाश विवेक
झूठा बता के बाज को बीवी को फाहिशा हमने दलित विमर्श को अभिनव उछाल दी– राम मेश्राम
डेढ़ अरब की आबादी में किसको तेरी फ़िक्र पड़ी
जीता है तो जी ले यूं ही वरना तू भी जा कर मर– कमलेश भट्ट कमल
कहां से और आएगी अकीदत की वह सच्चाई जो झूठे बेर वाली सिरफरी शबरी से आती है– उर्मिलेश

बूढ़ा बरगद जानती है किस तरह से खो गईरमसुधी की झोपड़ी सरपंच की चौपाल में

आज का समाज किसी की बात को यूं ही स्वीकार नहीं कर लेता, बल्कि उसमें विरोध करने और अपने हक के लिए लड़ने की ताकत है :–याचकों के वेश में
हम जिए इस देश में
तुगलकी फरमान था
आपके आदेश में– अश्वघोष
ठंडा मत हो जाने दो
अपना रक्त तपाते रहना– चंद्रसेन विराट

अछूतानंद जिन्होंने आदि हिंदू धर्म नाम से एक संस्था चलाई और इस नतीजे पर पहुंचे कि दलित ही वास्तव में प्राचीन हिंदू हैं।उन्होंने एक कविता लिखी थी 'दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे जमीं के नीचे गरे रहेंगे' – हिंदी गजल इस प्रश्न का उत्तर तलाशती ह।अनिरुद्ध सिन्हा का एक प्रसिद्ध शेर है –
दुनिया भर का बोझ उठाना सीख लिया
पास्ता कलम किताब उठाने के बदले
मैंने जूठा प्लेट उठाना सीख लिया– अनिरुद्ध सिन्हा

इस संदर्भ में कुछ और शेर का भी अपना मूल्य है :–
नदियों के गंदे पानी को घर में निखार कर
चूल्हा जला रही है वह पत्ते बुहार कर– डॉ भावना
दलितों की इसी बस्ती से तो मैं भी गुजरता हूं
कभी आते हुए मुंह पर नहीं रुमाल रक्खा है– डॉ.जियाउर रहमान जाफरी
मेरी ग़ज़लों में लैला है ना कोई हीर मौलाना
मेरे अशआर में है आदमी की पीर मौलाना– राजेंद्र तिवारी
इस हिकारत की नजर ने जो मुझे तोड़ दियासोचा हम जैसों ने यह उम्र गुजारी कैसे– विजय कुमार स्वर्णकार
या दलित जाने या जाने इक नदी
शहर भर की गंदगी धोने का दुख
आपको हासिल रही ऊंचाइयां
आप क्या जानें दलित होने का दुख –ए. एफ नज़र
हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत

तुमने बासी रोटियां नाहक उठाकर फेक दी –दुष्यंत कुमार
हमारा खून तुम्हारी शराब क्या मतलब
गरीब जिस्म अभी तक कबाब क्या मतलब– नूर मोहम्मद नूर
अगले कल के लिए जोड़ना भी नहीं
रोज ही माँगना रोज खाना भी है– जहीर कुरैशी
सर जो मुश्किल है तो फिर पैर ही काटे जाएं
तय हुआ है कि किसी से कोई ऊंचा न रहे– महेश अश्क

दलित लेखक मनोज सोनकर का मानना है कि दलित कविता का मूल मंत्र है हमें आदमी चाहिए स श्यौराज सिंह को विश्वास है कि वह वक्त जरूर आएगा :–हम सुबह के वास्ते आए हैंहम सुबह जरूर लेकर जाएंगे दलित चिंतक कंवल भारती एक व्यक्ति की हत्या को पूरी समष्टि की हत्या स्वीकारते हैं–शंबूक तुम्हारी हत्यादलित चेतना की हत्या थीस्वतंत्रता समानता और न्यायबोध की हत्या थी हिंदी ग़ज़ल हद उस विभाजन के खिलाफ है जो मनुष्यता के रास्ते में खड़ी है।हिंदी का शायर मानता है कि जब तक आखिरी पायदान पर बैठे व्यक्ति तक न्याय नहीं पहुँचता कुछ भी न्याय संगत नहीं हो सकता। कुछ शेर काबिले गौर हैं :–हम भी स्वाधीनता मनाते हैं पर दिया पेट का जलाते हैं– भवानी शंकर

दर्द, बेचैनियां, घुटन, आंसूये जहां मुझको और क्या देगी– गिरिराज शरण अग्रवाल
आदमी होगा मर गया गंगू
फर्ज पूरा तो कर गया गंगू– रामकुमार कृषक
राहु को सबने पासवां यूं ही न कह दिया
दुनिया में उसका कोई भी सानी न बन सका– आर. पी घायल
वह दर्द वह बदहाली के मंजर नहीं बदले
बस्ती में अंधेरों से भरे घर नहीं बदले– लक्ष्मी शंकर बाजपेई
रहना पड़ा जो सांप के जंगल में हाशमी
हमने भी इस शरीर को चंदन बना दिया– फजलुर रहमान हाशमी
बुझा देते हैं जाकर झोपड़ी में वह चिरागों को
जमीदारों का यह रूतवा हवाओं से कहां कम है– अनिरुद्ध सिन्हा
पूछिए उस अभागन से उसका पता
जिंदगी को जिसे झुर्रियां खा गई– अनिरुद्ध सिन्हा

तुम्हारे पांव के नीचे कोई ज़मीन नहीं
कमाल यह के फिर भी तुम्हें यकीन नहीं– दुष्यंत कुमार

हिंदी गजल के कई शेर ऐसे भी हैं जिसमें शबरी और शंबूक को प्रतीक बनाकर अपनी बात कही गई है :–

थोड़ा सच्चा थोड़ा झूठा होता है
वर्जित फल का स्वाद अनूठा होता है
शंबूकों को प्राण गँवाने पड़ते हैं
एकलव्य का दान अंगूठा होता है– राहुल शर्मा

दलित और वंचित वर्ग पर कई तरह के सामाजिक बंदिश लगाए गए।उन्हें मंदिर जाने से रोका गया शादियों में वह घोड़े पर नहीं जा सकते थ।अथवा आसन ऊँचा नहीं कर सकते थ।उनकी स्त्रियाँ पर्दा नहीं कर सकती थी।उन्हें अच्छे नाम से पुकारा नहीं जाता था।उच्च जातियाँ उनकी इज्जत आबरू ले ले तो वह अपराध नहीं था।हिंदी गजल ऐसे मसलों को भी उठाती है कुछ शेर देखें :–

उन्हें तो चाहिए ज्यादा मगर थोड़ी नहीं मिलते
हमेशा ही निवाले हाथ को जोड़े नहीं मिलते
वह पैदल ही चला जाता रहा बारात को लेकर
अभी भी कुछ दलितों को यहां घोड़े नहीं मिलते– अंजनी कुमार सुमन
फर्क इन्सान से इंसां का मिटाने देते
मंदिरों में दलितों को भी तो जाने देते– अमान ज़खीरवी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल में दलितों के जीवन और उनकी समस्याओं पर गहराई पूर्वक विचार किया गया ह।अपने लेखन शैली और प्रभावी ढंग के कारण हिंदी गजल ने दलित साहित्य की समृद्धि में अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है।

संदर्भ ग्रंथ–

1.गूंगा नहीं था मैं, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ–46–47
2.हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, मधु खराटे, पृष्ठ29
3.अष्टछाप, संपादक नचिकेता, पृष्ठ79
4.हिंदी के लोकप्रिय गजलकार संपादक नीरज, पृष्ठ62
5.शीशे के फूल, राम मेश्राम, पृष्ठ29
6.हिंदी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, संपादक नीरज, पृष्ठ –121

7.समुद्र ब्याहने नहीं आया, जहीर कुरैशी, पृष्ठ39

8.कारखाना, अप्रैल सितंबर1992, पृष्ठ37

9.अष्टछाप, संपादक नचिकेता, पृष्ठ91

10वही, पृष्ठ–140

11श्यामयाने कांच के, उर्मिलेश, पृष्ठ–91

12शोषितनामा, मनोज सोनकर, पृष्ठ95

13नई फसल, शय्योराज सिंह, पृष्ठ –03

14मेरी नींद तुम्हारे सपने, फजलुर रहमान हाशमी, पृष्ठ77

42.Untouchability: Its Eradication And Dalit Consciousnes

-Deepti Shukla
Associate Professor,Physical Education ,
Prayag Mahila Vidyapeeth Degree College, Prayagraj

Untouchability in India goes back to hoary past, though its origin and practice remain vague or unknown. Till the early 1930s, the de jure definition of the depressed classes, as they were then known, was in terms of selves of high-caste Hindus" (Dushkin in Michael, 1998:171). In 1931 census, the the religious concept of pollution. The depressed classes were defined as "Hindu castes, contacts with whom entail purification on the part of higher ra Census Commissioner (J.H. Hutton) adopted several criteria to be employed for identifying the depressed classes. These criteria did not work well. Therefore, some adjustments were made before the promulgation of the schedule in 1935.

Today, the number of scheduled caste persons has gone up very high. One out of every six Indians belongs to this category-ex-untouchables or are by law but still untouchables in practice. The important ex-untouchable castes are Chamar, Dusadh, Musahar, Bhuiya, Dhobi, Pasi, Regar, Dom, Bhogta and Halalkhor in north India and Paraiyans, Pallans and Chak kilis in Tamil Nadu and Mehar, Balshi, Bauri Meghwal, Rajbans, Mazhabhi Siks, etc., in other states. The highest number of these people is found in Uttar Pradesh (21%) followed by West Bengal (12%), Bihar (9%), Tamil Nadu (8%), Andhra Pradesh (8%), Madhya Pradesh (7%), Maharashtra (6%), Rajasthan (5.5%) and so on. (Manpower Profile, India, 1998:35). Thus, about two-third of these people are concentrated in six states. About 84 per cent of them live in villages and are working as cultivators, sharecroppers, marginal farmers, and agricultural labourers. The India About 42 per cent of these people fall in the category of workers. Of 1996: 9 the total workers, only 4 per cent work as scavengers while, the rest work as weavers (12%), fishermen (8%), toddy-tappers (7%) basket and rope makers (5 %), washermen (5 %), artisans (1%), shoe-makers (1%), and so forth.

Though our Constitution outlawed the practice of untouchability and the Untouchability (Offences) Act of 1955 declared it as a legal of arks (it fence, yet since Hindus are still deeply steeped in their concern for purity (and pollution, the practice of untouchability has not been completely up rooted in the social and religious life of the country. Thus,

untouchability may be understood from two angles: (i) the stigma attached to certain People because of ceremonial pollution they allegedly convey, and (ii) the Set-practice engaged in by the rest of the society to protect itself from the pollution conveyed by the untouchables.

Degradation of Dalits

The social stigma of the untouchables manifests itself in all walks of life. They are denied access to temples and to the services of the Brahmins and are shunned by the higher castes. They are born as impure and live as pure. The rest of the society is so much concerned about purity that they permanently keep untouchables in a state of economic, social and subordination. The stigma, congenital according to one's caste, lasts a lifetime and cannot be eliminated by rite or deed. Defined in relation to behaviors, untouchability refers to the set of practices followed by the rest of society to protect itself from the pollution conveyed by the un touchable. However, this concern with ritual pollution is not limited to the role of untouchables; it also served to keep the untouchables in an in economic and political position through physical separation. It is generally believed that the untouchable groups have come to realise that their problem can be solved only through effective political action. In re cent times, due to reservation of posts in parliament, Vidhan Sabhas, jobs, educational institutions, etc. and other privileges granted by the govern ment, a low ritual-status man has a better chance to achieve high economic and political status while high social status becomes an individual matter. Sociologists (like L.P. Vidyarthi, Sachchidananda, etc.) have attempted to study social transformation of Dalit's with reference to their caste disabilities, their educational efforts, acceptance of innovations, political consciousness, integration with the larger society, level of aspiration, internalisation of modern values, position of women, their leadership, Dalit movements, and so on. Though many Dalit's have given up their traditional caste-based occupations yet a good number is still engaged in polluting occupations. The change and diversification from polluting occupations has not only re moved the stigma of their untouchability but has also enabled many to rise in class mobility. Some of them are owners of landed and household properties. They have been beneficiaries of various economic benefits of fared to the scheduled castes by the government. The status disabilities are now largely confined to the village. Discriminations in the matter of us ing the public wells or the temples are not so widespread as before. High public servants and those who occupy higher positions are less subjected to

disabilities in social intercourse. There now exists a direct correlation between the politico-economic status of an individual and his social status. In some cases, however, their ascriptive status scores over their achieved status, for example, in the field of marriage. The entry of a Hari Jan in modern professions like medicine, engineering, administration, management, higher education, judiciary and law is secretly resented by their colleagues. This is partly because of the stereotyped hatred and partly because of competition and jealousy on account of protective dis crimination in their favors. Even the (Harijan) elite studied by Sachichidananda in Bihar in 1976 pointed out such jealousy.

A large number of Harijan suffer from an inbred inferiority complex which makes them sensitive to any treatment which they think smacks of discrimination. This does not mean that such alleged discrimination nation is always made and accusation is true. The immobility of the Harijan has also given place to mobility. This has been made possible by migration from rural to urban areas, education and entry in public service and in politics. All this points out how the structural distance between the Dalit's and others has considerably narrowed.

Ameliorative Measures

The changes among Dalit's have come through three avenues:

(1) state pol icy in regard to untouchable groups,

(2) reform movements at various periods of time, and

(3) process of sanskritisation and westernization. Amelioration of conditions of these underprivileged groups engaged the attention of the framers of the Constitution after independence.

Protective discrimination is one of the three ways in which government attempts to deal with the problems confronting the Dalit's. First, there are several constitutional and other legal provisions which remove discrimination against untouchables and grant them the same rights as other citizens. Secondly, some benefits make only scheduled castes eligible for them and make other persons ineligible, e.g., scholarships, loans, and grants, etc. Presenting certain certificates that the applicant belongs to one of the castes on the schedule enables him to get the benefit but makes non-members ineligible. Because of this protective character, the practice is called 'protective discrimination'.

Some constitutional provisions relating to the welfare and uplift of the Harijans (SCs) were: removal of disabilities with regard to access to public places (shops, restaurants, wells, bathing Ghats, roads, etc.), forbid ding denial of admission to educational institutions, throwing open Hindu

religious institutions to them, setting up of advisory councils to promote their welfare, special representation in parliament and state legislatures and reservation in public services.

Some other important centrally sponsored schemes launched for the welfare of the Dalit's are coaching and training for various competitive animations(IAS, ITS, ETC) Sancial assistance for higher education Binancial astuave as for research in the problems of Dalit including goal programmes of development in Five Year Plans and pro viding reservation in public services and educational institutions A committee was by the Government of India in 1965 on untouchability evaluation Shades made by Bernard Cohn (1955), Mrs Epstein, Harold Issacs (1964), Andre Beteille (1966), Harper (1968) Avathamma (298) Serial (1872) Michael Mahar (972), Lynd (6) LP. Vid (877, and Sachichidananda (1976) show change in favour of the untouchable Though the situation of social quality characted by social and economic exploitation of d aces des an exist to the same extent as before independence untouchability has not been abolished. Even the study of the Harijan te made by Sachichidananda in Bihar in 1971-72 showed that while the as in economic field has improved it has not changed in ritual, social or political fields interest in removing the disabilities of Harijans may be traced back to curly this through some saints and reformers also Mahatmas Phule, Narsimha Mehta, etc. who had focused attention on their sad plight. Gandhi took keen interest in the amelioration of their condition and abolition of untouchabilits in the thirtees. In 1932, he op on his demand for separate electorate for the undertook fast on the issue, arguing that separate electorates the category of untouchables instead of encouraging them to merge with the Sudra population. He feared conflicts between cast Hindus and untouchables Ambedkar bowed to Gandhije's pressure giving, up his demand for separate electorates in re umber of seas (12.5% of the total population) in Parliament reserved for untouchable's He, thus, forced the British drop the idea by signing the Poona Pact. He then under took a tour of the whole country and exhorted people to give up

In addition to changes emannating from government policies and programmers, a major effort to ameliorate the lot of the untouchables has originated from these people themselves. Religion served as a major vehicle for the dissemination of revolutionary ideas among them and also pro vided a model for the organisation and support of such change. The most widespread and influential movement of this kind was their

conversion to Buddhism, a phenomenon whose proportions were reflected in the census of India which recorded 1,81,000 Buddhists in 1951, 3.2 million in 1961, and 4.7 million in 1981. In Maharashtra alone, it is said that about 3.5 mil lion Harijans were converted to Buddhism in 1956 under the leadership of B.R. Ambedkar, who himself adopted the diksha (conversion) in Nagpur on October 14, 1956. Ambedkar was of the opinion that only by leaving Hinduism, the Harijans would burden of pollution and untouchability.

Some Harijans were converted to Christianity also, particularly in South India, in the second half of the 19th century. PutuChristians in Kerela are the low-caste Christians. Syrian Christians, converts from the higher castes, avoid interaction with them. However, converts from one higher castes, avoid interaction untouchable caste-the Pulayas-have been integrated into the Syrian Christian church of Kerala. Satnami movement in Madhya Pradesh was a religious-cum-social-cum-political movement. Many Harijans joined the Satnami sect Chhattisgarh region, which believed in quality of all men irrespective of caste and in 'Satnam'. This sect forbade the worship of Hindu deities, proscribed the use of liquor and tobacco and consumption of meat.

Dalits in Rural India

Dalit's are a marginal group in rural India, both in economic sense and in view of low-status members of Hindu society. ***The two features observed about dalits in rural society are:***

1. most dalits do not own land nor are they tenants, and
2. most dalits earn an important part of their income by working on the land of others and/or by attaching themselves to land holding cultivators.

The employment of the dalit labour is determined by agricultural product and wages paid. The higher demand is at the time of harvest. The demand for the labour increases when there is more cultivable and, more irrigation, more fertilisers, and more capital. Modern agricultural implements like tractors, etc., increase the demand for skilled labourers but decrease the number of persons needed. The employer (landlord) gets labour from dalits as well as non-dalits. The labour, thus, is not homogeneous. Preference is always given to non-dalits as they are considered more hardworking. It is for this reason that the dalit in rural areas is referred to as 'marginal".

Dalit Consciousness

The big question is: will dalits ever be integrated in the main stream of the society? The age-long bondage shackles may be shaken off when the dalits equip themselves with education and skills and effectively compete in modern society. Legislation alone will not do away with their disabilities, Along with dalits' own efforts for achieving resources, change in the attitudes of the caste Hindus is equally important for banishing untouchability. We agree with Sachchidananda (1976:172) who holds that the combination of factors like ameliorative efforts of the government, the growing consciousness of the dalits and the liberal attitudes of caste Hindus will diminish the disabilities and discriminations with the passage. of time.

Conclusions Politically, dalits are becomming conscious of the fact that they have to take advantage of their vast numbers in political terms. They may not be united to form a separate political party but by supporting the dominants national political parties like Congress or the Janata Dal or the BSP, etc., they may extract the price of their support. But the problem is that though the educated dalits show evidence of politicisation, the masses are not very much touched by this process. The elite have moved from the politics of compliance and affirmation to the politics of pressure and pro test but they are still not able to present a common front and adopt a radical posture.

References - (1)Abbi, B.L., 'Urban Family in India', in Contributions to Indian Sociology, No. 3, 1969.

(2)Agarwal, S.N., India's Population, Institute of Economic Growth, Asia Publications, Bombay, 1960.(3)Agarwal, U.C., "Galloping Corruption: Need for Effective Vigilance', The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, July-September, 1997.(4)Ahmad, Imtiaz, (ed.), Caste and Social Stratification Among the Muslims, Manohar Book Service, Delhi, 1973.(5)Ahuja, Ram, Indian Social System, Rawat Publications, Jaipur, 1993. (6)Ahuja, Ram, Social Problems in India (2nd ed), Rawat Publications, Jaipur, 1997. (7)Ahuja, Ram, Sociological Criminology, New Age International Publishers, Delhi, 1996. (8)Albatch, P.G., (eds.) Turmoil and Transition: Higher Education and Student Politics in India, Lalvani Publishing House, Bombay, 1968. Almond, Gabrial and Coleman (eds.), (9)The Politics of Developing Areas, Princeton University Press, Princeton, 1960.